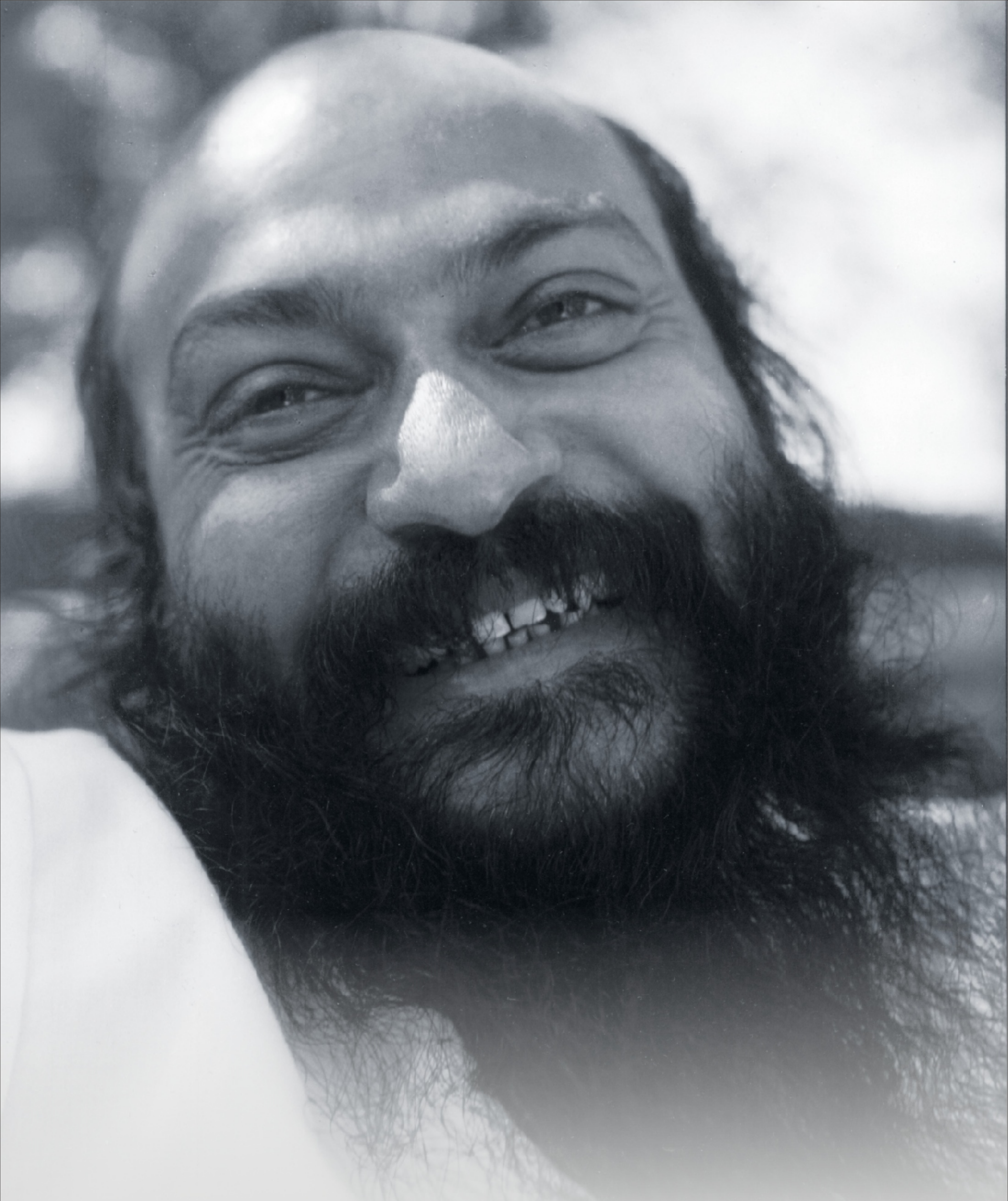

# मस्ती भरी जिंदगी

– स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

Osho Fragrance

**Shree Rajneesh Dhyan Mandir**

Kamaspur Deepalpur Road,
Bahalgarh, District Sonipat,
Haryana - 131021

contact@oshofragrance.0rg

www.oshofragrance.0rg

Oshofragrance

rajneeshfragrance

+91 7988969660
+91 7988229565
+91 7015800931

डिज़ाइन : मनोज बजाज

# ओशो की क्रांतिकारी दृष्टि तथा भगवान बुद्ध का आष्टांगिक मार्ग

# अनुक्रम


| | |
|---|---|
| 1. मस्तों की मधुशाला में स्वागत | 06 |
| 2. आनंद की अभीप्सा,दुख का विसर्जन | 09 |
| 3. अमृत और आनंद कैसे मिले? | 19 |
| 4. आनंद की खोज, आष्टांगिक मार्ग से | 27 |
| 5. दृष्टि ही सृष्टि, दुख से मुक्ति | 39 |
| 6. सम्मासति, राइट माइंडफुलनैश | 63 |
| 7. कर्म, सृजन, उत्सव | 87 |
| 8. आजीविका और संबंध | 113 |
| 9. वाणी, अभिव्यक्ति, सदाचरण | 135 |
| 10. विकल्प नहीं, संकल्प | 163 |
| 11. व्यायाम और स्वीकार | 183 |
| 12. ध्यान एवं समाधि | 199 |
| 13. साधना में आहार का महत्व | 213 |
| 14. सम्यक निद्रा- न ज्यादा, न कम | 227 |
| 15. ओशोः तेरा तुझको अर्पण | 241 |

# भूमिका

## ओशो की मधुशाला में मस्तों का स्वागत

जगत तीन प्रकार के लोगों में विभक्त है–आसक्त, विरक्त व अनासक्त। आसक्त सदा व्यस्त रहता है व त्रस्त महसूस करता है। विरक्त सुस्त रहता है व परास्त अनुभव करता है। अनासक्त मस्त रहता है और मुक्त महसूस करता है। क्या आप भी मस्ती भरी मुक्त जिंदगी जीना चाहते हैं? यदि हां, तो इस पुस्तक को खोलते हुए स्वयं को सौभाग्यशाली समझें; क्योंकि आपके जीवन में आध्यात्मिक क्रांति के शुभारंभ की पावन घड़ी आ गई... ओशो ने आपके हृदय का द्वार खटखटाया है। 'एस धम्मो सनंतनो' के पैंसठवें प्रवचन में ओशो एक मधुर गीत सुनाकर अपना संदेश देते हैं–

**अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे, गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूं।**
**अतल अस्ताचल तुम्हें जाने न दूंगा, अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूं।**
**कल्पना में आज तक उड़ते रहे तुम, साधना से सिहरकर मुड़ते रहे तुम।**
**अब तुम्हें आकाश में उड़ने न दूंगा, आज धरती पर बसाने आ रहा हूं।**
**सुख नहीं यह नींद में सपने संजोना, दुख नहीं यह सीस पर गुरुभार ढोना।**
**शूल तुम जिसको समझते थे अभी तक, फूल मैं उसको बनाने आ रहा हूं।**
**देखकर मझधार को घबरा न जाना, हाथ ले पतवार को घबरा न जाना।**
**मैं किनारे पर तुम्हें थकने न दूंगा, पार मैं तुमको लगाने आ रहा हूं।**

शूल को फूल बनाने का, व्यस्त, त्रस्त व परास्त को मस्त बनाने का, जीवन–नौका को पार लगाने का यह कौन सा कार्य है ओशो का, जिसे पूरा करने का स्वप्न लेकर अस्तित्व में आई है ओशो–फ्रेगरेंस? क्या करना चाहता है यह आध्यात्मिक अभियान? इन साधकों ने जो अमूल्य खजाना पाया है वह इतना अद्‌भुत है कि वे बिना बांटे रह नहीं पा रहे... और इस निराले खेल में सदगुरु ओशो की करुणा एवं अस्तित्व की कृपा भी भरपूर बरस रही है। स्वयं आइए और जानिए कि दुःखों से छुटकारा कितना आसान है– चमत्कार हो रहा है! जब विज्ञान की गति दिनों–दिन तेज हुई है तो अध्यात्म कैसे पीछे रह सकता है? धर्म के रहस्य को

जाननेवाले लोग क्या ऐसी 'टेक्नोलॉजी' नहीं खोज लेंगे जो मनुष्य को परमज्ञान की ओर शीघ्रता से ले जा सके? जो भीतर परमानंद की संपदा को पाने की सरल और सहज तरकीब खोज सकें?

ओशो की अनुकंपा और करुणा से आनंद, प्रेम व समाधि के फूलों की सुगंध सर्वत्र फैल रही है। अलौकिक समझ से ओतप्रोत ओशो का अपार साहित्य, उनकी मीठी अमृतवाणी, उनके द्वारा रची गई अनूठी ध्यान विधियों को सजाकर ओशो–फ्रेगरेंस के साधना शिविरों का निर्माण हुआ है, इनका वही उद्देश्य है जो आज तक सभी बुद्धों का रहा है– जीवन को आनंद से, प्रेम से, दिव्यता से भरने का, अपने भीतर छुपे 'बुद्ध–स्वभाव' को पहचानने का। हम सब भी अपने जीवन में अद्‌भुत चमत्कार उत्पन्न करने की क्षमता और सम्भावना लेकर ही जन्मे हैं। बस थोड़ी सी समझ, थोड़ा सा संकल्प, थोड़ा सा श्रम... और बात बन जाएगी, संभावना वास्तविकता में रूपांतरित हो जाएगी। फिर हमारे भीतर और बाहर भी आनंद होगा। भीतर मस्ती, बाहर उत्सव। ओंकार में जिसकी डुबकी लगी, समाधि फली, उसके लिए जिंदगी एक मौज–मस्ती भरी कहानी हो जाती है।

ब्रह्मज्ञान के इस आधुनिक विश्वविद्यालय में बौद्धिक रूप से पढ़ाया लिखाया नहीं जाता, जीवंत अहसास में उतारा जाता है। हजारों साधकगण बड़ी सरलता से नित्य स्वयं की गहराईयों में डूबते हैं। आओ, ओशो के मंदिरालय में, और प्रभु की वह शराब पीयो जो कभी उतरती नहीं है, बस एक बार चढ़ी, सो चढ़ी! मा मा अमृत प्रिया जी के गाये शब्दों में–

**ध्यान की मदिरा हमें ओशो ने पिलाई है,**
**क्या अजब मस्ती मेरी जिन्दगी में छाई है।**
**शोरगुल मन के हुए शांत अनाहत गूंजा,**
**श्याम ने बांसुरी की मीठी धुन सुनाई है।**
**कभी दुनिया से प्यार पाने को तरसते थे,**
**हो गई भीतरी सिया–राम की सगाई है।**
**गुरु के शब्द समझ आए जब नि:शब्द हुए,**
**मौन इशारों ने कला जीने की सिखाई है।**
**देह मंदिर बनी और कर्म हो गए पूजा,**
**छिपी हुई शून्यता में पूर्णता दिखाई है।**
**ध्यान की मदिरा हमें ओशो ने पिलाई है,**
**क्या अजब मस्ती मेरी जिन्दगी में छाई है।**

अब तक ऑनलाइन तथा ऑफलाइन कार्यक्रमों में हजारों मित्रों ने ध्यान की ऊंचाईयों को जाना है। विश्व में विराट आध्यात्मिक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ है। इसीलिए सभी पंथों, धर्मों, संप्रदायों, गुरुओं से संबंधित प्रभु के प्यासे लोग ओशो–फ्रेगरेंस में आकर ध्यान सीख रहे हैं, और ब्रह्मज्ञान की ओर तीव्र गति से बढ़ रहे हैं।

**'तोड़ दो मन में कसी सबश्रृंखलाएं, तोड़ दो मन मे बसी संकीर्णताएं।**
**बिंदु बनकर मैं तुम्हें ढलने न दूंगा, सिंधु बन तुमको उठाने आ रहा हूं।**
**हृदय–वीणा पर समाधि का मधुर, सूक्ष्मतम सरगम सुनाने आ रहा हूं।**
**एक हाथ की ताली बजाने आ रहा हूं, स्वर ही ईश्वर–बताने आ रहा हूं।**
**तुम उठो धरती उठे नभ सिर उठाए, तुम चलो गति में नयी गति झनझनाए।**
**विपथ होकर मैं तुम्हें मुड़ने न दूंगा, प्रगति के पथ पर बढ़ाने आ रहा हूं।**
**अब न गहरी नींद में तुम सा सकोगे, गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूं।**
**अतल अस्ताचल तुम्हें जाने न दूंगा, अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूं।'**

सदगुरु ओशो के इस प्रेम–निमंत्रण को स्वीकारें। पुस्तक रूपी यह प्रवचन–संकलन आत्मिक मूर्च्छा की अंधेरी खाई से निकलकर चेतना के उज्ज्वल गौरीशंकर तक पहुंचने के समस्त मार्गों का विहंगम नक्शा है। मानचित्र केवल पढ़ने के लिए नहीं, वरन समझकर यात्रा पर निकलने के लिए होता है। जीवन की परिधि से आत्मा के केंद्र अर्थात परमात्मा तक के सफर पर चलने वाले पथिकों के लिए चुनौती, आमंत्रण, स्वागत और शुभकामनाओं सहित–

**–मस्तो बाबा**

आनंद की अभीप्सा,

दुख का विसर्जन,

- आनंद की अभीप्सा, शिविर संबंधी निर्देश
- पहले रेचन द्वारा दुख का विसर्जन, फिर विपस्सना

# आनंद की अभीप्सा

प्यारे मित्रो, आप सबका स्वागत करता हूं कि आप ध्यान सीखने के लिए, अपने जीवन में शांति और आनंद की खोज में यहां आए हैं। दुनिया में बहुत कम लोग हैं जिनके भीतर अध्यात्म की वास्तविक जिज्ञासा उत्पन्न होती है। गहरी प्यास अगर है तो फिर परमात्मा की उपलब्धि दूर नहीं। कठिन बात यही है कि लोगों के जीवन में प्यास ही नहीं होती। वे मंदिर जाते भी हैं, तीर्थ स्थानों पर जाते भी हैं तो बस यूं ही क्रियाकांड के रूप में, मनोरंजन के रूप में, एक सामाजिक औपचारिकता निभाने, सब लोग जा रहे हैं इसलिए भीड़ के पीछे भेड़चाल चलते हुए जाते हैं। थोड़े से लोग हैं जिनके हृदय में एक गहरी प्यास उत्पन्न होती है कि हम सत्य की खोज करें, शांति की चाहत, परमात्मा की खोज, आनंद की खोज, अपने जीवन को संवारने की कोशिश करें। थोड़े से लोगों के मन में ही होती है ऐसी अभीप्सा उत्पन्न।

इसलिए मैं आप सबका स्वागत करता हूं कि आपके मन में वह जिज्ञासा है, इसलिए आप यहां पर आए हैं। कुछ छोटी–छोटी बातें जो आपके काम की होंगी इन छः दिनों में, उनका स्मरण रखिएगा। अकेली प्यास ही काफी नहीं है कुछ और भी चाहिए। एक संकल्प, एक कमिटमेंट, एक विल पावर भी चाहिए। हम जिसकी तलाश में हैं उसे खोजने के लिए एक डेडिकेशन हो ताकि हम पूरी तरह इन्वाल्व हो सकें। सफलता उन्हीं को मिलती है जो हंड्रेड परसेंट टोटैलिटी के संग खोज में लगते हैं। कुछ लोग कुनकुने–कुनकुने प्रभु की तलाश करते हैं, उनके जीवन में बात नहीं बनती। एक टोटैलिटी, समग्रता चाहिए।

ख्याल करना इस बात काः यहां जो सिखाएंगे, ध्यान के प्रयोग होंगे, ओशो के अमृत प्रवचन सुनेंगे; क्या उसमें आप टोटली इन्वाल्व्ड हैं कि नहीं? एक दर्शक की भांति मत रहना कि जैसे तमाशा देखने आए हैं। किसी को आप बाहर से देखेंगे तो आपको कुछ भी पता न चलेगा कि उसके भीतर क्या हो रहा है? आप स्वयं अपने भीतर जाएं तो ही पता चलेगा।

अतः दूसरों पर नजर मत रखना, अपने भीतर दृष्टि रखना। इन छः दिनों में ज्यादा से ज्यादा मौन में जीना। हम जितनी बातचीत करते हैं उतने बहिर्मुखी हो जाते हैं, एक्स्ट्रोवर्ट। अगर परम शांति की खोज है तो हमें मौन में डूबना होगा। व्यर्थ की बातचीत न करें। जो जरूरी है, बस उतना ही बोलें। और आप पाएंगे कि बहुत कम जरूरी है। हमारी अधिकांश बातें बिल्कुल निरर्थक होती हैं। उनको करने से कोई लाभ नहीं। हानि ही होती है। समय खराब होता है, शक्ति खर्च होती है। इसी समय में, शक्ति को हमें भीतर मोड़ना है––ध्यान की तरफ।

बाहर जाती शक्ति को बचाना होगा। यथासंभव मौन और इन छः दिनों में यहां इस भांति जीवन जीएं मानो आप अकेले हैं। मानो आप एकांत में हैं, ताकि सेल्फ–आब्जर्वेशन, अपना निरीक्षण हो सके। सुंदर बगीचा है, बड़े–बड़े पेड़ है, खुला आकाश है। प्रकृति के सान्निध्य में समय बिताइए। बजाए आपस में चर्चा करने के, फिजूल बीतचीत करने के, ऐसे जीएं जैसे इस विराट प्रकृति में आप अकेले हैं। किसी वृक्ष के पास पांच मिनट आंख बंद करके बैठ जाएंगे, आपके भीतर भी कुछ शांत होने लगेगा। सुबह उठकर सूर्योदय देखेंगे, या रात आकाश में तारों को निहारेंगे; आपके भीतर भी एक निस्तब्धता छाने लगेगी। आकाश केवल बाहर ही नहीं है, हमारे भीतर भी है। बाहर के आकाश से हम जुड़े तो अपने भीतर के आकाश में भी प्रवेश होने लगेगा।

पंछी की आवाज सुने। हवा की सरसराहट सुनें। पंछी आपसे कुछ कह नहीं रहा, न आप उससे कुछ कह सकते। तो शब्दों का, भाषा का कोई लेन–देन नहीं होगा। केवल उसका स्वर, और आप सुनने वाले साक्षी! आप अचानक पाएंगे मन की बेचैनी समाप्त होने लगी।

ये छोटी–छोटी बातें याद रखना––गहरी प्यास, पूर्ण संकल्प, समग्रता के साथ ध्यान के प्रयोग और जो यहां आचार्यगण आपको समझाएंगे उसको हृदय खोल कर सुनना, समझना। चिंतन–मनन भी करना। हम आपसे सवाल भी पूछेंगे ताकि आपके भीतर एक थिंकिंग प्रोसेस, सोच–विचार की प्रक्रिया शुरू हो। दूसरों के द्वारा मिले उपदेश जिंदगी में ज्यादा काम नहीं आते। लेकिन अगर हम खुद सोचे, विचारें, हम खुद किसी निष्कर्ष पर पहुंचें तभी हमारे जीवन में विकास संभव है।

यहां हम आपको प्रेरित करेंगे, कि आप स्वयं सोचिए। हमारे द्वारा कही कोई बात आपको मानने की जरूरत नहीं है। कोई सवाल आपके मन में पैदा होता है, जरूर पूछिए। हम आपसे श्रद्धा और विश्वास करने को नहीं कहते। एक साइंटिफिक एटिट्यूड, एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपना जीवन जीएं। जो बात आपको ठीक लगती है, बस वही ठीक है। मेरे किसी चीज को ठीक कहने से वह आपके लिए ठीक नहीं होता। हां, गौर से सुनिए, समझने की कोशिश करिए, अपने चिंतन–मनन की प्रोसेस भीतर चलने दीजिए। फिर जो ठीक लगे वह आपके लिए काम का होगा। जो ठीक नहीं लगे, उसको छोड़ देना। कोई अंधविश्वास करने की जरूरत नहीं है। ध्यान एक बिल्कुल वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

कल सुबह से ध्यान की प्रक्रिया शुरू होगी। वक्त बड़ा कीमती होता है, थोड़ा ख्याल रखिएगा। नियत समय से दो मिनट पहले ही यहां आ जाइए। शुरुआत में समझा देंगे कि कैसे करना है? आप दो मिनट लेट हो जाएंगे तो वह बात अधूरी रह जाएगी। ध्यान समझ में नहीं आया तो आप ठीक से कर भी नहीं पाएंगे। हमेशा दो मिनट पहले ही आने की कोशिश करिए।

भोजन के बारे में थोड़ा सा कहना चाहूंगा। सामान्यतः जितना भोजन हम करते हैं उससे थोड़ा सा कम लेना साधना में उपयोगी होगा। दस प्रतिशत कम आहार लेंगे, तो ज्यादा जागरूक हो पाएंगे, सुगमता से ध्यानस्थ हो पाएंगे। प्रायः हम आवश्यकता से अधिक खाना खाते हैं। औसत बात कह रहा हूं। सबके लिए हो सकता है लागू न हो, लेकिन ज्यादातर लोग जितना जरूरी है शरीर के लिए, उससे ज्यादा खाते हैं। उससे नींद जैसी मूर्च्छा घेरती है, जो ध्यान में बाधा पहुंचाती है।

खासकर नास्ता और लंच थोड़ा कम लीजिए। भले आप डिनर में ज्यादा खा लें। क्योंकि फिर तो रात को सोना ही है। सम्यक भोजन के संग सम्यक निद्रा भी अनिवार्य है साधक के लिए। रात को जल्दी सो जाइए, गहरी नींद लीजिए, ताकि सुबह उठ सकें। शायद आपकी सामान्य रूटीन में थोड़ी चेंज होगी। हो सकता है एक दिन, दो दिन एडजस्ट करने में लगेः नई जगह, नया बिस्तर, भिन्न तापमान, कोई बात नहीं! एक दिन में, दो दिन में एडजस्ट हो जाते हैं। इस ढंग से यहां छः दिन का समय आप बिताइएगा।

आपस में बातचीत भी करें तो विषय से संबंधित। जो यहां सीखा है, जो प्रयोग किया है उसके बारे में। और व्यर्थ की बातें न करें, राजनीति आदि की कोई जरूरत नहीं है। दुनिया में क्या हो रहा है? होने दें। चिंता छोड़ें। 6 दिन आराम से बिताएं। अखबार पढ़ने की, न्यूज देखने की कोई जरूरत नहीं है। अच्छा हो मोबाइल भी ज्यादा से ज्यादा बंद रखें। अपने घर में, परिवार में आप कह दीजिए जिनसे आपका कोई जरूरत पड़ सकती है, कि एक खास वक्त तय कर लीजिए। सुबह नौ बजे के बाद नास्ता के समय बात कर सकते हैं या रात को डिनर के बाद आधा घंटा। निश्चित समय ताकि चौबीस घंटे आपको मोबाइल ऑन न रखना पड़े। कोई काम की बात होगी तो उस समय हो जाएगी।

ओशो सेविपश्यना के बारे में एक सवाल पूछा गया और खास कर कैथारसिस के बारे में, रेचन से संबंधित। ओशो ने अपने ध्यान विधियों में, जैसे डायनेमिक मेडिटेशन या सक्रिय ध्यान में रेचन को बहुत महत्व दिया है। रेचन का मतलब है हमारे भीतर दमित विचारों का, भावनाओं का विसर्जन। उन्हें निकाल बाहर फेंकना। हमारे भीतर कुछ दबी हुई चीजें हैं। समझो, आपको क्रोध आया। अब आप हमेशा तो क्रोध व्यक्त नहीं कर सकते सब जगह। फिर वह कहां जाएगा? वह आपके भीतर सप्रेस्ड होकर रह जाता है। इसी प्रकार बहुत सी चीजें हमारे भीतर दबी हुई है। जरूरी है कि इन सबको हम निकाल बाहर फेंके। रेचन की विधि डायनेमिक मेडिटेशन, कल सुबह से हम शुरू करेंगे। 'कोपलें फिर फूट आईं' के पांचवें प्रवचन में रेचन का महत्व समझ लें, कि इसके बिना आधुनिक मनुष्य को ध्यान होना नामुमकिन है।

# पहले रेचन द्वारा दुख का विसर्जन, फिर विपस्सना

**प्रश्नः विपस्सना की साधना में कैथार्सिस कब होती है? मैं विपस्सना का अभ्यास करता हूं। मेरा संगीत का कार्यक्षेत्र होश की दिशा में मेरे लिए किस प्रकार सहायक हो सकता है?**

ओशोः विपस्सना सदियों पुरानी पद्धति है ध्यान की। इसकी खोज हजारों वर्ष पहले हुई होगी। किसने इसे खोजा, पता नहीं है। अदभुत प्रक्रिया है। स्वयं से परिचित होने का सरलतम उपाय है। विपस्सना शब्द का अर्थ हैः चुपचाप बैठ कर अपने आपका साक्षी हो जाना। पश्य का अर्थ हैः देखना। विपस्सना का अर्थ हैः बस चुपचाप भीतर बैठ कर देखना। यह श्वास भीतर आई, यह श्वास बाहर गई, इसको भी देखना। यह हृदय धड़का, इसको भी देखना। चुपचाप भीतर बैठ कर, जो भी हो रहा है, उसे देखना। और देखते-देखते ही सारी आवाजें विलीन हो जाती हैं और एक महाशून्य तुम्हें घेर लेता है।

बुद्ध ने विपस्सना की प्रक्रिया को सारे जगत में विस्तीर्ण किया। लेकिन एक अड़चन है। और वह अड़चन यह है कि बुद्ध को हुए ढाई हजार वर्ष हो गए। विपस्सना की पद्धति वही की वही है। लेकिन आदमी की नालायकी वही की वही नहीं है। आदमी नालायकी से और नालायकी की तरफ बढ़ता गया। विपस्सना किसी भी भोले-भाले आदमी के लिए सरल मामला है। लेकिन आधुनिक आदमी भोला-भाला नहीं है। आधुनिक आदमी इतने शोरगुल से भरा है, इतनी बेईमानी से। औरों की तो बात छोड़ दो, अपने साथ भी ईमानदार नहीं है।

मैंने सुना है, एक चोर एकनाथ के साथ तीर्थयात्रा पर गया। एकनाथ तीर्थयात्रा पर जा रहे थे। उनके सारे शिष्यों का मंडल तीर्थयात्रा पर निकला था। चोर जाहिर था। सारा गांव उसे जानता था। उस चोर ने एकनाथ को कहा कि मुझे भी साथ ले लो। मुझ गरीब को भी बचा लो। मैं भी तुम्हारे साथ सारे तीर्थ हो आऊं।

एकनाथ ने कहाः मुझे कोई एतराज नहीं। एक शर्त है। कम से कम तीर्थयात्रा तीन से छह महीने तक चलेगी। इस बीच तुम चोरी नहीं करोगे। नहीं तो तुम्हारी झंझट मैं नहीं ले जाना चाहता। पचास-साठ मेरे शिष्य होंगे, तुम उन्हीं की चोरी करोगे।

उस आदमी ने वायदा किया कि कसम खाता हूं आपकी, चोरी नहीं करूंगा।

एकनाथ ने कहाः फिर कोई हर्ज नहीं है, तुम साथ हो लो।

लेकिन दूसरी ही रात से गड़बड़ शुरू हो गई। और गड़बड़ बड़ी अजीब थी। किसी के हाथ की चूड़ियां किसी दूसरे के हाथ में पहुंच गईं। किसी की अंगूठी किसी दूसरे के हाथ में चली गई। किसी के बिस्तर का सामान किसी दूसरे के बिस्तर में चला गया। लोग सुबह उठ कर बड़े हैरान, कि मामला क्या है? चीजें मिल जाती थीं। चोरी नहीं होती थीं। मगर आधा दिन इसी खोज में निकल जाता था कि चश्मा कहां है? किसी के रुपये गायब। रुपये कहां हैं? जब तक पचास–साठ आदमियों की एक–एक चीज न खोजी जाए, तब तक रुपये न मिलें, चश्मा न मिले।

एकनाथ ने अंततः दो–तीन दिन के बाद, एक रात जाग कर बिताई। शक उन्हें हुआ कि मामला उसी चोर का है। और मामला उसी चोर का था। जैसे ही सब सो जाते, वह उठता। और इसका सामान उसके सामान में, उसका सामान किसी और के सामान में। एकनाथ ने उससे कहाः पागल, तूने कसम खाई थी, चोरी न करेंगे।

उसने कहाः मैंने कसम खाई थी चोरी न करेंगे, तो चोरी तो नहीं कर रहा। और मैंने यह तो कभी कसम न खाई थी कि चीजें न बदलेंगे। और तुम्हारी तीर्थयात्रा तो तीन महीने में खत्म हो जाएगी। यह मेरी जिंदगी भर की आदत है। और जब सब सो जाते हैं, तब मेरा दिन होता है। रात भर क्या करूं, खाक? और किसी का कुछ बिगाड़ तो नहीं रहा हूं। किसी का एक धेला तो लिया नहीं।

आदत! चोरी नहीं करनी, लेकिन फिर भी हेराफेरी करनी है। थोड़ा रस तो आ ही जाता है। थोड़ा मजा तो आ ही जाता है। दूसरे दिन सुबह बैठ कर वही एक आदमी था जो मजे से देखता था कि कहां क्या हो रहा है।

मैंने तो सुना है ऐसे चोरों के बाबत भी, जो अपने एक खीसे से चुरा कर दूसरे खीसे में चीजों को रख लेते हैं। दिल तो बहल जाता है। बात तो रह जाती है। इज्जत का सवाल है।

इन ढाई हजार वर्षों में मनुष्य के मन में इतने ज्यादा विकृत विचार, इतना दमन, इतने बादल उमड़–घुमड़ गए हैं कि अब विपस्सना सीधी–सीधी करना बहुत मुश्किल है।

और तुम पूछते होः 'विपस्सना में कैथार्सिस कब होती है?'

विपस्सना में कैथार्सिस का कोई स्थान ही नहीं है। क्योंकि जिस समय विपस्सना खोजी गई थी, कैथार्सिस की कोई जरूरत ही न थी। अब अगर कैंसर ही न हो तो कैंसर के इलाज की क्या जरूरत है?

इसलिए मैं अपने संन्यासियों को विपस्सना में प्रवेश करने के पहले सक्रिय–ध्यान का आग्रह करता हूं। ताकि सक्रिय–ध्यान में सारा उपद्रव, कूड़ा–कर्कट बाहर फेंक दें। और एक बार फिर निखालिस छोटे बच्चे हो जाएं। फिर विपस्सना शुरू करें। लेकिन अगर तुमने सीधे विपस्सना शुरू की, तो तुम एक खतरा करोगे। वह जो तुम्हारे भीतर इकट्ठा है, वह दबा ही रहेगा। ऊपर–ऊपर तुम शांत दिखाई पड़ने लगोगे और भीतर–भीतर सारी अशांति इकट्ठी होती जाएगी। और वह अशांति एक न एक दिन एक विस्फोट की भांति फूट सकती है। फूटेगी। एक सीमा है, जब तक तुम उसे दबाए रख सकते हो।

विपस्सना सीधी शुरू करने के मैं पक्ष में नहीं हूं। विपस्सना दूसरा चरण है अब। दो हजार वर्ष पहले पहला चरण था। अब विपस्सना दूसरा चरण है। अब पहला चरण सक्रिय–ध्यान है। सक्रिय–ध्यान तुम्हें विपस्सना के लिए तैयार करेगा। सक्रिय–ध्यान काफी नहीं है, उससे तुम आत्मज्ञान को उपलब्ध नहीं हो जाओगे। लेकिन सक्रिय–ध्यान तुम्हें धोकर––जैसे गंगा में स्नान कर आए हो, ऐसा स्वच्छ कर देगा। उन स्वच्छता के क्षणों में विपस्सना में प्रवेश करना उचित है; अन्यथा खतरा है।

लेकिन बड़ी मुश्किल यह है, हजारों वर्ष बीत जाते हैं, लोग अतीत को ऐसा जोर से पकड़ते हैं कि यह भूल ही जाते हैं कि वह अतीत किन्हीं और तरह के लोगों के लिए निर्मित किया गया था, तुम्हारे लिए नहीं। तो विपस्सना के शिक्षक अभी भी विपस्सना सिखा रहे हैं। और उन्हें पता ही नहीं कि इन पच्चीस सौ वर्षों में आदमी पर क्या गुजरी है! तूफ़ान गुजर गए हैं, आंधियां गुजर गई हैं। आदमी के भीतर इतनी टूट–फूट इकट्ठी हो गई है, इतना कूड़ा–कर्कट इकट्ठा हो गया है कि पहले उसे साफ कर लेना जरूरी है।

तो मेरी सलाह हैः सक्रिय–ध्यान को पहला कदम बनाओ। और जब तुम अपने भीतर पाओ कि अब निकालने को कुछ भी नहीं है, तब विपस्सना शुरू करो। तो विपस्सना ही तुम्हें आत्मज्ञान की तरफ ले जाएगी।

दूसरा प्रश्न तुमने पूछा है कि तुम संगीतज्ञ हो, जागरूक रह कर संगीत को कैसे साधो। या जागरूकता और संगीत को साथ–साथ कैसे विकसित करो।

यह थोड़ा जटिल मामला है। क्योंकि जब तुम संगीत में खो जाओगे तो जागरूकता भूल जाएगी। जब तुम लीन हो जाओगे संगीत में तो कौन बचेगा जागरूक होने को? और जब तुम जागरूक होओगे तो संगीत टूट–फूट जाएगा। तो तुम दो विरोधी चीजों को जोड़ने की कोशिश में मुश्किल में पड़ जाओगे। बहुत ऐंचातानी हो जाएगी।

कोई भी एक बात चुन लो, पर्याप्त है। दो–दो नावों पर सवार होना अच्छा नहीं है, दो घोड़ों पर सवार होना अच्छा नहीं है। लाख उपाय करो, खतरा होगा। संगीत पर्याप्त है, डूब जाओ पूरे। इतने डूब जाओ कि तुम्हें पता ही न रहे कि कोई संगीतज्ञ भी है; संगीत ही रह जाए। और परमात्मा के द्वार खुल जाएंगे। उसके अनेक द्वार हैं। सौभाग्य है कि उसका एक ही द्वार नहीं है बड़ा, अन्यथा बड़ी भीड़ हो जाती। बड़ी मुश्किल हो जाती। क्यू लग जाते। सदियों तक क्यू लगे रहते। बुद्धों को सदियों तक खड़े रहना पड़ता दरवाजों पर। लेकिन उसके अनंत द्वार हैं। संगीत पर्याप्त है।

अगर जागरूकता साधनी है, तो फिर संगीत को उसकी अंतिम गहराइयों तक नहीं पहुंचाया जा सकता। तुम संगीत को एक विषय बना सकते हो जागरूक होने के लिए। तुम संगीत के प्रति होश रख सकते हो। मगर वह होश संगीत को ऊंचाइयों पर नहीं ले जा सकेगा, न गहराइयों पर ले जा सकेगा।

पश्चिम में एक बहुत बड़ा नर्तक हुआ, निजिंस्की। संभवतः मनुष्य के इतिहास में वैसा अदभुत नर्तक दूसरा नहीं हुआ। क्योंकि निजिंस्की के नर्तन में एक खूबी थी कि नृत्य करते–करते वह ऐसी ऊंची छलांग भरता था, जो कि जमीन के गुरुत्वाकर्षण के

खिलाफ है। जो लोग ऊंची छलांग भरने का अभ्यास करते हैं ओलंपिक में प्रतियोगिता के लिए, वे भी वैसी छलांग नहीं भर सकते। और निजिंस्की कोई छलांग का अभ्यासी नहीं था। लेकिन घड़ी आती थी उसके नृत्य में कि जैसे उसे पर लग जाते थे। और वह इतनी ऊंची छलांग भरता था कि वैज्ञानिक चकित थे। जमीन की कशिश के विपरीत इतनी ऊंची छलांग भरी ही नहीं जा सकती। और मामला यहीं तक नहीं था। मामला और भी मुश्किल हो जाता था। जब वह छलांग से नीचे गिरता था, तो जमीन बड़ी तेजी से खींचती है चीजों को अपनी तरफ। उनकी रफ्तार बहुत होती है। प्रति मिनट छह हजार मील की रफ्तार से चीजें खींची जाती हैं। इसीलिए तुम रात में जब कभी देखते हो और कहते हो कि तारा टूटा--कोई तारा नहीं टूटता। तारे बहुत बड़े हैं। अगर टूट जाएं तो हम कभी के टूट गए होते। तारे नहीं टूटते। यह तो पृथ्वी जब सूरज से अलग हुई और चांद जब पृथ्वी से अलग हुआ, तो पृथ्वी गीली मिट्टी का लोंदा थी। चांद एक बड़ा टुकड़ा है। अलग उसका अस्तित्व हो गया है। लेकिन साथ में छोटे-छोटे मिट्टी के टुकड़े चारों तरफ छितर गए। वे आकाश में भटक रहे हैं। वे जब भी पृथ्वी के घेरे के भीतर आ जाते हैं--घेरा दो सौ मील है--जब भी दो सौ मील के भीतर उन मिट्टी के टुकड़ों में से कोई टुकड़ा आ जाता है, तो पृथ्वी उसे इतने जोर से खींचती है--प्रति मिनट छह हजार मील--कि हवा और उस मिट्टी के घर्षण से आग पैदा हो जाती है। जैसे चकमक से आग पैदा हो जाए। इसलिए तुम्हें वह चमकता हुआ मालूम पड़ता है। वह कोई तारा नहीं है, मिट्टी है जो जल उठी।

निजिंस्की जब अपनी छलांग से उतरता था, तो ऐसे उतरता था जैसे कोई कबूतर का पंख आहिस्ता-आहिस्ता, डोलता-डोलता जमीन की तरफ उतर रहा हो। कोई जल्दी नहीं। यह और भी आश्चर्य की बात थी। उसका उतरना और भी हैरानी की बात थी। वह जमीन के कशिश के नियम को बिल्कुल ही तोड़ दिया। निजिंस्की से लोग पूछते कि यह मामला क्या है? तुम कैसे करते हो?

निजिंस्की ने कहा कि मुझसे मत पूछो कि मैं कैसे करता हूं। क्योंकि जब भी मैं करने की कोशिश करता हूं, तब यह नहीं होता। मैं घर भी करने की कोशिश करता हूं, यह नहीं होता। मैंने मंच पर भी करने की कोशिश की है और यह नहीं हुआ। जब मैं थक जाता हूं कोशिश करते-करते और भूल जाता हूं इस बकवास को, तब मैं अचानक एक दिन पाता हूं कि यह हो गया। लेकिन यह होता तब है जब मैं नहीं होता, जब मेरा प्रयास नहीं होता, मेरा अभ्यास नहीं होता, मेरी चेष्टा नहीं होती, मेरी आकांक्षा नहीं होती, मेरी वासना नहीं होती। यह मेरे लिए उतना ही बड़ा रहस्य है, जितना यह तुम्हारे लिए बड़ा रहस्य है। मैं मिट जाता हूं, तब यह घटना घटती है।

बड़े चित्रकारों का भी यही अनुभव है। जब वे मिट जाते हैं, तभी उनके हाथ ईश्वर के हाथ हो जाते हैं। बड़े संगीतज्ञों का भी यही अनुभव है। जब वे नहीं रहते, तब कोई और, कोई अनंत शक्ति उनकी वीणा पर संगीत को सजाने लगती है।

तो तुम अगर संगीतज्ञ हो और संगीत से प्रेम है, जागरूकता की फिकर मत करो। तुम संगीत में डूबने की फिकर करो। संगीत ही रह जाए, तुम न बचो। तुम वहीं

पहुंच जाओगे जहां वे लोग पहुंचे हैं, जो परम जागरूकता की साधना किए हैं। वहां भी यही करना होता है। परम जागरूकता में भी स्वयं को भूलना पड़ता है। शुरुआत करते समय तो व्यक्ति होता है, जागरण की चेष्टा का अ ब स तो व्यक्ति शुरू करता है, लेकिन अंतिम अक्षर व्यक्ति नहीं लिखता। वह जो निर्व्यक्ति हमारे भीतर है, वह जो निराकार हमारे भीतर है, वे उसके हाथ से लिखे जाते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम किस द्वार से शून्य को उपलब्ध होते हो। सभी द्वार उसके हैं। तुम्हें जो द्वार प्रीतिकर हो। क्योंकि तुम्हारा प्रेम ही तुम्हें गहराइयों तक ले जा सकेगा––उन गहराइयों तक, जहां कि तुम मिटने को राजी हो जाओ। प्रेम के अतिरिक्त कोई दूसरी चीज तुम्हें मिटने को राजी नहीं कर सकती।

तो भला है, सौभाग्य है कि तुम संगीतज्ञ हो। तो संगीत में डूबो। संगीत को ही रह जाने दो। पहुंच जाओगे। पता भी नहीं पड़ेगा कब पहुंच गए। पहुंच जाओगे तभी जानोगे कि अरे, मैं कहां हूं, परमात्मा है। मैं कहां हूं, अस्तित्व है। मगर दो घोड़ों की सवारी खतरनाक है। और अध्यात्म के जीवन में बहुत से लोग अनजाने अनेक घोड़ों पर सवार हो जाते हैं। कहीं भी पहुंचते नहीं। सिर्फ हाथ–पैर तुड़वा कर किसी अस्पताल में भरती होते हैं। एक ही घोड़ा काफी है। एक को पाने के लिए बस एक काफी है। दुई खोनी है। और तुम दुई पर सवार हो रहे हो।

# अमृत और आनंद कैसे मिले?

- अमृत कैसे मिले?
- आनंद कहां है?
- कस्तूरी कुंडल बसे

# अमृत कैसे मिले?

मैं धार्मिक मनुष्य उसको कहता हूं;
जो जीवन की अर्जन की प्रक्रिया में संलग्न है।
उसको नहीं, जो मंदिर जा रहा है,
उसको नहीं, जो सुबह गीता और कुरान पढ़ रहा है।
उसको नहीं जिसने जनेऊ पहन रखा है, चोटी बढ़ा रखी है;
उसको नहीं, जो मस्जिद में जा रहा है और गिरजे में जा रहा है।
उससे कोई धार्मिक होने का अनिवार्य संबंध नहीं है।
धार्मिक होने का अनिवार्य संबंध इस बात से है
कि जो जीवन के सृजन में संलग्न है;
जिसने जीवन को स्वीकार नहीं कर लिया,
जो जीवन को निर्मित करने में लगा है।
जो प्रतिपल मृत्यु से जूझ रहा है
और अमृत की खोज कर रहा है।
जो चुपचाप नहीं बैठा है कि
मौत आ जाए और बहा कर ले जाए।
जो सिर्फ मृत्यु की प्रतीक्षा नहीं कर रहा है।
जो जूझ रहा है, जो एक संघर्ष कर रहा है।
कि मृत्यु के इस घिराव के बीच में
अमृत को कैसे उपलब्ध हो सकता हूं?
मैं उसे कैसे पा सकता हूं जिसकी कोई मृत्यु नहीं?
क्योंकि वही जीवन हो सकता है।
वही वास्तविक जीवन है।
–ओशो, अमृत कण से

# आनंद कहां है?

बहुत पुराने दिनों की बात है। एक सम्राट अपने जीवन के अन्तिम दिनों की गिनती कर रहा था और बहुत चिंतित भी था। मृत्यु से नहीं, वरन अपने तीन लड़कों से, जिनके हाथ में उसे राज्य को सौंपना था। वह यह निर्णय करने में असमर्थ था कि किसके हाथ में राज्य की शक्ति दे, क्योंकि शक्ति केवल उन हाथों में ही शुभ होती है, जो शान्त हों। और यह निर्णय बहुत कठिन था कि उन तीनों में शांत कौन है। कैसे परीक्षा हो? कैसे जाना जा सके कि कौन व्यक्ति उस राज्य के हित में होगा, कौन अहित में?

कुछ चीजें होती हैं, जो बाहर से नापी जा सकती हैं। लेकिन जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है, उसे नापने के लिए न कोई बाट है, न कोई तराजू है। कुछ चीजें हैं, जो बाहर से पहचानी जा सकती हैं। लेकिन जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, उसे बाहर से पहचानने का भी कोई उपाय नहीं है। कैसे पहचाना जा सके, कैसे जाना जा सके, क्या रास्ता हो– उस सम्राट ने एक फकीर से पूछा। उस फकीर ने रास्ता बताया। दूसरे दिन सुबह उसने अपने तीनों बेटों को बुलाया, उन्हें सौ–सौ रुपये दिये और कहा कि तीन जो महल हैं तुम तीनों के नामकृ ये सौ–सौ रुपये मैं देता हूं... सौ रुपये में ऐसी चीजें खरीदना कि पूरा महल भर जाये, जरा सी भी जगह खाली न बचे। जो तीनों में सर्वाधिक सफल होगा, वही सम्राट बनेगा, वही राज्य का अधिकारी हो जायेगा।

कुल सौ रुपये! और उन राजकुमारों के महल बहुत बड़े थे। पहले राजकुमार ने सोचा, सौ रुपये से क्या महल भरा जा सकेगा? वह गया जुआघर में और सौ रुपये उसने दांव पर लगा दिये। हो सकता है जुए में जीत जाए तो फिर बहुत रुपयों से उस महल को भर ले, क्योंकि महल बहुत बड़ा था। सौ रुपये में भरा नहीं जा सकता था। लेकिन जैसे कि अक्सर होता है, जो बहुत पाने के लिए जुआ खेलने जाते हैं, वह भी खोकर लौट आते हैं, जो उनके पास था। वैसे ही वह युवक भी सौ रुपये खोकर घर वापस लौट आया। उसका महल बिल्कुल खाली रह गया।

दूसरे राजकुमार ने सोचा कि सौ रुपये बहुत थोड़े हैं। इतना बड़ा महल हीरे–जवाहरातों से तो भरा नहीं जा सकता। एक ही रास्ता है कि गांव का जो कूड़ा–कचरा बाहर फेंका जाता है, उसे खरीद लिया जाए और महल भर दिया जाए। गांव से जो भी कूड़ा–कचरा बाहर जाता था, सब उसने खरीदना शुरु कर दिया और महल में कूड़े–करकट के ढेर लगा दिये। सारा महल भर गया, लेकिन साथ ही दुर्गंध भी भर गई। उस रास्ते से निकलना भी मुश्किल हो गया।

तीसरे राजकुमार ने भी महल भरा। किससे भरा? यह थोड़ी देर में स्पष्ट हो सकेगा। तिथि आ गई निर्णय की। परीक्षा के लिए सम्राट आया। पहले राजकुमार का महल खाली था। उस राजकुमार ने कहा, 'क्षमा करें, सौ रुपये बहुत कम थे। मैंने सोचा जुआ खेलूं, शायद जीत जाऊं तो फिर महल को भरूं। मैं हार गया और महल खाली है।'

दूसरे राजकुमार के महल के पास जाकर तो घबराहट हो गयी–इतनी बदबू थी, सारा महल कूड़े–करकट, गंदगी से भरा था! उस राजकुमार ने कहा, कोई और रास्ता न था। सिर्फ कचरा ही खरीदा जा सकता था। सौ रुपये में भला और क्या मिल सकता है?

फिर सम्राट तीसरे राजकुमार के महल में गया। देखकर दंग रह गये परीक्षार्थी। जो निर्णायक थे, वे देखकर आश्चर्य से भर गये–इतनी सुगंध थी उस महल के पास! फिर वे भीतर गये, रात थी अमावस की। किंतु सारे महल में दीये जलाये गये थे। राजा ने पूछा, 'तूने महल किस चीज से भरा है?' उस राजकुमार ने कहा–'प्रकाश से, आलोक से'। कोने–कोने में दीये जले थे! सारा महल प्रकाश से भरा था, और सुगंधियां छिड़की गयी थीं और महल के द्वार–द्वार, खिड़की–खिड़की पर फूल लटकाये गये थे। वह महल सुगंध से और प्रकाश से भरा था। तीसरा राजकुमार सम्राट हो गया। वह उस राज्य का अधिकारी हो गया।

हममें से, बहुत ही मुश्किल से, कोई जीवन का सम्राट हो पाता है! प्रायः तो हमने जीवन को दांव पर लगा रखा है। और हर दांव इस आशा में कि कुछ मिलेगा तो फिर हम जी लेंगे। और जैसा कि दांव पर होता है, हम हारते ही चले जाते हैं और जीवन का महल अंततः सूना ही रह जाता है। या फिर हममें से कुछ ने कूड़े–करकट से महल को भरने की ठान ली है।

जीवन में जो भी व्यर्थ है, उसी को खरीदकर हम महल में लिए चले आ रहे हैं। जिसका कोई मूल्य नहीं अंतिम रूप से, जिसका कोई अंतिम अर्थ नहीं, उस सब कूड़े करकट को हम घर में इकट्ठा कर रहे हैं! क्योंकि तर्क हमारा यही है कि इतना छोटा सा जीवन, इतनी छोटी शक्ति, इससे महल कोई हीरे–जवाहरातों से भरा नहीं जा सकता। इतनी थोड़ी शक्ति से महल कूड़े से भरा जा सकता है, सो हम कूड़े से भर रहे हैं।

लेकिन हमें पता नहीं कि जिस महल को भरने में हम लगे हैं, उसी महल की दुर्गंध हमें ही उस महल के भीतर रहने नहीं देगी। हमारा जीना ही मुश्किल हो जायेगा और हमारा जीना मुश्किल हो गया है। इतने अशांत हैं, इतने दुखी हैं, इतने चिंतित हैं। क्यों?

यह चिंता और अशांति आकाश से नहीं आती, न चांद–तारों से आती है। यह

चिंता और पीड़ा कहीं से भी नहीं आती है सिवाय उस महल के, जो हमने ही दुर्गंध से, कूड़े करकट से भर रखा है। सारी अशांति, सारी चिंता, सारी पीड़ा वहीं से पैदा होती है। यह हमारे ही श्रम का फल है, यह हमारी चेष्टा है, यह हमारा ही प्रयास है, हमारा ही प्रयत्न है। लेकिन ये दो तरह के राजकुमार तो हमारे भीतर हैं। वह तीसरा राजकुमार हमारे भीतर नहीं है, जो प्रकाश से और सुगंध से जीवन के महल को भर सके।

यहां इस निर्जन में इस सागर तट पर इसलिए आपको बुला भेजा है कि इन तीन दिनों में कुछ बातें आपसे करूं कि महल में दीया जल सके, महल में फूल आ सकें। सुगंध भर सके। और शायद परमात्मा के राज्य के आप अधिकारी हो सकें। कौन जानता है, आपको भी इसलिए नहीं भेजा गया हो? किसको पता है कि जीवन की इस परीक्षा में कैसे और कौन उत्तीर्ण होगा? लेकिन एक बात सुनिश्चित है कि जीवन के अंत तक जो प्रकाश जला लेता है, अपने जीवन के महल को जो सुगंध से भर लेता है, स्वयं जो संगीत बन जाता है, अगर कहीं भी कोई परमात्मा है, अगर कहीं भी कोई आनंद है, अगर कहीं भी कोई संपदा है तो निश्चित ही वह उसका अधिकारी हो जाता है।

इस कहानी से इसलिए शुरु करना चाहता हूं, ताकि आपका जीवनगृह खाली न रह जाये, कूड़े करकट से न भर जाये। प्रकाश से भर सके, संगीत से भर सके।

और इतना स्पष्ट समझ लें कि एक आदमी तीन क्षणों के लिए भी अगर ठीक से जीना सीख जाये तो सारा जीवन ठीक हो सकता है, क्योंकि जो व्यक्ति एक क्षण को भी जीने की ठीक दिशा में कदम उठा ले, जो एक क्षण को भी जीवन के आनंद से संबंधित हो जाए, फिर इस जीवन में दुबारा उस आनंद से अलग होना असंभव है। एक बार भी जो आंख खोल ले और देख ले, फिर इस जीवन में आंख का बन्द हो जाना, और अन्धे रहकर भटकना संभव नहीं है।

**–ओशो, 'नेति–नेति' से**

# कस्तूरी कुंडल बसे

ठीक जीवन जीने की कला आ जाए तो पूरी जिंदगी आनंद, उत्सव और अमृत का मस्ती भरा गीत हो सकती है। वह खजाना हमारे भीतर है। ध्यान की कुंजी से वह खुलता है। लेकिन मुश्किल यही है कि हम उसे बाहर खोजते हैं। 'कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूंढ़े वन मांहि।' सारी जिंदगी व्यर्थ चली जाती है, मृत्यु के क्षण में ज्ञात होता है कि हाथ बिल्कुल खाली हैं। धन्यभागी हैं वे लोग, जिन्हें जीवनकाल में ही समझ आ जाता है कि महल सूना है। फिर वे आंतरिक तलाश में लग जाते हैं।

**जाने किसकी तलाश जारी है, क्या खूब ख्वाहिश हमारी है।**

**किसी सिंदूर से कभी न भरी, मांग की मांग सदा क्वारी है।।**

**इस बड़ी दुनिया में जिससे भी मिले, वही इंसान एक भिखारी है।**

**भरी कितनी मगर ये खाली रही, दिल तो एक जादू की पिटारी है।।**

**नशा–ए–जुस्तजू में चलती हुई, चुक गई जिंदगी बेचारी है।**

**पैर तो थक के चूर–चूर हुए, आई नहीं हसरतों की बारी है।।**

बड़े मजे की बात है, भीतर जिन्होंने भी खोजा, उन्होंने सदा पाया– 'जिन खोजा तिन पाइयां।' और निरपवाद रूप से जिन्होंने बाहर आनंद खोजा, उन्होंने कभी नहीं पाया– भरी कितनी मगर ये खाली रही, दिल तो एक जादू की पिटारी है।

ध्यान–समाधि कार्यक्रम में आप पाएंगे कि आपका महल चैतन्य–संगीत से भरा है, मधुर अनाहत नाद गुंजायमान है। सुरति समाधि में उस महासंगीत की गहराइयों में उतरने की कला सीखेंगे। निरति समाधि में आत्मा के अंदर परमात्म–प्रकाश के दर्शन करेंगे। क्रमश : तीसरे राजकुमार की तरह; अमृत, दिव्य सुगंध व स्वाद, दिव्य ऊर्जा व खुमारी, परम–आनंद और परम–प्रेम से जीवन के महल को भरते हुए अंततः आप परम–ज्ञान एवं कैवल्य–अनुभूति में डूब जाएंगे। ओशो के इस रहस्य विद्यालय 'ओशो–फ्रेगरेंस' में आपका स्वागत है– स्वयं की ही खोज के लिए, आत्म–ज्ञान की मंजिल पाने के लिए। उसे रहस्य इसलिए कहते हैं, क्योंकि उसे जानकर भी बताया नहीं जा सकता। एक दिन आप भी कहेंगे–

मुमकिन नहीं कि मौन का पर्दा उठा सकूं;
जो बात राजे दिल की है होंठों पे ला सकूं।
क्या रंग है खुशबू है, बिन मय के खुमारी है;
चाहूं कि जामे मस्ती सभी को पिला सकूं।
कैसा तिलिस्म है तेरी महफिल के नूर में;
जी भर के देखूं पर न जरा भी दिखा सकूं।
एक धुन सी उठ रही है मेरे दिल के साज पर;
खुद सुन सकूं मगर न किसी को सुना सकूं।

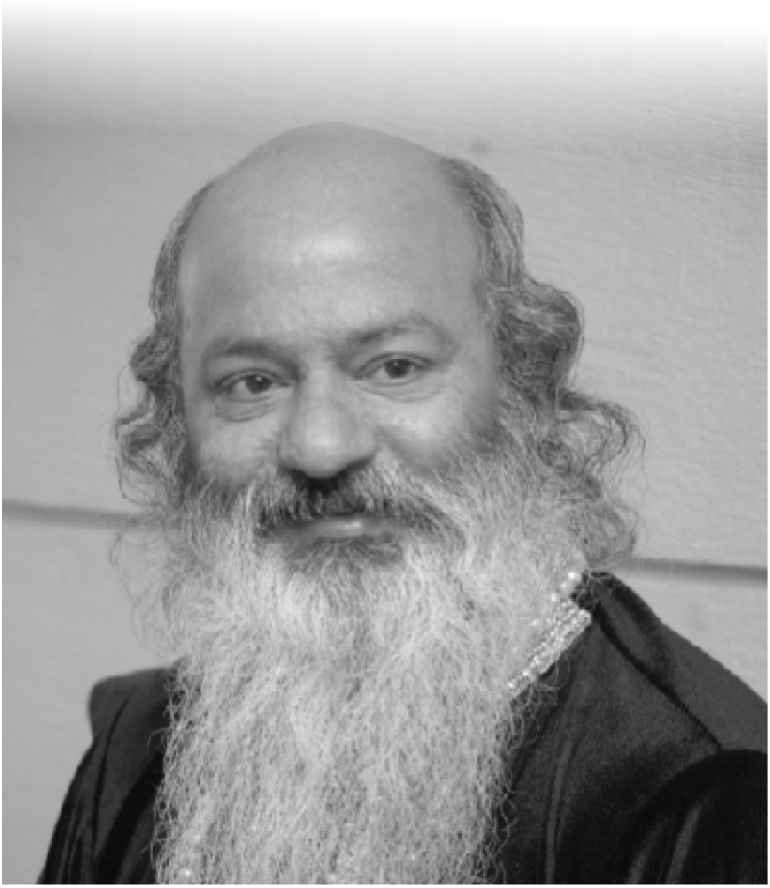

# आनंद की खोज – आष्टांगिक मार्ग से

- आनंद की खोज
- आष्टांगिक मार्ग
- दो अतियों के मध्य सम्यकता
- घर का अंधेरा

# आनंद की खोज

बुद्ध के चार आर्य सत्यों को आज की भाषा में समझें। जीवन के इन चार तथ्यों पर चिंतन करें–

1. जीवन की जरूरतें हमें कर्म करने की प्रेरणा देतीं हैं।
2. कर्म के संग फलाकांक्षा पैदा होतीं है जो दुख की जननी है।
3. आष्टांगिक मार्ग दुख–मुक्ति का सरलतम उपाय है।
4. आनंद उपाय से नहीं मिलता, वह हमारा सहज आंतरिक स्वभाव है।

शिविर में हम एक–एक बिंदु पर विमर्श करेंगे, अपने अनुभवों की कसौटी पर कसेंगे कि किस प्रकार दुख उत्पन्न होता है, तथा किस विधि से मिटाया जा सकता है? दुख निरोध हो जाए तो जो शेष बचता है, वहीं है आनंद। आनंद को पाने हेतु कुछ करना नहीं पड़ता। जैसे कुआं खोदते हुए कंकड़–पत्थर, मिट्टी आदि हटा देते हैं। बस, पानी प्रगट हो जाता है। वह भीतर मौजूद ही है। परम आनंद का जल स्रोत हमारे भीतर है। आगे हम आष्टांगिक मार्ग को समझेंगे, और जीवन में उतारेंगे। उसके पहले 'एस धम्मो सनंतनो' में ओशो द्वारा सुनाई एक प्रेरक कथा––

कौशल–नरेश प्रसेनजीत के पिता का अग्निदत्त नामक ब्राह्मण पुरोहित था। जब कौशल–नरेश के पिता का देहांत हो गया, तब वह कौशल–नरेश के सत्कार–सम्मान करने पर घर–द्वार छोड़कर परिव्राजक बन गया। वह पंडित, अग्निदत्त–उसके पांडित्य की कीर्ति जो चारों ओर फैली ही थी, अब इस महात्याग ने तो सोने में सुहागे का काम किया। अतः वह थोड़े ही दिनों मे हजारों शिष्यों से घिर गया। वह घूम–घूम कर उपदेश देता कि तीर्थों की शरण जाओ, पवित्र नद–नदियों की शरण जाओ, मूर्ति–मंदिरों की शरण जाओ, श्रुति–स्मृतियों की शरण जाओ, यज्ञ विधि–विधानों की शरण जाओ, ऐसे परम आनंद को उपलब्ध होओगे। ऐसी उसकी शिक्षा थी।

एक बार यह अग्निदत्त अपने शिष्यों सहित श्रावस्ती के पास विहार कर रहा था और भगवान बुद्ध भी श्रावस्ती में विराजमान थे। तो भगवान ने अपने एक प्रमुख शिष्य मौद्गलायन को बुलाकर कहा–मौद्गलायन भगवान बुद्ध के जीते जी संबोधि को उपलब्ध हो गया था; वह परमज्ञान को उपलब्ध हो गया था–तो उन्होंने मौद्गलायन को बुलाकर कहा कि जाओ, इस बेचारे अग्निदत्त को भी जगाओ! फिर अगर जरूरत पड़ी तो मैं भी आऊंगा। तो मौद्गलायन गए।

लेकिन सोए हुए को जगाना इतना आसान तो नहीं। फिर सोए पंडित हों तो और भी मुश्किल है। और फिर उनके पास शिष्यों की भीड़ हो तब तो पिफर करीब–करीब असंभव है। लेकिन भगवान बुद्ध ने कहा तो मौद्गलायन गए। अग्निदत्त ने तो उनमें जरा भी रुचि न ली। उसने तो उनसे बैठने को भी न कहा। वह विवाद पर तैयार हो गया। वह तो विवाद करने न आए थे। वह तो कोई संदेश देने आए थे, लेकिन वह संदेश सुनने को भी राजी न था। ऐसे बातचीत में रात हो गयी, तो मौद्गलायन ने कहा कि मुझे कम से कम रात तो आपके आश्रम में रुक जाने दें। लेकिन अग्निदत्त ने कहा, इस आश्रम में इस तरह के लोगों के रुकने की कोई संभावना नहीं। तुम भ्रष्ट हो तो तुम दूसरों को भ्रष्ट करना चाहते हो। मजबूरी थी तो मौद्गलायन पास में ही बालुका की एक राशि पर नदी के किनारे जाकर सो रहे। ठंडी रात थी। और अग्निदत्त और उनके शिष्य बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि उस बालुका राशि पर कोई जाता नहीं था, वहां एक नागराज का निवास था। और वह नागराज बड़ा खतरनाक था। और आदमी वहां पहुंच जाए तो खतम ही समझो, जिंदा वहां से कोई लौटता नहीं था। तो उन्होंने सोचा, चलो झंझट टली! और यह कैसे आदमी को बुद्ध ने भेजा, जिसको इतना भी बोध नहीं है कि कहां सोने जा रहे हैं! यहां मौत आएगी।

सुबह अग्निदत्त के शिष्य जल्दी–जल्दी उठे और देखने गये कि देखें, मरा हुआ पड़ा होगा बेचारा! वहां जाकर देखा तो चकित हो गए। वह तो ध्यान लगाए बैठे हैं और नागराज अपना पफन उनके ऊपर किए रक्षा कर रहा है। चकित! भागे सभी शिष्य। अग्निदत्त अकेला रह गया अपने आसन पर बैठा। उसे बड़ा बुरा भी लगा, बड़ी ग्लानि भी हुई और उत्सुकता भी जगी, वह भी देखना चाहता था। तो वैसा ही जैसे बच्चे होते हैं, कोई बोध तो उसे था नहीं। उत्सुकता, कौतूहलवश वह भी पीछे से आया। चुपचाप आकर देखा, चमत्कृत! मौद्गलायन को देखकर जो जरा भी प्रभावित न हुआ था, वह भी इस चमत्कार को देखकर प्रभावित हुआ। मूढ़ों के प्रभावित होने के अपने ढंग होते हैं। सारे शिष्य मौद्गलायन के चरणों में गिर पड़े। खैर, अग्निदत्त इतनी हिम्मत तो नहीं कर पाया, लेकिन दुखी बहुत हुआ, नाराज भी बहुत मन में हुआ कि ये शिष्य उसके चरण में झुक रहे हैं। तभी बुद्ध का आगमन हुआ। जब बुद्ध आकर खड़े हो गए, मौद्गलायन ने आंखें खोलीं, वह उनके चरणों में गिरा–मौद्गलायन अपने गुरु के चरणों में गिरा। तब तो शिष्य बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा कि जब यह शिष्य इतना चमत्कारी, तो इसके गुरु का क्या कहना! वे सब बुद्ध के चरणों में गिरे। अग्निदत्त ने डरते–डरते बुद्ध से पूछा कि यह चमत्कार क्या है?

बुद्ध ने कहा कि यह चमत्कार दूसरी तरफ से सोचो, उससे भी बड़ा चमत्कार हुआ कि तुम मनुष्य हो और न पहचान सके और सर्प ने पहचान लिया।

बुद्ध ने कहा, 'पागल तू इससे प्रभावित हो रहा है, लेकिन यह नहीं सोचता कि मौद्गलायन तेरे पास आया। मैंने उसे भेजा और तू अंधे की तरह रहा, तूने देखा नहीं।'

ऐसी अवस्था में अग्निदत्त किंकर्तव्यविमूढ़ बुद्ध के सामने खड़ा रह गया। एक मन झुकने का होने लगा, एक मन अकड़ने का। ब्राह्मण कैसे झुक जाए क्षत्रिय के पैर में? पंडित, ज्ञानी अपने को मानता था, इतने शिष्य, कैसे झुक जाए? लेकिन भीतर कोई चीज झुकने को भी होने लगी।

तब बुद्ध ने पूछा कि अग्निदत्त, तेरी शिक्षा का सार क्या है? तू लोगों को क्या समझाता है? तो उसने अपना सूत्र दोहराया–तीर्थों की शरण जाओ, पवित्र नद–नदियों की शरण जाओ, मूर्ति–मंदिरों की शरण जाओ, श्रुति–स्मृतियों की शरण जाओ, यज्ञ–विधि–विधानों की शरण जाओ, ऐसे परम आनंद को उपलब्ध होओगे।

बुद्ध ने कहा, 'पागल इन शरणों से किसी ने कभी दुख से छुटकारा पाया है। तूने पाया? तू अपनी कह, तुझे दुख से छुटकारा मिला है? तेरे जीवन में आनंद की किरण उतरी है? और कम से कम बेईमानी मत कर। मैं तेरा साक्षी तेरे सामने खड़ा हूं, तूने सुख पाया है? अपने भीतर देख! और जो तुझे नहीं मिला, तो तेरी शिक्षा से दूसरों को कैसे मिल जाएगा?'

## आष्टांगिक मार्ग

अग्निदत्त की उपरोक्त कथा को समझाते हुए सदगुरु ओशो ने आष्टांगिक मार्ग को वास्तविक सुख पाने का मार्ग बताया। आइए, हम शांति एवं मुक्ति की मंजिल पर पहुंचाने वाले आठ पायदानों को विस्तार से समझें–

मस्ती भरे जीवन के आठ सोपानः यह कार्यक्रम मूलतः भगवान गौतम बुद्ध के आष्टांगिक मार्ग पर आधारित है। लेकिन आश्चर्य की बात है कि यह स्टीफन आर. कावे द्वारा अत्यधिक प्रभावशाली व्यक्तियों की बताई गई सात आदतों को भी अपने अंदर समाहित किए हुए है। जीवन के समस्त श्रम और प्रयत्नों का उद्देश्य शांति व आनंद है। अपने जीवन की किताब को पढ़ने का एक प्रयास करें, जिसमें आठ अध्याय हैं–

## 1. सम्यक दृष्टि

'जो है, वहीं देखना। जैसा है, वैसा हीं देखना। अन्यथा न करना। कोई धारणा बीच में न लाना। कामना, वासना, धारणा को बीच में न लाना। जो है, जैसा है, वैसा ही देखना। अब यह अग्निदत्त बुद्ध के सामने खड़ा है, जैसा है, वैसा नहीं देख रहा है। सोचता है यह क्षत्रिय है, सोचता है यह वेद-विरोधी है; ये धारणाएं हैं। नागराज पहचान सके मौद्गलायन को और अग्निदत्त चूक गया! कैसे चूका होगा? धारणाओं के कारण। काश, धारणाओं को हटाकर, धारणाओं के मेघों को हटाकर देखता, तो जो था वह उसे भी दिखायी पड़ जाता। इसको कहते हैं-सम्यक दृष्टि।'

## 2. सम्यक जागृति या 'सम्मासति'

'व्यर्थ को भूलना और सार्थक को संभालना। तुम अक्सर उलटा करते हो, सार्थक तो भूल जाते हो, व्यर्थ को याद रखते हो। कुछ ऐसा है कि हीरे-हीरे तो छोड़ देते हो, कूड़ा-कचरा सब इकट्ठा कर लेते हो। जीवन में जो भी बहुमूल्य है, उसको तो बिसार देते हो। सबसे ज्यादा बहुमूल्य तो तुम्हारी चेतना है, उसको तो तुम बिल्कुल बिसारकर बैठ गए हो और ठींकरे इकट्ठे कर रहे हो और उनका हिसाब लगा रहे हो। तिजोरी में कितने रुपये हैं, तुम्हें पता है, लेकिन तुम्हारे भीतर कौन बैठा है, यह तुम्हें पता नहीं है। इसको बुद्ध ने कहा है, सम्यक स्मृति।

बुद्ध के स्मृति शब्द से ही संतों का सुरति शब्द आया। सुरति स्मृति का ही अपभ्रंश है। जिसको कबीर सुरति कहते हैं, वह बुद्ध की स्मृति ही है। उसको ही थोड़ा मीठा कर लिया-सुरति, अपनी याद, अपनी पहचान।'

## 3. सम्यक कर्म

'वही करना जो वस्तुतः तुम्हारा हृदय करने को कहता है। व्यर्थ की बातें मत किए चले जाना। किसी ने कह दिया, तो कर लिया। अक्सर तुम करते हो ऐसा। पड़ोसी एक मोटर खरीद लाया, कार खरीद लाया, अब तुमको भी खरीदनी है। तुम्हें एक दिन पहले तक कोई कार नहीं खरीदनी थी, तुम बिल्कुल मजे में जी रहे थे। अब एक झंझट आ गयी। पड़ोसी का अनुकरण करना है। अधिक लोग अनुकरण में ही मारे जाते हैं। सम्यक कर्म का अर्थ होता है, वही करना है जो तुम्हें करने योग्य लगता है। ऐसे हर किसी की बात में मत पड़ जाना, नहीं तो तुम्हारी छीछालेदार हो जाएगी। हजारों लोग हजारों ढंग के काम कर रहे हैं, अगर तुम हर दिशा में दौड़ने लगे, तो तुम्हारा कर्म धीरे-धीरे बिखर जाएगा। तुम्हारी धारा हजार खंडों में टूट जाएगी, तुम सागर तक न पहुंच पाओगे। सम्यक कर्मांत का अर्थ है, एक दिशा पर नजर रखना,

जो तुम्हें करना है, वहीं करना। और–और दिशाओं में अपने जीवन–श्रम को मत बंट जाने देना। तब तुम्हारे भीतर एक सामंजस्य, एक समरसता पैदा होगी।

अभी तो ऐसा है कि बहुत खंड हैं, कुछ कहते, कुछ सोचते, कुछ करते। आज कुछ करते, कल कुछ करते, परसों कुछ करने लगते। इधर एक मकान उठाना शुरु किया, फिर आधा छोड़ दिया, फिर दूसरा मकान बनाने लगे। इधर एक कुआं खोदा दो हाथ, फिर छोड़ दिया, फिर दूसरा कुआं खोदने लगे। ऐसे करते तो तुम बहुत हो, लेकिन फल हाथ नहीं आता। फल आने के लिए सातत्य चाहिए।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करना कई दफे शुरु करते हैं, फिर बंद हो जाता है। एक दिन करते, दो दिन करते, फिर टूट जाता। फिर लौटते, फिर करते, फिर टूट जाता। तो फिर नहीं होगा। जीवन में एक सातत्य, एक संकल्प, जो चुना है करने के लिए उसे करते रहने का धीरज, प्रतीक्षा, सहिष्णुता। आज ही फल तो नहीं आ जाएगा। बीज बोए हैं तो वक्त लगेगा, प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, मौसम आएगा ठीक, अनुकूल, तब बीज अंकुरित होंगे, फिर वृक्ष बड़े होंगे, वर्षों लगेंगे तब कहीं फल होंगे–प्रतीक्षा करनी होगी।'

## 4. सम्यक आजीविका

'बुद्ध कहते हैं, हर किसी चीज को आजीविका मत बना लेना। अब कोई आदमी कसाई बनकर अपनी रोटी कमा रहा है। यह भी कोई कमाना हुआ! रोटी ही कमानी थी, हजार ढंग से कमा सकते थे, कसाई होने की क्या जरूरत थी? यह बड़ी असम्यक आजीविका है। कि कोई स्त्री वेश्या होकर रोटी कमा रही है! कोई सम्यक आजीविका खोजना। रोटी तो कमानी ही है, यह बात सच है, लेकिन सम्यक खोजना।

और ध्यान रखना, अगर तुम्हारी आजीविका सम्यक हो, तो तुम्हारे जीवन में शांति होगी। अगर तुम्हारी आजीविका सम्यक हो, तो सत्य और तुम्हारे बीच अनेक बाधाएं कम हो जाएंगी। अब अगर कोई आदमी झूठ का ही धंधा कर रहा है–समझो कि वकील है–अब बड़ा मुश्किल हो गया इसको जीवन में सत्य को लाना। इसका धंधा ही झूठ है। झूठ इसकी आजीविका है। झूठ में जितना पारंगत होगा, उतनी ही सफलता मिलने वाली है। अब सत्य से तो यह डरेगा। सत्य का कोई संबंध ही नहीं इसकी आजीविका से। इसको तो झूठ को ही सत्य सिद्ध करना है और ध्यान रखना, वही वकील सफल होता है, जो अदालत में झूठ को सत्य सिद्ध ही नहीं करता, बल्कि इस तरह सिद्ध करता है कि लगे कि सत्य है ही। खुद भी आंदोलित दिखायी पड़ता है कि जैसे उसे खुद आंखों से देखा है, सामने मौजूद था। क्योंकि अगर वकील खुद ही आश्वस्त नहीं है तो अदालत को आश्वस्त नहीं कर पाएगा। अगर भीतर खुद ही जान

रहा है कि यह झूठ है, तो झूठ की खबर मिलती रहेगी उसके चेहरे के ढंग से, जानेगा कि यह मामला तो हारे ही हैं, जीतना मुश्किल है। तो उदास होगा, प्रफुल्लित न होगा, बल न होगा, वाणी में प्रभाव न होगा।

सम्यक आजीविका का अर्थ है सृजनात्मक आजीविका। ऐसी कुछ आजीविका चुनना, जो तुम्हारे जीवन को परमात्मा की तरफ ले जाने में सहयोगी बने, जो सृजनात्मक हो, विध्वंसात्मक न हो।'

## 5. सम्यक वाणी

'जो है वही कहना। जैसा है, वैसा ही कहना। अन्यथा नहीं, बदलकर नहीं; ऊपर कुछ, भीतर कुछ, ऐसा नहीं। क्योंकि अगर तुम सत्य की खोज में चले हो, तो पहली शर्त पूरी करनी पड़ेगी कि तुम सच्चे हो जाओ। जो सच्चा हो गया है, सत्य का उसी से संबंध जुड़ेगा। जो झूठा है, उससे सत्य का संबंध न जुड़ सकेगा।

मैंने सुना है, एक छोटा बच्चा घर में आए मेहमानों से बोला, आप सब यहां मरने के लिए आए हैं क्या अंकल? चार वर्षीय राजू की यह बात सुनकर सब मेहमान हैरान रह गए। दादी ने तो बहुत डांटा राजू को और कहा कि यह क्या बोल रहा है? राजू ने कहा, मुझे क्या मालूम, मां ही कह रही थीं मुझे सुबह कि अगर मुझे पता होता कि ये सब यहां आकर मरेंगे तो मैं छुट्टियों में कहीं और चली जाती।

मेहमान घर में आता है, तो भाव कुछ, कहते कुछ, बताते कुछ। सुबह किसी को मिल जाते हो तो मन तो यह होता है–कहां से इस दुष्ट की शक्ल दिखायी पड़ गयी, मगर ऊपर से कहते हो कि दर्शन हुए बड़े दुर्लभ, बड़े दिनों में दिखायी पड़े, बड़ी कृपा हुई! और भीतर यह कि यह दुष्ट न दिखायी पड़ता तो अच्छा, पता नहीं मुकदमा जीतेंगे कि हारेंगे, यह सुबह–सुबह कहां दर्शन हो गए!

सम्यक वाणी का अर्थ होता है, जैसा है– चाहे जो भी कीमत चुकानी पड़े–पाखंड नहीं। अगर कोई बात पसंद नहीं पड़ती तो निवेदन कर देना कि पसंद नहीं पड़ती। अगर कोई बात पसंद पड़ती है तो निवेदन कर देना कि पसंद पड़ती है। झुठलाना मत। झूठे पाखंड अपने आसपास खड़े मत करना।

मुल्ला नसरुद्दीन का एक बहुत पुराना मित्र उसके घर आया। तपाक से मुल्ला उठा, पहले हाथ से हाथ मिलाया और फिर गले से गले मिला, फिर प्रसन्नता के अतिरेक में उसे गोद में उठाकर ड्राइंग रूम तक लाया। अंदर आया तो पत्नी ने कुढ़कर पूछा कि मुल्ला, जब मेरी कोई सहेली आती तो तुम्हें जैसे सांप सूंघ जाता है। तब भी कभी प्रसन्न हुए हो इतना? मुल्ला ने कहा, भाग्यवान, कुछ मत पूछ! प्रसन्न तो इससे भी ज्यादा होता हूं, मगर प्रगट नहीं करता। अगर तू कह दे कि प्रगट करने की छूट है, तो

अगली दफा देखना। तेरी सहेली को जो पकडूंगा, गोद में बिठाऊंगा तो छोडूंगा ही नहीं। मन तो यही होता है कि खूब प्रसन्न होएं, लेकिन तेरे डर के कारण नहीं हो पाते।

तुम अपने जीवन में थोड़ा देखना, तुम कुछ हो भीतर, बाहर कुछ बताए चले जाते हो। धीरे–धीरे यह बाहर की पर्त इतनी मजबूत हो जाती है कि तुम भूल ही जाते हो कि तुम भीतर क्या हो। सम्यक वाणी का अर्थ होता है, धीरे–धीरे सभी अर्थों में, दृष्टि में, संकल्प में, वाणी में, हृदय की अंतरतम अवस्था को झलकने देना।'

## 6. सम्यक संकल्प

'हठ मत करना। अक्सर लोग हठ को संकल्प मान लेते हैं और हठी आदमी को कहते हैं, यह संकल्पवान है। जिद्दी को संकल्पवान कहते हैं। जिद्द तो अहंकार है। संकल्प में कोई अहंकार नहीं होता। हठ और संकल्प में यही फर्क है। हठ में असली मुद्दा अहंकार का है। आदमी कहता है, ऐसा करके दिखाऊंगा, ऐसा करके रहूंगा। क्या कर रहा है, इसकी बहुत फिक्र नहीं है, लेकिन यह अहंकार का दावा है कि यह करके रहूंगा, नहीं कर पाया तो बड़ी ग्लानि हो जाएगी। धन में रस नहीं है, लेकिन धनी होकर दिखाना है। पद में रस नहीं है, लेकिन पदवान होकर दिखाना है। कुछ करके दिखाना है। यह जो बात है, यह असम्यक संकल्प है।

बुद्ध कहते हैं, सम्यक संकल्प का अर्थ होता है जो करने योग्य है, वह करना है। और जो करने योग्य है, उस पर पूरा जीवन दांव पर लगा देना। लेकिन किसी अहंकार के कारण नहीं, वह करने योग्य है, इसलिए।'

## 7. सम्यक व्यायाम एवं फल का स्वीकार

'अति न करना, बुद्ध कहते हैं। कुछ लोग हैं आलसी और कुछ लोग हैं अति कर्मठ। दोनों ही नुकसान में पड़ जाते हैं। आलसी उठता ही नहीं, तो पहुंचे कैसे! कर्मठ मंज़िल के सामने से भी निकल जाता है दौड़ता हुआ, रुके कैसे, वह रुक ही नहीं सकता। रुकने की उसे आदत नहीं है। मैं दोनों तरह के लोगों को जानता हूं, दोनों ध्यान में नहीं पहुंच पाते। आलसी कुछ करता ही नहीं, कर्मठ ज्यादा कर जाता है! तुम अगर तीर लेकर निशाना लगाने गए हो, तो निशाना सम्यक होना चाहिए। अगर थोड़ा नीचे पड़ा तो भी चूक जाएगा तीर, अगर थोड़ा ऊपर पड़ गया तो भी चूक जाएगा तीर। और जब तुम तीर को चलाओ तब प्रत्यंचा सम्यक खिंचनी चाहिए। अगर थोड़ी कम खिंची, तो पहले ही गिर जाएगा तीर। अगर थोड़ी ज्यादा खिंच गयी, तो आगे निकल जाएगा तीर। इसलिए बुद्ध का जोर अति वर्जित करने पर है। बुद्ध कहते हैं, सम्यक्त्व, मध्य, मज्झिम निकाय। सम्यक व्यायाम।'

## 8. सम्यक समाधि

'बुद्ध समाधि में भी कहते हैं सम्यक, ख्याल रखना। क्यों? क्योंकि ऐसी भी समाधियां हैं जो सम्यक नहीं हैं–जड़ समाधि। एक आदमी मूर्च्छित पड़ जाता है, इसको बुद्ध सम्यक समाधि नहीं कहते। ऐसा आदमी गहरी निद्रा में पड़ गया, बेहोशी। मन के तो पार चला गया, लेकिन ऊपर नहीं गया, नीचे चला गया। मन तो बंद हो गया, क्योंकि गहरी मूर्च्छा में मन तो बंद हो जाएगा, लेकिन यह बंद होना कुछ काम का न हुआ। मन बंद हो जाए और होश भी बना रहे। मन तो चुप हो जाए, विचार तो बंद हो जाएं, लेकिन बोध न खो जाए।

तीन स्थितियां हैं मन की–स्वप्न, जागृति, सुषुप्ति। स्वप्न तो बंद होना चाहिए–चाहे सम्यक समाधि हो, चाहे असम्यक समाधि हो, स्वप्न तो दोनों में बंद हो जाएगा, विचार की तरंगें बंद हो जाएंगी। लेकिन जड़ समाधि में आदमी गहरी मूर्च्छा में पड़ गया, सुषुप्ति में डूब गया, उसे होश ही नहीं है। जब वापस लौटेगा तो निश्चित ही शांत लौटेगा, बड़ा प्रसन्न लौटेगा, क्योंकि इतना विश्राम मिल गया। लेकिन यह कोई बात न हुई! यह तो नींद का ही प्रयोग हुआ। यह तो योगतंद्रा हुई। असली बात तो तब घटेगी जब तुम भीतर जाओ और होशपूर्वक जाओ। तब तुम प्रसन्न भी लौटोगे, आनंदित भी लौटोगे और प्रज्ञावान होकर भी लौटोगे। तुम बाहर आओगे, तुम्हारी ज्योति और होगी। तुम्हारी प्रभा और होगी। तुम्हारे चारों तरफ रोशनी होगी। तुम्हारे चारों तरफ जीवन में सुगंध होगी।

ऐसा समझो कि एक आदमी को हम स्ट्रेचर पर लिटा लें, क्लोरोफॉर्म दे दें और फिर बगीचे में घुमा दें। तो निश्चित ही उसकी नाक तो काम कर ही रही है, फूलों की गंध भी उसके भीतर जाएगी–उसे पता नहीं चलेगा। और वृक्षों की ताजी हवा भी उसको लगेगी, शीतल भी होगा–उसे पता नहीं चलेगा। फिर जैसे–जैसे वह होश में आने लगे, हम जल्दी उसे बगीचे के बाहर ले जाएं। आंख खोलकर वह कहेगा, अच्छा लगा। कुछ–कुछ भनक याद आएगी–ताजा था, सुगंध थी, मगर ज्यादा कुछ पकड़ में न आएगा। और किस रास्ते गया और किस रास्ते लौटा, यह भी पता नहीं होगा। फिर खुद न जा सकेगा। अगर उसको तुम छोड़ दो जाने को तो खुद न जा सकेगा, रास्ते का पता नहीं है। दो तरह की समाधियां हैं। जड़ समाधि, आदमी गांजा पीकर जड़ समाधि में चला जाता है, अफीम खाकर जड़ समाधि में चला जाता है; मारीजुआना, एल.एस.डी., मेस्कलीन, इनको लेकर जड़ समाधि में चला जाता है। अभी पश्चिम में जड़ समाधि का खूब प्रभाव चल रहा है। भारत में तो रहा ही बहुत दिनों से–गंजेड़ी, भंगेड़ी, सब तरह के साधु–संन्यासी तुम्हें मिल जाएंगे। वह जड़ समाधियां हैं।

बुद्ध ने उनका बड़ा विरोध किया। बुद्ध ने कहा, यह भी कोई बात है, माना कि सुख मिलता है, इसमें कोई शक नहीं है–तुम भी अगर भंग खाकर डूब गए मस्ती में तो

सुख मिलता है। गांजे की दम लगा ली तो डूब गए, एक तरह का सुख मिलता है। शराब भी इसी तरह के सुख को देती है–भूल गए सब, डूब गए अपने में, मगर यह डुबकी नींद की है। यह कोई डुबकी हुई! यह कुछ मनुष्य योग्य हुआ! ऊपर उठो, जागते हुए भीतर जाओ। दीया लेकर भीतर जाओ। मशाल लेकर भीतर जाओ। ताकि सब रास्ता भी उजाला हो जाए और तुम्हें पता भी हो जाए, तो जब जाना हो तब चले जाओ। और तुम फिर किसी चीज पर निर्भर न रहोगे। तो तुमने देखा, हिंदू साधु–संन्यासी तुम्हें मिल जाएंगे कुंभ के मेले में–दम लग रही, सत्संग हो रहा। दम मारो दम! सत्संग हो रहा है, ब्रह्मचर्चा चल रही है! यह कुछ नयी बात नहीं है, इस मुल्क में पांच हजार साल से चल रही है। यह सब समझते हैं कि ये सब शंकर जी के शिष्य हैं। बम भोले! इसका बुद्ध ने बहुत विरोध किया। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि असली बात ही चूकी जा रही है। असली बात है, जाग्रत होकर आनंद को उपलब्ध हो जाना। इसको उन्होंने सम्यक समाधि कहा। यह आर्य–आष्टांगिक मार्ग। 'बुद्ध कहते हैं, चार आर्य–सत्य हैं–दुख है, दुख की उत्पत्ति है, दुख से मुक्ति है और मुक्तिगामी आर्य–आष्टांगिक मार्ग है। ये आठ अंग हैं उस दुख–मुक्ति के लिए।'

–सदगुरु ओशो के दृष्टांत उनकी प्रसिद्ध प्रवचनमाला 'एस धम्मो सनंतनो' के प्रवचन–65 से लिए गए हैं। संक्षेप में निम्नांकित तालिका देखिए–

## दो अतियों के मध्य सम्यकता

| क्रम | | पहली अति | दूसरी अति | सम्यक मध्य मार्ग |
|---|---|---|---|---|
| 1. | दृष्टि | फूल–विधायक आदर्श<br>ऑप्टिमिस्टिक | कांटे –नकारात्मक सोच<br>पेसिमिस्टिक | फूल व कांटे दोनों,<br>रियलिस्टिक |
| 2. | स्मृति | ऑब्जेक्टिव होश<br>केवल संसार के प्रति | सब्जेक्टिव होश<br>केवल स्वयं के प्रति | डबल–एरोड होश<br>साक्षी, ध्यान |
| 3. | कर्म | अति कर्मठता<br>राजसी प्रवृत्ति | अकर्मण्यता<br>आलसी प्रवृत्ति | सत चित आनंद<br>से जन्मे कर्म |
| 4. | आजीविका | अहं–आश्रित<br>अति–दूरी | पराश्रित<br>अति–निकटता | मंदिर के खंभे<br>परस्पराश्रित |
| 5. | वाणी | व्यर्थ अभिव्यक्ति<br>अति कटुता | मौन, अनभिव्यक्ति<br>अति मधुरता | सत्यं शिवं सुंदरम्<br>की अभिव्यक्ति |
| 6. | संकल्प | हठ, जिद्द,<br>भावावेश | अनिर्णय,अति–विचार,<br>डांवाडोलपन | समझ व भाव<br>का संतुलन |
| 7. | व्यायाम | तनाव,<br>भाग्यवाद, | गंभीरता<br>लक्ष्यहीनता | फलाकांक्षारहित<br>लीला, तथाता |
| 8. | समाधि | सामान्य सजगता | जड़ता, मूर्च्छा | सम्यक समाधि |

# घर का अंधेरा

आत्मा का अर्थ क्या होता है?

आत्मा का अर्थ होता है : वह जो तुम्हीं हो और कोई भी नहीं है।

आत्मा का अर्थ होता है : तुम्हारी 'ऑथेंटिक यूनीकनेस'

तुम्हारी वह जो प्रामाणिक अद्वितीयता है, जैसे तुम हो और कोई भी नहीं।

सारे जगत में अकेलापन, वह जो बुनियादी रूप से व्यक्तित्व है,

वह जो 'इंडिविजुअलिटी' है, वही तो आत्मा है।

धर्मों ने– जिन्हें हम आज तक धर्म कहते हैं– आत्मा को नष्ट किया है,

विकसित नहीं किया, क्योंकि उन्होंने आचरण को थोपा है।

मैं कोई आचरणवादी नहीं हूं, कोई व्यवहारवादी नहीं हूं,

कोई परतंत्रतावादी नहीं हूं।

किसी आदमी के लिए नियम तय करने का मुझे कोई अधिकार नहीं,

किसी को भी कोई अधिकार नहीं है।

एक बात जरूर हम विचार कर सकते हैं और

वह यह कि मनुष्य की चेतना का दीया कैसे जलता है?

वह भी कोई दूसरा आपके दीये को नहीं जला सकेगा।

लेकिन पड़ोस के घर में दीया जल रहा हो,

तो आपकी भी प्यास जग सकती है कि मेरे घर में भी दीया जल जाए।

पड़ोस का दीया आपके घर में नहीं आ जाएगा,

लेकिन आपके घर का अंधेरा दिखाई पड़ सकता है

पड़ोसी के दीये के प्रकाश में।

अंधेरे को देखने के लिए भी रोशनी चाहिए।

तो पड़ोस में अगर रोशनी जल रही हो,

तो घर में अंधेरा है, यह पता चलने लगता है।

– ओशो, अमृत कण

# दृष्टि ही सृष्टि,
# दुख से मुक्ति

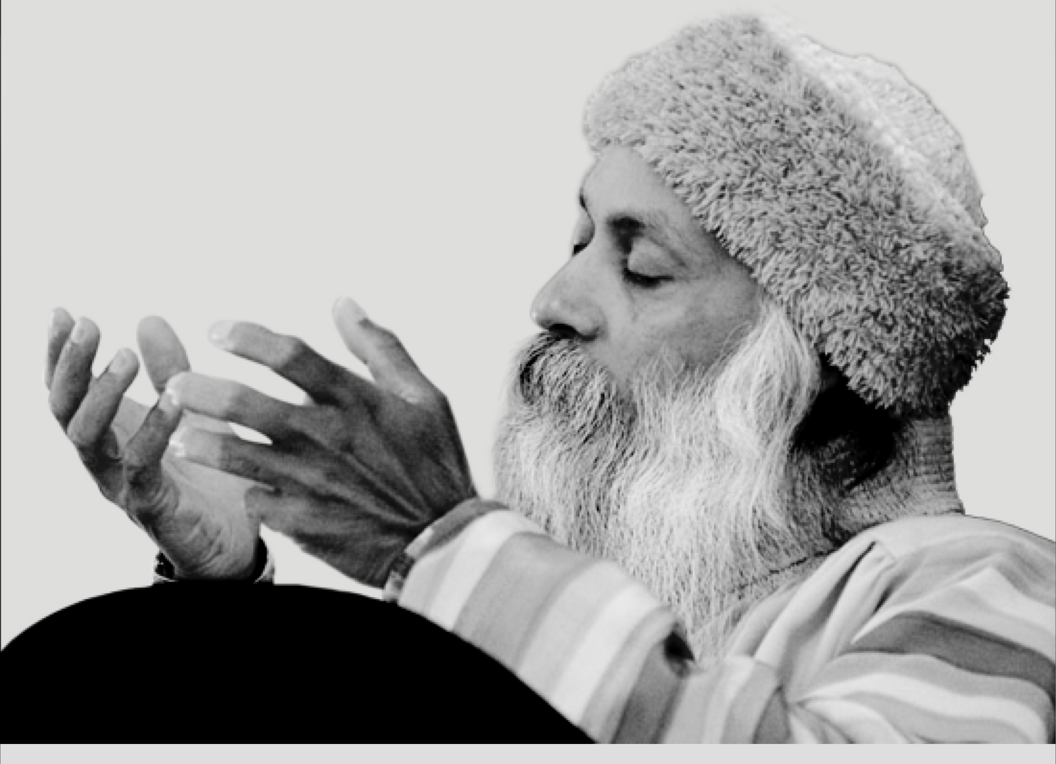

- दृष्टि ही सृष्टि, दुख से मुक्ति
- मन प्रोजेक्टर, जगत स्क्रीन
- चुस्ती, सुस्ती एवं मस्ती
- तथ्य, कथ्य और सत्य
- अपनी-अपनी नज़र, अपने-अपने चश्मे
- खुद के दोस्ती भी, दुश्मन भी
- सौभाग्य और दुर्भाग्य- हमारी व्याख्याएं
- हम स्वयं अपने संसार के सर्जक हैं
- मस्त होकर जीयो, अमृत रस पीयो

# दृष्टि ही सृष्टि, दुख से मुक्ति

निर्वाण उपनिषद का ऋषि कहता है–

संन्यास वह है जो त्रयगुणों से रहित स्वरूप के अनुसंधान में तथा भ्रांति के भंजन में समय व्यतीत करता है।

संन्यास करता क्या है? गृहस्थ तो संसार बसाता है, निर्माण करता है स्वप्नों का, आरोपण करता है विचारों का, माया का, मोह का, ममता का। संन्यास क्या करता है? गृहस्थ को तो ऐसा दिखाई पड़ता है कि संन्यास कुछ भी नहीं करता, भगोड़ा है, एस्केपिस्ट है। क्योंकि जो–जो गृहस्थ करता है, वह तो संन्यास नहीं करता है। संन्यास भी कुछ करता है। वह त्रयगुणों से रहित स्वरूप के अनुसंधान में तथा भ्रांति के भंजन में समय व्यतीत करता है।

हम सब भ्रांति के सृजन में जीवन व्यतीत करते हैं। नीत्से ने कहा है, 'मैन कैन नॉट लिव विदाउट इल्यूज़न्स।' जरूरी हैं भ्रांतियां, उन्हीं के सहारे आदमी जीता है, नहीं तो नहीं जी सकता। नीत्से दूर तक ठीक कहता है। जहां तक हमारा संबंध है, नीत्से सौ प्रतिशत ठीक कहता है, आदमी बिना भ्रांतियों के नहीं जी सकता। हजार तरह की भ्रांतियां उसके चारों तरफ चाहिए। उन्हीं के बीच वह जी सकता है। तो नीत्से ने कहा है 'इल्यूजन्स आर नेसिसॅरी' भ्रम भी जरूरी हैं, झूठ भी उपयोगी हैं। नीत्से ने तो बहुत बढ़िया बात कही है। उसने तो यह कहा है कि सत्य का कोई अर्थ ही नहीं है। जो असत्य काम पड़ जाए, वहीं सत्य है। अर्थात उपयोगी असत्य, सत्य है। और असत्य काम पड़ते हैं, चौबीस घंटे काम पड़ रहे हैं। थोड़ा सा हम देख लें कि किस भांति काम पड़ते हैं।

हमें कोई पता नहीं है कि आत्मा अमर है, लेकिन अब जिंदा रहना है, तो मन में यह ख्याल लेकर चलना चाहिए कि आत्मा अमर है, नहीं तो जिंदा रहना मुश्किल हो जाएगा। हमें कोई पता नहीं है कि प्रेम शाश्वत होता है। चारों तरफ देखें तो क्षणिक होता है, शाश्वत नहीं होता है। सब क्षण में बिखर जाता है। लेकिन अगर जिंदा रहना है, तो मानकर चलना चाहिए कि प्रेम शाश्वत चीज है। कविताएं बड़ी जरूरी हैं आदमी के आसपास जीने के लिए। उनके सहारे वह अपने को भुलाए रखता है।

कल होगा, इसका कोई निश्चय नहीं है। लेकिन हम कल का इंतजाम करके सोते हैं। नहीं तो रात सोना ही मुश्किल हो जाएगा। यह सवाल कल के इंतजाम का इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, आज की रात सोने का सवाल है। कल का इंतजाम कर लेते हैं, और कल होगा ही, ऐसी मान्यता मन में रख लेते हैं, तो रात नींद आसानी से आ जाती है। अगर पक्का हो जाए कि कल सुबह नहीं होगी, कल सुबह मौत है, तो कल

सुबह मौत होगी कि नहीं, यह बड़ा सवाल नहीं है, आज की नींद खराब हो जाएगी। फिर आज सोया नहीं जा सकता। तो सोना हो, तो कल का भ्रम बनाए रखना जरूरी है।

अगर जिंदगी के दुखों को गुजारना हो, तो भविष्य की आशा को बनाए रखना जरूरी है कि कोई बात नहीं, सुख मिलेगा। अगर इस मकान में नहीं मिला, दूसरे मकान में मिलेगा। अगर इस व्यक्ति से नहीं मिला, दूसरे व्यक्ति से मिलेगा। आज नहीं मिला, कल मिलेगा। 'फ्यूचर ओरिएंटेशन', भविष्य की तरफ आशाओं को दौड़ाए रखना जरूरी है।

मनोवैज्ञानिक एक बहुत कीमती बात कहते हैं, जो बहुत नई खोज है एक अर्थों में, पहले कभी किसी ने नहीं ख्याल किया था। रात आप सपने देखते हैं, तो आप सोचते होंगे कि सपनों से नींद में बाधा पड़ती है। ऐसा सदा सोचा जाता रहा है। कई आदमी मेरे पास भी आते हैं। वे कहते हैं, रात बहुत सपने आते हैं, तो नींद ठीक से नहीं हो पाती। सभी का यह ख्याल है। लेकिन मनोवैज्ञानिक ज्यादा अनुभवचर हैं। और वे कहते हैं कि अगर सपने न हों तो आप सो ही न पाएं। सपने जो हैं वे नींद में बाधा नहीं, सहयोगी हैं। नींद को सतत जारी रखने के लिए सपने काम करते हैं।

आपको प्यास लगी है जोर से नींद में। आप एक सपना देखना शुरु कर देंगे कि पानी पी रहे हैं। झरना बह रहा है, झरने के पास बैठे पानी पी रहे हैं। अगर यह सपना न आए, तो प्यास आपकी नींद तोड़ देगी। आपको उठकर पानी पीने जाना पड़ेगा। नींद में बाधा पड़ जाएगी। यह सपना जो है, एक 'इल्यूजन' पैदा करता है। कहता है, कहां जाने की जरूरत है, नींद टूटने का तो कोई सवाल ही नहीं। झरना यह रहा, पीयो। भूख लगी है, राजमहल में निमंत्रण मिल जाता है। नहीं तो भूख नींद को तोड़ देगी। सपना 'सब्स्टीट्यूट' है और नींद को सम्हालने का उपाय है। ठीक ऐसे ही जिंदगी में भी भ्रांति जागरण को सम्हालने का उपाय है। जिसे हम जागरण कहते हैं, उसके आसपास भ्रांति चाहिए, नहीं तो हम मुश्किल में पड़ जाएंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में पड़ गया है। वह सम्राट की पत्नी है। मुल्ला उससे विदा हो रहा है। रात चार बजे उसने उससे कहा कि तुझसे सुंदर स्त्री मैंने अपने जीवन में न देखी और न मैं सोच ही सकता हूं कि तुझसे सुंदर स्त्री हो सकती है। तू अनूठी है। तू परमात्मा की अद्भुत कृति है। स्त्री फूल गई, जैसा कि सभी स्त्रियां फूल जाती हैं। उस क्षण जमीन पर उसके पैर न रहे। लेकिन मुल्ला मुल्ला ही था। जब उसने उसे इतना फूला देखा, उसने कहा, लेकिन एक बात और, जस्ट फॉर योर इन्फॉर्मेशन कि यह बात मैं और स्त्रियों से भी पहले कह चुका हूं। और वायदा नहीं कर सकता कि आगे और स्त्रियों से नहीं कहूंगा।

वह स्त्री, जो एकदम आनंद की मूर्ति हो गई थी, कुरूप हो गई। प्रेम एकदम सूखा हुआ मालूम पड़ा। सब नष्ट हो गया। सपने खंडहर होकर गिर गए। मुल्ला ने एक सत्य कह दिया। सभी प्रेमी यही कहते हैं, लेकिन जब कहते हैं, तब इतने भाव से कहते हैं कि वे भी भूल जाते हैं कि यह बात हम पहले भी कह चुके हैं।

मुल्ला एक स्त्री के प्रेम में है, लेकिन शादी को टालता चला जाता है। आखिर उस स्त्री ने कहा कि अंतिम निर्णय हो जाना चाहिए। आज आखिरी बात। शादी करनी है या नहीं? अब टालना नहीं हो सकता। मुल्ला ने कहा, भ्रम जब बहुत ताजे थे, तभी शादी हो जाती, तो हो जाती। अब तो भ्रम बहुत बासे पड़ गए हैं। अब तो हम उस हालत में हैं कि अगर शादी हो गई होती, तो तलाक का इंतजाम हो रहा होता। उस स्त्री ने कहा, दरवाजे से बाहर निकल जाओ। मुल्ला ने कहा, जाता हूं, लेकिन मेरे प्रेम-पत्र लौटा दो। स्त्री ने कहा क्या मतलब, क्या करोगे प्रेम-पत्रों का? मुल्ला ने कहा, फिर भी जरूरत पड़ेगी ही। तो दुबारा लिखने की झंझट कौन करे। और फिर मैंने ये एक प्रोफेशनल राइटर से लिखवाए थे, पैसा खर्च किया था। वही भ्रम बार-बार खड़ा करना पड़ता है। जीना मुश्किल है। एक कदम चलना मुश्किल है। इसलिए गृहस्थ उसे कहें हम, जो बिना भ्रम के नहीं जी सकता। अगर इसकी ठीक मनोवैज्ञानिक परिभाषा करनी हो, तो गृहस्थ वह है, 'द वन हू कैन नॉट लिव विदाउट इल्यूज़न्स'। उसे भ्रमों के घर बनाने ही पड़ेंगे, उसे कदम-कदम पर भ्रम की सीढ़ियां निर्मित करनी पड़ेंगी।

संन्यास वह है, जो बिना भ्रम के रहने के लिए तैयार हो गया। जो कहता है, सत्य के साथ ही रहेंगे, चाहे सत्य तार-तार कर दे, तोड़ दे, खंड-खंड कर दे, मिटा दे, नष्ट कर दे, लेकिन अब हम सत्य जैसा है, उसके साथ ही रहेंगे। अब हम भ्रम खड़े न करेंगे। इसलिए संन्यास भ्रमों को तोड़ने में लगा रहता है, भ्रांतियों को तोड़ने में लगा रहता है। जहां-जहां उसे लगता है, भ्रांतियां खड़ी की जा रही हैं, वहां-वहां वह तोड़ता है। मन के प्रति सजग होता है कि मन कहां-कहां भ्रांतियां खड़ी करवाता है। देखता है अपने चारों तरफ कि मैं कोई सपने तो नहीं रच रहा हूं जागने में या सोने में। मैं बिना सपने के जीऊंगा।

बिना सपने के जीने की बात बड़ा दुस्साहस है। साधारण साहस नहीं है यह, दुस्साहस है, क्योंकि इंचभर सरकना मुश्किल है बिना सपने के। बिना सपने के इंचभर भी सरकना मुश्किल है। एक कदम न उठेगा। अगर सपने आपसे छीन लिए जाएं, आप यहीं गिर जाएंगे। मिट्टी के ढेर हो जाएंगे। संन्यास फिर भी चलता है, उठता है, बैठता है, सारे भ्रम तोड़कर। और जैसे ही भ्रमों को तोड़ देता है पूरे, वैसे ही उसकी सत्य में गति हो जाती है। टु नो द 'अनट्रू' इज़ द ओनली वे 'टुवर्ड्स ट्रूथ'। असत्य को असत्य की भांति जान लेना सत्य की ओर जाने का एकमात्र मार्ग है। भ्रांति को भ्रांति की भांति पहचान लेना सत्य की अनुभूति का द्वार है। इसलिए प्राथमिक रूप से संन्यास को भ्रांतियां तोड़नी पड़ती हैं।

**-ओशो, निर्वाण उपनिषद प्रवचन-14**

# मन प्रोजेक्टर, जगत स्क्रीन

## प्रश्नकर्ता– कृपया सम्यक दृष्टि के बारे में विस्तार से समझाएं?

पहले असम्यक दृष्टि क्या होती है, इस कथा के द्वारा ठीक से समझ लो।

शिवाजी के गुरु स्वामी रामदास जी राम की कथा सुनाया करते थे। उनकी आवाज इतनी मधुर थी और शैली इतनी प्यारी कि दूर–दूर से लोग राम कथा सुनने आया करते थे। दिव्य लोकों में भी खबर पहुंची। स्वयं हनुमान को उत्सुकता हो गयी। वे भी आदमी का वेश धारण करके श्रोताओं के बीच आकर बैठने लगे।

एक दिन जिक्र आया कि हनुमान लंका गये हैं, सीता के पास राम का संदेश लेकर। अशोक वाटिका में, जहां सीता कैद थी, सफेद रंग के फूल खिले थे। हनुमान जी स्वयं सभा में मौजूद थे और कहानी सुन रहे थे, वे उठकर खड़े हो गये और उन्होंने कहा कि महाराज इस कहानी में थोड़ा सा परिवर्तन कर लें। फूल सफेद नहीं, बल्कि लाल रंग के थे। गुरु रामदास ने कहा–'तुम बैठ जाओ। मैं जो कह रहा हूं, वही ठीक है।'

हनुमान के क्रोध का पारावार न रहा। वे अपने असली रूप में प्रकट हो गये। उन्होंने कहा कि मैं स्वयं हनुमान हूं। मैं अशोक वाटिका में गया था। मैं आपसे कहता हूं कि फूल लाल रंग के थे। आप सफेद फूल क्यों कह रहे हैं? लेकिन गुरु रामदास ने कहा कि नहीं, फूल सफेद थे। सफेद ही कहूंगा। फूल लाल नहीं थे।

हनुमान बोले, तो चलो स्वयं भगवान राम के पास चलते हैं। वहीं फैसला हो जाए। तुम भी अजीब हठी आदमी हो। जब मैं प्रत्यक्षदर्शी गवाह, खुद बता रहा हूं कि फूल लाल रंग के थे तो मानते क्यों नहीं? अपने कंधों पर बिठाकर हनुमान रामदास को बैकुंठ ले गये। भगवान राम के पास हाजिर हुए। पूरी बात उन्हें सुनाई। राम ने कहा–'हनुमान, तुम्हीं मान जाओ। फूल सफेद रंग के थे।'

हनुमान ने कहा–'हद हो गई। आप रामदास का पक्ष ले रहे हैं। सच पूछो तो आप भी वहां अशोक वाटिका में नहीं गए थे। मैं अकेला गया था और मैं ही एकमात्र प्रमाण हो सकता हूं इस बात का कि फूल किस रंग के थे।' राम ने कहा–'नहीं, तुमने उस समय जो देखा, वह सम्यक ढंग से दिखाई नहीं दिया।'

हनुमान ने कहा–'प्रभु क्षमा करें, आप भी वहां मौजूद नहीं थे। मां सीता को बुलाएं, वे वहां थीं। उनकी बात ही प्रामाणिक मानी जाएगी।'

सीता जी आईं। उन्होंने पूरी बात सुनी और मुस्कुरा कर कहा–'हनुमान, क्योंकि तुम मेरे पास राम का संदेश लेकर आये थे। रावण के प्रति बहुत क्रोध तुम्हारे मन में था। क्रोध के चश्मे से तुमने जो देखा, वह सत्य नहीं था। तुम्हारी आंखों में गुस्से की

वजह से खून उतर आया था। तुम आग–बबूला हो रहे थे, लाल–पींले हो रहे थे। उस क्रोध में तुम्हें सफेद फूल लाल दिखाई दिए। वह तुम्हारे क्रोध का रंग था, फूलों का रंग नहीं था। हनुमान, तुम्हीं सुधार कर लो। रामदास ठीक कहते हैं।'

हमारा मन एक प्रोजेक्टर जैसा है। हम जो देखते हैं, वह हमारे प्रोजेक्टर द्वारा ही पेंफके गये रंग हैं। जैसे प्रोजेक्टर से फिल्म प्रदर्शित की जाती है, और पर्दे पर दिखाई देतीं है। पर्दा तो बिल्कुल कोरा होता है अधिकतर हम अपने प्रोजेक्टर मन के द्वारा प्रक्षेपित भावनाओं, कल्पनाओं को देख लेते हैं। मन कल्पना करने में बड़ा कुशल है। सड़क के किनारे फुटपाथ पर लेटे एक व्यक्ति को देखकर वहां से गुजरने वाले लोगों के मन में क्या ख्याल आए, जरा देखिए–

**शराबी**–लगता है रात ज्यादा पी गया। सुबह हो गई, अभी तक उतरी नहीं।

**साधु**–अहा, कैसा समाधिस्थ साधक! रामकृष्ण जैसा परमहंस प्रतीत होता है।

**डॉक्टर**–शायद कोमा में है। ब्रेन 'हीमोरेज' का केस है।

**भंगेड़ी**–वाह उस्ताद, ओवर डोज लोगे तो यूं ही पड़े रहोगे! हमसे सीखो।

**अमीर व्यापारी**–क्या घोड़े बेचकर सो रहा है! एक हम हैं कि चिंता और अनिद्रा से पीड़ित हैं।

**पुलिस वाला**– चलो दस रुपये की आमदनी हुई। फुटपाथ पर सोने की फीस वसूली जाए।

**अविवाहित युवक**–कुआंरों का दुख देखो। अकेले जीना, अकेले सोना, अकेले मरना।

**विवाहित प्रौढ़**–काश! मुझमें इतना साहस होता कि झगड़ालू बीवी से भागकर सड़क पर ही सो जाता। यह है साहसी मर्द। वाह भाई वाह!

**नेता**–एक वोट यहां पड़ी है। थोड़ी दया दिखा दूं तो मेरी हो जाएगी। ले नोट, दे वोट।

अभिनेता–गजब का सीन है! आगामी 'बेघरबार' फिल्म में मैं इसी की नकल करूंगा। हिट हो जाएगी मेरी एक्टिंग!

**आम आदमी**–भाग लो यहां से बच्चू! मर गया होगा तो गवाही देनी पड़ेगी, नानी याद आ जाएगी।

हमारा ज्ञान, पूर्व–अनुभव, भय, संदेह, विश्वास, सोच–विचार का ढंग हमारी दृष्टि को लगातार अपने रंग में रंगता रहता है। हमें वास्तविकता के सीधे सम्पर्क में नहीं आने देता। 'जो है' वह नहीं देख पाते, क्योंकि 'जो नहीं है' हम उसमें उलझ जाते हैं। अतीत की स्मृतियां और भविष्य की कल्पनाएं बीच में दीवार बनकर खड़ी हो जाती हैं, तथा वर्तमान को आच्छादित कर लेतीं हैं। घटना का यथार्थ अनभिज्ञ हीं रह जाता है।

किसी भी घटना के तीन पहलू होते हैं। पहला तथ्य, दूसरा कथ्य, तीसरा सत्य। इन तीन पहलुओं से किसी घटना को समझने की कोशिश करें। जब हम किसी घटना के आसपास एक कथा गढ़कर देखते हैं, तो हम अपनी कल्पना को ही देखते हैं। काश हम सत्य को देख पाएं तो हमारा जीवन दुख मुक्त हो जाए। हर कथा व्यथा में ले जाती है। सत्य द्वार है आनंद का, सच्चिदानंद का।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन रात में सड़क से गुजर रहा था। बगल में कब्रिस्तान था। सूनी सड़क थी। कब्रिस्तान के पास से गुजरते हुए भूत–प्रेतों का डर लग रहा था। फिर उसने देखा कि सामने से कुछ लोगों का झुण्ड चला आ रहा है। एक व्यक्ति घोड़े पर सवार है। कुछ लोग हाथ में मशाल लिए हुए हैं। कुछ के हाथ में बंदूकें हैं और कुछ के पास चमकती हुई तलवारें नजर आ रही हैं। नसरुद्दीन ने सोचा, मारे गए! एक तो भूत–प्रेत का भय और दूसरा सामने डाकुओं का गिरोह आ रहा है। आज तो लूटपाट कर ही लेंगे।

अब तो बचना भी मुश्किल है। मरता क्या न करता। डर के मारे कुछ और नहीं सूझा। आस–पास कोई वृक्ष भी नहीं था, जहां छिप सके। वह दीवार फांदकर कब्रिस्तान में कूद गया।

वह कोई डाकुओं का दल नहीं था। एक बारात लौट रही थी। घोड़े पर दूल्हा बैठा हुआ था। उसकी तलवार चमक रही थी। बाराती मशाल लिए हुए थे। उन्होंने भी देखा कि सामने कोई था, एक छाया दिखाई दे रही थी, और अचानक गायब हो गई। वह छुप गया लगता है दीवार फांदकर। जरूर कोई षड़यंत्रकारी है। वे लोग भी सतर्क हो गये।

उन्होंने कहा कि लगता है किसी डाकू को मालूम पड़ गया है कि बारात वापस लौट रही है, धन है, जेवर हैं, दहेज में मिली सामग्री है। जरूर लूटपाट के इरादे से उसके साथ कुछ और लोग आये होंगे। वे लोग भी डर गये। दीवार फांदकर कब्रिस्तान के भीतर गये। वह आदमी कहीं नजर नहीं आया। फिर उन्होंने देखा कि एक गड्ढा खुदा हुआ है। लगता है किसी के लिए कब्र खोदी गई है। कब्र का मेहमान अभी आया नहीं। शायद लोग उसे लेने गये होंगे। गड्ढे में देखा कि नसरुद्दीन उसमें सोया हुआ है।

अब तो पक्का हो गया कि यह मुर्दा नहीं है, क्योंकि मुर्दे के ऊपर लोग मिट्टी डाल जाते हैं। वे आस–पास आ गये। चारों ओर से गड्ढे को घेरकर खड़े हो गये। उन्होंने देखा कि इसकी सांस चल रही है। उन्होंने आवाज दी कि तुम कौन हो और यहां क्या कर रहे हो? नसरुद्दीन और घबड़ा गया। उसने धीरे से एक आंख खोली। देखे उनके रंग–बिरंगे कपड़े, पगड़ियां, फूलमालाएं; बात समझ में आ गयी कि बाराती हैं, दूल्हा है। मुकुट सिर पर लगा है। कोई चोर डाकुओं का गिरोह नहीं है। उन्होंने फिर पूछा चिल्लाकर कि तुम कौन हो, यहां क्यों आये हो, क्या कर रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, 'मैं सब समझ गया। आपके कारण मैं यहां आया और मेरे कारण आप यहां आये हैं।' नसरुद्दीन ने कहा कि हम दोनों ही भयभीत हैं। मैं आपसे डर गया हूं, आप मुझसे डर

गये हैं। कुछ गलतफहमी खड़ी हो गयी है।

हमारे जीवन में अधिकतर गलतफहमी ही होती है। कोई किसी को समझ नहीं पाता। कोई किसी की बात ठीक से समझ ही नहीं पाता। पति–पत्नी को अक्सर ये शिकायत रहती है कि दूसरा उनकी बात नहीं समझता। दोस्तों को शिकायत रहती है कि हम कुछ कहते हैं, तुम कुछ समझ लेते हो। ऐसा लगता है कि हम अपने–अपने निजी संसार में जीते हैं। दूसरों की भावनाओं को समझ ही नहीं पाते। एक ही बात के

अलग–अलग अर्थ निकाल लेते हैं। कोई कहता कुछ है, हम समझ कुछ और लेते हैं। 'मिसअंडरस्टैंडिंग' हमारी सामान्य स्थिति है। पति कुछ कहता है, पत्नी कुछ और ही सुनती है। पिता–पुत्र के बीच संवाद लगभग असंभव है। जेनरेशन गैप... शब्दों के भिन्न–भिन्न अर्थ हो जाते हैं। शिक्षक–विद्यार्थी, अफसर–मातहत, नेता–जनता, भाई–भाई, पड़ोसी, कोई किसी की नहीं सुनता।

एक दिन सेठ चंदूलाल और मुल्ला नसरुद्दीन प्रातः भ्रमण को जा रहे थे। सड़क के किनारे एक दरख़्त पर बैठी चिड़िया की चीं... चीं... चींचीं... सुनकर चंदूलाल ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया–'लगता है कोई धार्मिक पक्षी है, 'राम–सिया–दशरथ' का जाप कर रही है।' मुल्ला बोला–'यह तुम्हारा रूढ़िवादी हिंदू संस्कार है। तुम्हारा गहरा सम्मोहन है। गौर से सुनो, वह चिड़िया 'अल्लाह–खुदा–बरकत' कह रही है'। दोनों में विवाद छिड़ गया। उन्होंने तय किया कि किसी तीसरे व्यक्ति से फैसला कराते हैं।

थोड़ी देर बाद एक सब्जी बेचने वाला वहां से गुजरा। दोनों ने उससे पूछा कि बताओ यह पक्षी क्या उच्चारण कर रहा है? राम सिया दशरथ कह रहा है कि अल्ला खुदा बरकत? सब्जी वाला बोला–'न तो चिड़िया राम सिया दशरथ जप रही है, न ही अल्ला खुदा बरकत। वह तो साफ–साफ आवाज लगा रही है–'आलू–प्याज–अदरक, आलू–प्याज–अदरक।'

हम वही समझ सकते हैं, जितनी हमारी क्षमता है, जितनी हमारी समझ है।

एक दफा मैंने इसे व्यावहारिक रूप से दर्शाने के लिए एक प्रयोग किया। दस लोगों के समूह में से एक व्यक्ति के कान में एक वाक्य बोला–'हिमालय से गंगा की पवित्र धारा निकलती है।' उस व्यक्ति ने दूसरे के, दूसरे ने तीसरे के कान में कहा। इस प्रकार दस लोगों ने जो सुना था, वह अगले को फुसफुसाकर बताया।

अंत में दसवें से पूछा कि तुम्हारे पास क्या संदेश पहुंचा।

उसने बताया–'हेमा मालिनी धर्मेंद्र से बहुत प्यार करती है।'

हंसो मत। यह किसी और की नहीं, हम सबकी कहानी समझो। न हमारी दृष्टि सम्यक है, न श्रवण की क्षमता। हमारी सभी इंद्रियां प्रदूषित हैं, असम्यक हैं।

# चुस्ती, सुस्ती एवं मस्ती

## प्रश्नकर्ता– क्या 'पॉजीटिव थिंकिंग' ही सम्यक दृष्टि है?

नहीं। 'पॉजीटिव थिंकिंग' वाले लोग चुस्त, राजसी होते हैं। 'निगेटिव थिंकिंग' वाले सुस्त, तामसी होते हैं। ऐसा समझें कि एक त्रिकोण है। उसके नीचे के दो आधार कोण हैं– विधायक दृष्टि और नकारात्मक दृष्टि; तथा तीसरा शीर्ष कोण है– सम्यक दृष्टि। वह दोनों के पार है। विधायक और नकारात्मक, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों ही अतियां हैं। सम्यक्ता सदा मध्य में होती है। सम्यक व्यक्ति सहज स्फूर्त, सात्विक होते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन के दो बेटे थे। एक आशावादी और दूसरा निराशावादी। आशावादी लड़का हमेशा प्रसन्न रहता था। पर निराशावादी की तो पूछो ही मत। महासुख घटित हो जाये, तो भी उसमें दुख ढूंढ लेता था। नसरुद्दीन तंग आ गया। उसने एक मनोवैज्ञानिक से सलाह ली और कहा कि उन दोनों को ठीक करना होगा। अधिक आशावादी होना भी उचित नहीं। निराशावादी होना भी उचित नहीं। उसने पूछा मैं क्या करूं? दोनों जुड़वां बेटे हैं। दोनों का जन्मदिन आने ही वाला था। मनोवैज्ञानिक ने कहा कि जो आशावादी है, उसे यथार्थवादी बनाने के लिए उसके जन्मदिन पर कोई बुरी सी भेंट दो, इतनी बुरी भेंट कि वह दुखी हो जाए थोड़ा सा। और जो निराशावादी है, उसे अच्छी से अच्छी भेंट दो, ताकि वह कुछ तो खुश हो जाए। थोड़ी आशा और थोड़ा उत्साह उसके भीतर जागे। मुल्ला ने ऐसा ही किया। दोनों को उसने अलग-अलग उपहार दिए।

निराशावादी बच्चे के कमरे में उसने मिठाइयां, फुलझड़ियां, पटाखे, फूलों के हार, फूलों के गुच्छे और खिलौने सजाकर रख दिए। आशावादी बच्चे के लिए थोड़ा सोचा कि क्या करूं? अपने पड़ोसी महमूद मियां से मशविरा किया। घुड़साल के मालिक, रेसकोर्स के शौकीन महमूद मियां ने मजाक में कहा कि मेरे अस्तबल से घोड़ों की लीद ले जाकर उसके कमरे में भर दो। मजाक थी, मगर नसरुद्दीन को बात जंची। घोड़े की लीद उसके कमरे में भरवा दी। ढेर लगवा दिया। बदबू ही बदबू... सड़ांध! शाम को जब दोनों बेटे स्कूल से वापस लौटे, अपने-अपने कमरे में गए।

घंटे भर बाद मनोवैज्ञानिक के साथ नसरुद्दीन देखने पहुंचा उनके कमरों में कि दोनों में कुछ परिवर्तन हुआ या नहीं? जब वे निराशावादी बच्चे के कमरे में पहुंचे, वह रो रहा था कमरे में बैठकर। उसने न मिठाइयां खाईं, न फूलों के गुलदस्ते छुए थे।

नसरुद्दीन ने पूछा कि क्या बात है, रो क्यों रहे हो?

निराशावादी लड़के ने कहा– 'रोऊं नहीं तो और क्या करूं? इन क्षणभंगुर फूलों का क्या है? सुबह खिलते हैं शाम को मुरझा जाते हैं।' नसरुद्दीन ने पूछा–और ये मिठाइयां? बेटा आग बबूला होकर बोला– 'आप मेरे बाप हैं कि मेरे दुश्मन? मिठाइयां कोई खाने की चीजें हैं? मिठाइयां खाओ तो डायबिटीज हो सकती है।' मनोवैज्ञानिक ने कहा–'और फुलझड़ियां?' बच्चे ने कहा–'मेरी जान लेने पर तुले हुए हो क्या? क्या जन्मदिन पर ही मुझे मारने की सूझी है? पिता हो कि हत्यारे? जानते हो इन फुलझड़ी–पटाखों की वजह से कितने बच्चे अंधे हो जाते हैं, मर जाते हैं, हर साल दिवाली में कितनी दुर्घटनाएं होती हैं?' वह छाती पीट–पीट कर रोने लगा।

मनोवैज्ञानिक तो हैरान हुआ। फिर दोनों आशावादी बच्चे के कमरे में पहुंचे, जहां उन्होंने घोड़े की लीद डाली थी। वह बच्चा तो मारे खुशी के गीत गा रहा था। एक पुराना फिल्मी गीत–'चल मेरे घोड़े, टिक टिक टिक... चलना तेरा काम है, रुकना तेरा काम नहीं; चल मेरे घोड़े टिक टिक टिक... ।'

मनोवैज्ञानिक ने उसकी खुशी का कारण पूछा। उस बच्चे ने कहा कि 'मैं घोड़ा ढूंढ रहा हूं। अगर लीद है तो जरूर घोड़ा भी यहीं–कहीं होगा।'

आशावादी भी यथार्थ नहीं देखता, निराशावादी भी यथार्थ नहीं देखता। दोनों ही अपनी कल्पना के सुख और दुख में डूब जाते हैं। गौतम बुद्ध कहते हैं कि सम्यक दृष्टि पैदा करो। वही देखो, जो है। उससे सत्य की ओर दिशा मिलेगी। परम सत्य की ओर जीवन आगे बढ़ेगा। काल्पनिक सुख शीघ्र ही दुख में परिणत हो जाता है। आनंद तो केवल सत्य में है।

आशावादी और निराशावादी दोनों असम्यक हैं। यथार्थवादी पक्षपात रहित है। विधायक व निषेधात्मक दृष्टि से क्रमश : सुख एवं दुख मिलते हैं। सब पक्षों से मुक्त होने पर सम्यक्ता आती है, आनंद लाती है। सुख, दुख तथा आनंद की भावस्थिति का नाम ही क्रमश : स्वर्ग, नर्क व मोक्ष है।

हमारी साधना की दिशा होनी चाहिए दुख से सुख और अंततः दोनों के पार आनंद लोक में उठने की। कम से कम इतने समझदार तो बनें कि नर्क निर्मित करना बंद करें; स्वर्ग का सृजन करें और तब मोक्ष को उपलब्ध हों। आस्तिक का ढंग है, फूल देखने का, नास्तिक का तरीका है कांटे गिनने का, और साधक की शैली है संपूर्ण पौधे को देखने की–अज्ञेयवादी, रहस्यवादी, समग्रतावादी दृष्टि!

# तथ्य, कथ्य और सत्य

## प्रश्नकर्ता– किसी घटना से हमें दुख क्यों पहुंचता है?

असंभव की आकांक्षा दुख लाती है। जब हम मांगते हैं कि सिर्फ जन्म हो, मौत कभी न हो; स्वास्थ्य सदा रहे, बीमारी न आए; इज्जत मिले किंतु बेइज्जती जरा भी नहीं; तो हमने सपने टूटने की व्यवस्था कर ली। एक–दो उदाहरण से आपको समझाउंफ।

गौतम बुद्ध के जीवन में उल्लेख है कि एक आदमी आया। उसका इकलौता बेटा बुद्ध का भिक्षु हो गया था। उसने बहुत खरी–खोटी बुद्ध को सुनायी। वह बहुत क्रोध में था, उत्तेजित था। गालियां देने के बाद भी जब उसका चित्त शांत नहीं हुआ, तो उसने बुद्ध के चेहरे पर थूक दिया। बुद्ध ने अपनी चादर से उसे पोंछते हुए कहा–'मित्र, कुछ और कहना है?' वह व्यक्ति वहां से चला गया। शाम को फिर आया। उसकी आंखों में पश्चात्ताप के आंसू थे। अपने आंसुओं से उसने बुद्ध के चरणों को धो डाला। बुद्ध ने अपनी चादर से उसके आंसुओं को पोंछते हुए कहा–'मित्र, कुछ और कहना है?' आगन्तुक ने कहा–'भगवान, आप मुझे सुबह के दुर्व्यवहार के लिए क्षमा करें।' बुद्ध ने कहा–'तुम मुझे धर्म संकट में डाल रहे हो। क्षमा तो वही कर सकता है, जो क्रोधित हुआ हो। मैं क्रोधित ही नहीं हुआ, तो मैं तुम्हें क्षमा कैसे करूं? न तुम मुझे क्रोधित कर सकते हो, न तुम मुझे दुखी कर सकते हो। मेरा सुख–दुख परिस्थितियों पर निर्भर नहीं है। मैं अपने भीतर आनंद में जीता हूं। आनंद को तुम स्पर्श भी नहीं कर सकते। जब से मेरी दृष्टि सम्यक हुई है, मैं स्वयं अपना मालिक हूं। मैं स्वयं अपना स्वामी हूं।'

दृष्टि सम्यक हो जाए, तो जीवन आनंद से भर जाता है, और दृष्टि असम्यक हो, तो जीवन में दुख ही दुख हो जाता है। सब हम पर निर्भर है। बाहर की परिस्थितियों को दोष देना छोड़कर अपनी मनःस्थिति को भीतर देखें। कोई और आपको दुख नहीं दे रहा है। आपकी स्वयं की अपनी असम्यक दृष्टि, आपकी अपनी धारणाएं, कल्पनाएं, आपकी मान्यताएं, आपकी जो कथा गढ़ने की आदतें हैं, वही आपको दुख देती हैं।

सुप्रसिद्ध अमेरिकन व्यंग्यकार मार्क ट्वेन ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि एक दिन बगीचे में काम करते हुए, जब वह दो मिनट के लिए घर के भीतर गया तो उतनी ही देर में उसकी खुरपी गुम हो गई। जिस खुरपी से वह घास खोद रहा था, वह न मिली। पड़ोस का एक लड़का निकट की गली से गुजरा था। कोई और तो यहां आया नहीं। मार्क ट्वेन को लगा कि जरूर वही लड़का खुरपी चुरा ले गया। उसकी

चाल भी चोरों जैसी लग रही थी। आज उसने नमस्ते भी नहीं की। कैसा सहमा–सहमा चल रहा था। पक्का हो गया कि वही चोर है। तभी एक गमले में रखी खुरपी मिल गई। फिजूल ही लड़के पर संदेह किया था। फिर पांच मिनट बाद लड़का गली से गुजरा। मार्क ट्वेन ने देखा कि बेचारा भोला–भाला बच्चा है। अपनी मौज में चल रहा है। न चोरों जैसी डरी हुई चाल है, न कोई और बात है। बच्चे ने नमस्ते करके पूछा–'अंकल, ज्यादा काम हो बगीचे में तो मैं कुछ मदद करूं?' मार्क ट्वेन का हृदय पसीज गया। उसने प्यार से कहा–'नहीं बेटा, धन्यवाद।' क्या हुआ? पहले संदेह भरी नजर से देखा, अब दुलार की दृष्टि से। मार्क ट्वेन ने लिखा है कि यदि मुझे खुरपी न मिलती तो शायद जिंदगी भर मैं उसे गलत धारणा से ही देखता।

जैसी धारणा हो, वैसे ही प्रमाण भी मिल जाते हैं। यह अस्तित्व बड़ा अद्‌भुत है, जो ढूंढ़ो, वही प्राप्त हो जाता है। जिन खोजा तिन पाइयां। मुम्बई महानगर के भीड़ भरे मोहल्ले में रहने वाला मुल्ला नसरुद्दीन रोज शाम अपने घर के सम्मुख सड़क पर मंत्रपाठ करते हुए पानी छिड़कता था। एक अजनबी ने पूछा–'भाईजान क्या कर रहे हो?' मुल्ला ने कहा–'तुम्हें पता नहीं, शायद नए हो इसलिए। मैं नियमित रूप से यह मंत्र वाला टोना–टोटका करता हूं, ताकि जंगली जानवर जैसे शेर, चीता, भेड़िया, हाथी इत्यादि यहां न आ पाएं।' वह आदमी बोला–'मैंने सुना है कि एक देहाती कुत्ता मुम्बई आया, तो महानगरी निवासी कुत्तों ने उसे भौंक कर भगाया। कहा कि ए गांव के गंवार, असंस्कृत कुत्ते, चल भाग यहां से। देहाती कुते ने पूंछ दबाकर पूछा कि आप लोगों ने पहचाना कैसे कि मैं बेपढ़ा–लिखा, असभ्य गंवार हूं। शहरी कुत्तों ने कहा कि तेरी बांए–दाएं हिलती पूंछ देखकर हम समझ गए कि परदेसी है। मुम्बई में इतनी जगह कहां कि कोई आजू–बाजू दुम हिलाए। हम लोग ऊपर–नीचे पूंछ हिलाते हैं, यह सभ्यता की निशानी है।

मुल्ला जी, यहां पैर रखने को जगह नहीं है आदमियों के लिए, हाथी वगैरह यहां कैसे आएंगे? मैं पिछले पच्चीस वर्षों से मुम्बई में रहता हूं, कभी सुना नहीं कि कोई खतरनाक जानवर यहां आसपास फटका हो!'

नसरुद्दीन ने जवाब दिया–'फटकेंगे कैसे मियां, मैं पिछले पचास सालों से मंत्रोच्चार जो कर रहा हूं। देखा न मेरे मंत्र का चमत्कार।' हम अपनी ही मान्यताओं और विश्वासों की दीवारों में कैद हो जाते हैं। और हमें पर्याप्त प्रमाण भी मिल जाते हैं, सबूत एकत्रित हो जाते हैं कि हमारी धारणा सही है।

किसी भी घटना के तीन पहलू हैं–तथ्य, कथ्य और सत्य। फैक्ट, फिक्शन और ट्रुथ। या कहें घटना, धारणा और प्रेरणा। यदि हम जीवन की सभी घटनाओं से प्रेरणा ग्रहण करें, सत्य ग्रहण करें, तो एक दिन परम सत्य भी उपलब्ध हो जाता है। कहते हैं

कि लाओत्सु जब परम ज्ञान को उपलब्ध हुआ, तो वह एक वृक्ष के नीचे बैठा था। उस वृक्ष से एक पीला पत्ता टूट कर नीचे गिरा। उस सूखे पत्ते को देखकर लाओत्सु परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। उस पीले पत्ते ने पूरा सत्य कह दिया–जीवन का, मृत्यु का। मृत्यु निश्चित है। जो पत्ता अभी तक हरा है, हवाओं से खेल रहा है, एक दिन वह मुरझाकर, टूट कर गिरेगा। यह जीवन एक दिन समाप्त होगा। लाओत्सु सूखे पत्ते को देखकर परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया।

सम्यक दृष्टि हो तो छोटी–छोटी बात परम सत्य को उघाड़ जाती है। एक मेरे मित्र हैं। कुछ दिनों पहले उनसे मुलाकात हुई। वे बड़े दुखी थे। मैंने पूछा–'क्या हुआ?' उन्होंने कहा–'एक आदमी ने मेरा अपमान किया है।' मैंने समझाया–'अपमान से दुख नहीं मिल रहा है, आपको अपनी कथा से दुख मिल रहा है। आपकी कथा थी कि वह व्यक्ति आपका कभी अपमान नहीं करेगा। यह धारणा दुख दे रही है कि केवल आदर मिले, अनादर नहीं; प्रेम मिले, घृणा कभी नहीं।' आदर व अनादर चुम्बक के उत्तरी–दक्षिणी ध्रुवों के सदृश हैं। मान–अपमान तथा मुहब्बत–नफरत एक ही सिक्के के अभिन्न पहलू हैं। एक को चाहा तो दूसरा स्वयमेव मिल जाता है। केवल एक पहलू की कामना, क्षितिज को पकड़ने से भी ज्यादा नामुमकिन है।

## अपनी–अपनी नज़र, अपने–अपने चश्मे

### प्रश्नकर्ता– क्या हम वही नहीं देखते जो वास्तव में है?

काश, वही दिख जाए जो है, तब तो परम सत्य और जिंदगी में मस्ती मिल जाए! 'जो है' उसी का नाम तो परमात्मा है। अपनी कथाओं व धारणाओं की वजह से सत्य का संस्पर्श नहीं हो पाता।

मैंने सुना है कि एक बगीचे में कुछ लोग आये। उन लोगों में एक कवि था। उसे फूलों में सौन्दर्य दिखाई दिया। वह गीत गाने लगा। फूलों पर उसने एक प्यारी कविता लिखी थी। वह उसने सुनाई। एक चित्रकार भी था। उसे कुछ और दिखाई दे रहा था। चित्रकार की आंखें रंगों के प्रति बड़ी संवेदनशील होती हैं। हमारे लिए हरा रंग एक रंग है। हरा रंग यानी हरा रंग। चित्रकार के लिए हरे रंग में हजारों शेड्स होते हैं। चित्रकार के लिए वह एक रंग नहीं है। उसमें हजारों प्रकार के हरे रंग हैं। चित्रकार को जो रंग दिखाई देते हैं, वे किसी अन्य व्यक्ति को दिखाई नहीं दे सकते। एक सुनार भी उन लोगों के साथ आया हुआ था। उसने अपना पत्थर निकाला और वह पत्थर पर

कसकर, अपनी कसौटी पर कसकर फूलों को परखने लगा। और उसने कहा कि सब बेकार है, इनमें कोई भी सार नहीं और ये फूल तुम्हें जो दिखाई देता है, एकदम निर्मूल्य है, व्यर्थ है। एक वैज्ञानिक भी मौजूद था। वह वनस्पति शास्त्री था। उसे जो दिखाई दे रहा था, वह सुनार से, चित्रकार से, कवि से बिल्कुल भिन्न दिखाई दे रहा था कि किस जाति का पौधा है। इसकी उपजाति क्या है। वनस्पति शास्त्र में, इसका 'बॉटनिकल' नाम क्या है। वहां एक माली भी मौजूद था। माली को कुछ और दिखाई देता था। उसे पेड़ के स्वास्थ्य से मतलब है। वह सोच रहा है कि पौधों को यह खाद दी गयी होती तो ये पेड़ और भी बड़े होते। पौधों को पानी जरूरत से ज्यादा मिल गया है। पौधा गलने वाला है। पानी को रोकना है। वहीं पर एक व्यापारी भी मौजूद था। उसे पौधों पर फूल नजर नहीं आ रहे हैं, रुपये नजर आ रहे हैं। वह सोच रहा था बगीचे में कितने फूल खिले हैं, एक एकड़ में, इससे 5 हजार रु. कमाये जा सकते हैं, इन फूलों को बेचकर इत्र निकालने से काफी लाभ हो सकता है। उसे धन दिखाई दे रहा था। हम सबकी अपनी-अपनी नजर, अपने-अपने चश्मे हैं। हम उसी के माध्यम से दुनिया को देखते हैं। बगीचे में आए वैद्यराज को औषधियों के स्रोत दिखते हैं कि उस वृक्ष के पत्ते फलां बीमारी में काम आते हैं कि उस पौधे की जड़ों से फलां ढिकां रोग की दवा बनती है। एक लकड़हारे को जलने लायक लकड़ियां नजर आती हैं, तो एक बढ़ई की फर्नीचर बनाने योग्य इमारती लकड़ियों पर दृष्टि पड़ती है।

विराट अस्तित्व में से हर व्यक्ति एक छोटा सा अंश चुन लेता है, और उसी को पूर्ण मान लेता है। असम्यक दृष्टि का मूलभूत कारण यही है। जैसे पांच अंधों द्वारा हाथी को टटोलकर, अलग-अलग अंग अनुभव किए गए और प्रत्येक ने सोचा कि हाथी खंभे, रस्सी, सूप या दीवार सदृश है तथा उनमें झगड़ा खड़ा हो गया। जीवन के संबंध में हम साधारण लोग ही नहीं, बड़े-बड़े दार्शनिक भी अंधों से भिन्न व्यवहार नहीं करते। हमारा अतीत, हमारा ज्ञान, हमारी जानकारी हमें अंधा कर देती है। सत्य को पहचानने के लिए ज्ञान से मुक्ति अनिवार्य है। मन है ज्ञान का संग्रह, अतः मन के पार जाकर ही परम सत्य का दर्शन संभव है।

उपनिषद का ऋषि ठीक कहता है कि अज्ञानी तो अंधकार में भटकते ही हैं, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। केवल अतीत ही नहीं, भविष्य भी हमारी दृष्टि को भरमाता है; उससे भी मुक्त हो जाना आवश्यक है। निर्वासना शर्त है, 'जो है' उसे जानने की। 'जैसा होना चाहिए' वह बीच में न आए। हम जो देख रहे हैं, वह पूर्ण सत्य नहीं है। आंशिक सत्य पर भावी आकांक्षा आरोपित करके हम अपनी ही कथा गढ़ लेते हैं। हम अपनी ही कल्पनाओं में जीते हैं।

मैंने सुना है कि जंगल में भटक गया एक कवि दो दिन से भूखा था। जब उसने पूर्णिमा के चांद की तरफ देखा तो आश्चर्यचकित हुआ! इस चांद में हमेशा वह पहले

अपनी प्रेयसी का चेहरा देखता था, जिस पर उसने बहुत सारी कविताएं भी लिखी थीं। पूर्णिमा के चांद में आज प्रेयसी का चेहरा नहीं एक तैरती हुई रोटी नजर आई। पेट भूखा हो तो चांद में रोटी ही दिखाई देगी, प्रेयसी का चेहरा नहीं दिखाई देगा। एक 5 साल के बच्चे के सामने वात्स्यायन का कामसूत्र रख दो, तो उसके लिए उसका कोई अर्थ नहीं है। अश्लील से अश्लील चित्र उसके सामने रख दो, उसमें कोई अश्लीलता नजर नहीं आयेगी। क्योंकि भीतर मन का जो प्रोजेक्टर है, अभी वह कामवासना को प्रोजेक्ट नहीं कर रहा है। एक 20 साल के युवक को कुछ और दिखाई देगा। एक 80 वर्ष के बूढ़े के सामने वही चित्र रख दो, यदि उसकी कामवासना विदा हो चुकी है, वासना के ऊपर उठ चुका है, तो फिर उसे अश्लीलता दिखाई नहीं देगी। हो सकता है अनूठा सौन्दर्य दिखाई दे। अब सवाल यह उठता है कि उस चित्र में क्या अश्लीलता है या नहीं है? निश्चित रूप से चित्र में अश्लीलता नहीं है, अश्लीलता कहीं है तो हमारे मन में है। वासना मन में हो तो बाहर प्रक्षेपित हो जाती है।

मैंने सुना है कि ट्रेन में यात्रा कर रहे एक सुंदर नवयुवक ने सामने की सीट पर विराजमान बुजुर्गवार से समय पूछा। उस सज्जन ने घड़ी वाली कलाई पीठ के पीछे छिपाकर कहा–'क्षमा करें, मैं समय नहीं बताऊंगा।' इस अप्रत्याशित व्यवहार से अन्य यात्री भी चौंके। उन्होंने कारण जानना चाहा कि टाइम बताने में आपका क्या बिगड़ जाएगा? वे बोले–'बहुत कुछ बिगड़ने की संभावना है। बड़ा खतरा नजर आ रहा है। अभी इस लड़के ने टाइम पूछा, मैंने अगर बता दिया तो थोड़ी देर में यह पता पूछेगा–कहां रहते हैं; क्या करते हैं आदि–आदि। किसी न किसी दिन मेरे घर आ टपकेगा। घर में जवान बेटी है। हो न हो, प्यार हो जाएगा। फिर जल्दी ही दोनों विवाह का प्रस्ताव लेकर मेरे पास आएंगे। और मैं मारवाड़ी सेठ चंदूलाल साफ बता दूं कि अपनी पुत्री की शादी ऐसे गरीब लड़के से हरगिज नहीं करूंगा, जिसके पास स्वयं की घड़ी तक नहीं है।' बेचारा कंजूस चंदूलाल! ... गरीब दामाद को बहुत दहेज देना पड़ेगा; डर रहा है। वह सामने बैठे व्यक्ति को नहीं देख रहा। दहेज का भय, सत्य का साक्षात नहीं होने दे रहा। शेखचिल्ली की भांति अपनी कल्पना की दुनिया में जी रहा है। कोई कम, कोई ज्यादा, मगर हम सभी शेखचिल्ली हैं। हमारे भय, क्रोध, ईर्ष्या, संदेह, श्रद्धा, मोह, भविष्य की आशंका, राग–द्वेष, लोभ–कृपणता, इत्यादि भाव रंगीन चश्मे बन जाते हैं और इस भांति हम वर्तमान के सत्य से चूक जाते हैं।

# खुद के दोस्त भी, दुश्मन भी

## प्रश्नकर्ता– क्या हम स्वयं की गलत दृष्टि के कारण ही दुख पाते हैं?

निश्चित ही। महावीर ने कहा है कि मनुष्य स्वयं अपना शत्रु है, और स्वयं अपना मित्र है। सम्यक दृष्टि उपलब्ध हो जाए, तो हमसे बड़ा हितैषी हमारा कोई नहीं। दृष्टि असम्यक हो तो हमसे बड़ा शत्रु हमारा कोई नहीं। हम खुद को कांटें चुभाएं अथवा चाहें तो फूलों से जिंदगी भर लें। या फूल और शूल दोनों का अतिक्रमण कर जाएं। समभाव, समत्व को उपलब्ध हो जाएं। अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थिति में साक्षी और समदर्शी होना ही समत्व है, सम्यक दृष्टि है। यश–अपयश, हार–जीत, सफलता–विफलता, गरीबी–अमीरी, स्वास्थ्य–बीमारी, इन द्वंद्वों में समता रखना साक्षी में स्थित कर देता है, जो कि बड़ी से बड़ी साधना है। कृष्ण समत्व को ही योग कहते हैं।

जापान में एक अद्‌भुत झेन फकीर हुआ–बोकोजू। किसी ने उससे पूछा कि बोकोजू, तुम हमेशा आनंदित नजर आते हो। इसका राज क्या है, हमें भी बताओ। बोकोजू ने कहा कि बड़ा छोटा–सा राज है। सुबह जब मेरी नींद खुलती है, तो मैं अपने आप से प्रश्न पूछता हूं कि बोकोजू, क्या इरादा है? आज खुश रहना है कि दुखी होना है? और मैं हमेशा खुश रहना चुन लेता हूं। बोकोजू ने कहा कि बड़ी सीधी सरल सी बात है। दृष्टि साफ–सुथरी हो, सम्यक हो, पैनी हो, तो हर परिस्थिति सुख की वर्षा कर जाती है, और दृष्टि धूमिल पड़ जाए तो हर परिस्थिति दुख में ले जाती है। हम परिस्थितियों के परिवर्तन में नहीं, मनःस्थिति के रूपांतरण में शक्ति नियोजित करते हैं।

'निर्वाण उपनिषद्' के चौदहवें प्रवचन में ओशो समझाते हैं कि संन्यासीगण क्या करते हैं, कैसे समय व्यतीत करते हैं? वे भ्रांतियों के भंजन में संलग्न रहते हैं। मन की पुरानी आदत है भ्रांतियां पैदा करने की, मायावी स्वप्न निर्मित करने की। संन्यासी इस आदत को तोड़ता रहता है। सपनों से मुक्त होता रहता है ताकि सत्य को उपलब्ध हो सके।

शंकराचार्य ने जिसे माया कहा है, उसे ठीक से समझा नहीं गया। माया का अर्थ यह नहीं है कि लोग, मकान, पेड़–पौधे असत्य हैं। वे तो सत्य हैं, किंतु जैसा हम उन्हें देखते हैं, वह देखना सत्य नहीं है। माया अर्थात असम्यक दृष्टि। कबीर ने कहा है–मन

ही माया है। जैसे आधे भरे पानी के गिलास में चम्मच डालने पर वह तिरछी नजर आती है, मुड़ी हुई दिखती है। यद्यपि पानी सच, चम्मच सच, सूर्य की रोशनी सच और प्रकाश के अपवर्तन (रिफ्रैक्शन) का सिद्धांत भी सच; मगर फिर भी चम्मच का टेढ़ा दिखना असत्य है। ठीक वैसे ही हमारा मन भी माया को उत्पन्न कर देता है। इसलिए मनातीत और भावातीत होकर ही परम सत्य जाना जा सकता है।

## सच्चिदानंद को पाया जा सकता है

गौतम बुद्ध का यह छोटा–सा सूत्र–'सम्यक दृष्टि', परम सत्य और आनंद की ओर ले जा सकता है। जीवन में क्रांति का सूत्र बन सकता है। यह छोटी–सी चाबी सच्चिदानंद के बहुत बड़े खजाने को खोल सकती है। स्मरण रखें, चाबी तो छोटी–सी ही होती है। लेकिन उससे जो खजाना खुलता है, वह बहुत विराट और अनंत हो सकता है।

सही नजरिये की दौलत मिल जाए तो परेशानियां भी चुनौतियां हो जाती हैं, विकास में सहयोगी हो जाती हैं। मार्ग के अवरोध, सीढ़ियां बन जाते हैं। क्या आप जानते हैं कि दुनिया की नब्बे प्रतिशत प्रतिभाएं निम्न अथवा मध्यम वर्ग में जन्मती हैं। क्यों? जहां कठिनाइयां हैं, वहां प्रतिभा को पैदा होने के अवसर हैं। अमीरों के बच्चे जीनियस नहीं सिद्ध होते, अक्सर तो 'बिगड़े–नवाब' हो जाते हैं।

धान की खेती छत्तीसगढ़ में दो प्रकार की होती है। एक तो सीधे खेत में धान बोकर और दूसरी रोपा पद्धति से। नर्सरी में छोटे–छोटे पौधे तैयार हो जाने पर उन्हें उखाड़कर खेतों में रोप देते हैं। पौधे की जड़ें जब उखड़ती हैं, उसके प्राण कंप जाते हैं। एक बारी तो सारे पत्ते कुम्हला जाते हैं। मगर इस मुसीबत से उबरकर जब जड़ें पुनः जमीन को पकड़ती हैं, तो बहुत स्वस्थ, मजबूत पौधा पनपता है, और पहली विधि की तुलना में इस पद्धति से करीब डेढ़ गुना अधिक फसल आती है। उपयुक्त मात्रा में चुनौती वरदान साबित होती है। किसी गीतकार ने कहा है–

**एक अंधेरा लाख सितारे, एक निराशा, लाख सहारे;**
**सबसे बड़ी सौगात है जीवन, नादां हैं जो जीवन से हारे।**
**बीते हुए कल के खातिर, आने वाला कल मत खोना;**
**जाने कब कहीं हीं से कोई, आकर तेरी राह संवारे।**
**दुख से अगर पहचान न हो, तो कैसा सुख, कैसी खुशियां?**
**तूफानों से लड़कर ही तो, लगते साहिल इतने प्यारे!**

गुलाब का फूल कांटों के बीच खिलता है। तोड़कर मखमली सेज पर रख लो, तो मुरझा जाता है। तारों के जगमगाने के लिए अमावस की काली रात चाहिए। कंट्रास्ट में चीजें उभरकर प्रकट होती हैं। चारों तरफ से मृत्यु ने हमें घेर रखा है, इसलिए जिंदगी इतनी प्यारी लगती है। अजीब लगती है, पर बात बिल्कुल सटीक है–दुख से अगर पहचान न हो तो कैसा सुख कैसी खुशियां? बेचैनी और तनाव की पृष्ठभूमि में शांति का पता चलता है। विषाद व संताप के कीचड़ से आनंद के कमल खिलते हैं। मन की व्याधियां और उपद्रव ही मन के पार जाने का कारण बनते हैं। माया के छलावों से थककर ही कोई शंकराचार्य की तरह परमात्मा को जानकर कह उठता है–ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। जगत का मिथ्यागत सौभाग्य है, क्योंकि वही ब्रह्म के परम सत्य की तरफ नजरें उठाने का आमंत्रण देता है। यहां दुर्भाग्य कुछ है ही नहीं। दुर्भाग्य हमारी भ्रांतिपूर्ण व्याख्या है।

# सौभाग्य और दुर्भाग्य– हमारी व्याख्याएं

## प्रश्नकर्ता– सम्यक दृष्टि वाले व्यक्ति का जीवन कैसा होता है?

सम्यक दृष्टि वाला व्यक्ति कैसा होता है, इस उदाहरण से समझो। सदगुरु ओशो ने एक बहुत मीठी घटना सुनाई है–

जापान में एक फक़ीर के पास अत्यंत सुंदर घोड़ा था। एक बार राजा उस गांव से गुजरा, तो उसकी भी नजरें शानदार घोड़े पर अटक गईं। राजा ने मुंहमांगी कीमत में घोड़ा खरीदना चाहा, किन्तु फकीर राजी न हुआ। वह बोला कि घोड़े से मुझे प्रेम है, और प्रेम की कोई कीमत नहीं चुकाई जा सकती। जैसे मैं अपने बेटे को नहीं बेच सकता, वैसे ही घोड़े को भी बेचना संभव नहीं है। गांव के लोगों ने समझाया कि ऐसा अवसर बार–बार नहीं आता, सम्राट कोई भी दाम देने को तैयार है, मांग लो दस हजार स्वर्ण अशर्फियां। लेकिन वह फकीर न माना, सो न माना।

कुछ समय बाद की बात है। एक सुबह फक़ीर ने उठकर देखा कि अस्तबल में घोड़ा नहीं है। पड़ोस के लोगों को खबर मिली तो वे आकर कहने लगे कि कैसा दुर्भाग्य! उस दिन सम्राट को घोड़ा बेच दिया होता तो कितना धन प्राप्त हो जाता। आज घोड़ा चोरी चला गया। समझो दस हजार अशर्फियों का नुकसान हो गया। बूढ़े फक़ीर ने कहा कि तुम लोग यह दुर्भाग्य, चोरी और नुकसान की धारणा कहां से ले आए? सिर्फ इतना ही कहो कि आज सुबह घोड़ा अस्तबल में नहीं है। इसमें उदास होने की क्या बात है। वे लोग बोले 'हद हो गई, तुम्हें दुख नहीं होता? हम तो सोचते थे कि तुम अपने बेटे से भी बढ़कर घोड़े को चाहते हो। इतनी बड़ी हानि हो गई और शांत हो?' फक़ीर ने कहा 'घोड़े के होने या न होने से मेरी शांति का क्या संबंध? मैं शांत हूं, क्योंकि मैंने कथा गढ़नी बंद कर दी है। मैं तथ्य को तथ्य की भांति देखता हूं, उसमें कथ्य नहीं जोड़ता।' लेकिन गांव के लोगों को बात समझ में नहीं आई।

दो सप्ताह के बाद वह घोड़ा एक दर्जन जंगली घोड़ों के साथ वापस लौटा। असल में वह चोरी नहीं गया था, जंगल भाग गया था। जंगल में अन्य घोड़ों से उसकी दोस्ती हो गई। वे भी उसके साथ चले आये। यह समाचार सुनते ही गांव के लोग बधाइयां देने आने लगे कि हमसे बड़ी भूल हुई। तुम ठीक ही कहते थे, कि दुर्भाग्य मत कहो, वाकई यह तो सौभाग्य सिद्ध हो गया। मुफ्त में बारह घोड़े आ गये हैं। फक़ीर बोला 'तुम फिर कथा गढ़ने लगे। तथ्य केवल इतना है कि घोड़ा आ गया। साथ में बारह घोड़े और आए हैं। बस इतना ही 'फैक्ट' है। तुम अपनी व्याख्या (इंटरप्रिटेशन) मत जोड़ो। सम्यक दृष्टि से देखो, इसमें सौभाग्य और दुर्भाग्य की कल्पना न करो।' वे लोग तब भी फक़ीर की बात न समझे। फक़ीरों की कौन कब समझ पाता है!

फक़ीर का इकलौता जवान बेटा घोड़ों को प्रशिक्षित करने लगा। ट्रेनिंग देने लगा। माह भर बाद ऐसा हुआ कि एक दिन घुड़सवारी करते समय बेटा गिरा और उसकी टांग टूट गई। वह सदा-सदा के लिए अपंग हो गया। गांव के लोग सहानुभूति प्रकट करने आए कि कितना बुरा हुआ। युवा पुत्र अपाहिज हो गया। कैसी अशुभ घड़ी में ये जंगली घोड़े आ गये थे। फक़ीर ने कहा 'तुम लोग कब सत्य देखना आरंभ करोगे? अच्छा और बुरा, शुभ और अशुभ की धारणाओं से जागो। सिर्फ इतना ही कहो कि बेटे की टांग टूट गई है। ठीक और गलत का निर्णय मत लो।' गांव के लोग बोले कि 'तुम्हारी बातें हमारी समझ में नहीं आतीं। बेटा लंगड़ा हो गया, क्या यह गलत नहीं हुआ। बेचारा अपंग हो गया, इससे बड़ी दुर्घटना और क्या हो सकती है? तुम्हारी दार्शनिक बातें व्यर्थ की बकवास हैं।' फक़ीर ने उन्हें स्मरण दिलाया, 'घोड़ा बेचने को

राजी न होने पर तुम लोगों ने मेरी हंसी उड़ायी थी, घोड़ा गायब हो जाने पर तुमने उसे दुर्भाग्य कहा था। फिर घोड़े के वापस लौटने पर तुमने उसे सौभाग्य निरूपित किया था। अब उन्हीं घोड़ों के कारण लड़के का पैर टूट जाने से तुम इसे अशुभ दुर्घटना बताने लगे। मैं तो प्रत्येक परिस्थिति में शांत व आनंदित रहा। तुम लोग बार–बार बदल जाते हो। कभी प्रसन्न हो जाते हो, कभी परेशान और पीड़ित हो जाते हो। मैं तुम लोगों का असम्यक व्यवहार नहीं समझ पाता।' गांव के लोग बोले कि पहले हम भूल में थे, पहले हमारी साफ दृष्टि नहीं रही होगी, पर इस बार तो पक्का ही है कि बहुत बुरा हुआ जो बेटे की टांग टूट गई। इसमें कोई संदेह का सवाल ही नहीं उठता। फक़ीर हंसने लगा–'तुम लोग पहले भी निस्संदेह और सुनिश्चित थे।'

तीन महीने बाद पड़ोस के राजा ने इस राज्य पर आक्रमण किया, जिसमें फक़ीर रहता था। इस राज्य के पास छोटी सी सेना थी, और लगभग निश्चित ही था कि पड़ोसी हमलावर की शक्तिशाली सेनाएं जीतेंगी। सेना को बड़ी करने के लिए सम्राट ने आदेश दिया कि राज्य के समस्त युवकों व स्वस्थ लोगों को अनिवार्यरूपेण सेना में भर्ती होना पड़ेगा। फक़ीर का बेटा चूंकि अपाहिज था, उसे छोड़ दिया गया, मगर गांव के सारे युवकों को जबरदस्ती युद्ध में भेज दिया गया। लोग रोते हुए फक़ीर के पाए आए कि तुम ठीक ही कहते थे। तुम्हारे बेटे का पैर टूट जाना वरदान था, अभिशाप नहीं। हमारे बेटे तो गए, हमारे बुढ़ापे के सहारे छिन गए। अब कोई आशा भी नहीं कि वे जीवित वापस लौटेंगे। हमलावर सेना अति शक्तिशाली है। आक्रमणकारियों की जीत तय है, हमारे बेटे शहीद हो जाएंगे। उनकी लाशें ही लौटेंगी। तुम सौभाग्यशाली हो। अपाहिज ही सही, तुम्हारा बेटा आंखों के सामने तो रहेगा। बुढ़ापे में साथ तो देगा।

फक़ीर बोला 'तुम अभी भी सम्यक दृष्टि को उपलब्ध नहीं हुए। तुम फिर कथाएं गढ़ रहे हो, वरदान और अभिशाप की। हर कथा व्यथा में ले जाती है। ये कथाएं छोड़ो, कपोल–कल्पनाएं तोड़ो। कथ्य नहीं तथ्य देखो, फिर तथ्य तुम्हें सत्य की ओर ले जाएगा। घटना से धारणा हटा लो, तो अद्‌भुत प्रेरणा प्राप्त हो जाएगी। गौतम बुद्ध ने इसे ही सम्यक दृष्टि कहा है। धारणाएं सुख या दुख देती हैं। सुख–दुख दोनों ही उत्तेजनाएं हैं। कथामुक्त, धारणामुक्त होने से आनंद मिलता है, शांति अवतरित होती है। हमारी अपेक्षाएं, तुलनाएं, वासनाएं और पूर्वाग्रह से भरी तृष्णाएं ही अशांति की मूल हैं। दृष्टि में परिवर्तन होते ही सारी सृष्टि रूपांतरित नजर आने लगती है, और जीवन में आनंद ही आनंद शेष रह जाता है।' संक्षेप में कहें तो समस्त दृष्टियों से मुक्ति का नाम ही सम्यक दृष्टि है–जो है, जैसा है, उसे वैसा ही जानें।

# हम स्वयं अपने संसार के सर्जक हैं

हमारी दृष्टि हमारे मानसिक जगत का सृजन करती है। हम खुद अपनी दुनिया के रचयिता हैं। किसी और से शिकायत करना व्यर्थ है। राजनीतिक व्यक्ति परिस्थितियों को बदलकर आनंद पाना चाहता है, और कभी सफल नहीं हो पाता। धार्मिक व्यक्ति अपनी मनःस्थिति के रूपांतरण की कोशिश करता है, और परमानंद प्राप्त करता है। हमारे जीवन के लिए हम ही उत्तरदायी हैं।

ओशो ने जब विश्वविद्यालय में नई–नई सर्विस जॉइन की, तो पहले ही दिन लंच के समय उन्होंने देखा कि एक वृद्ध प्रोफेसर ने अपना टिफिन बॉक्स खोलकर गुस्से में कहा–'फिर परांठा और आलू की सब्जी।' दूसरे दिन भी यही घटना घटी। तीसरे दिन तो– 'छिः छिः, फिर आलू और परांठा' ऐसा कहकर उन्होंने क्रोध में टिफिन बॉक्स फेंक दिया। ओशो से न रहा गया, बोले–'यदि आपको परांठा और आलू की सब्जी से इतनी नफरत है तो अपनी पत्नी से निवेदन क्यों नहीं करते कि कुछ और बनाकर टिफिन में रख दें।'

'पत्नी!' उन्होंने आश्चर्य से कहा–'आपने तीन दिन पहले ही जॉइन किया है। शायद आप जानते नहीं कि मैं अविवाहित हूं, अकेला ही रहता हूं और आत्मनिर्भर हूं। अपना भोजन स्वयं ही पकाता हूं।'

जैसा जीवन हम जी रहे हैं, वह हमने ही कमाया है। वह हमारा निर्माण है। स्वर्ग या नर्क हमारे कर्मों के परिणाम हैं, जिनमें हम जीते हैं। इसकी समझ जिंदगी बदलकर रख देगी। क्योंकि जान बूझकर नर्क का निर्माण कोई भी नहीं कर सकता। वह तो मूर्च्छा में ही संभव है। स्वीकार भाव या तथाता वाला व्यक्ति स्वर्ग में जीता है, शिकायत एवं अस्वीकार भाव वाला व्यक्ति नर्क पैदा करता है। स्वर्ग–नर्क हमारी मनःस्थितियां हैं, भौगोलिक स्थितियां नहीं। हमारे दृष्टिकोण के फल हैं।

ओशो ने अपने बचपन की एक घटना का जिक्र किया है। पिता जी गरीब थे, किराए के मकान में रहते थे। बामुश्किल एक छोटा सा मकान बनवाया। गृह प्रवेश के एक सप्ताह पूर्व ही वह मकान गिर गया। घर के सभी लोग निराश हुए; बड़ी आशाएं थीं कि अपने स्वयं के घर में रहेंगे, वे आशाएं धूल–धूसरित हो गईं। किंतु पिताजी ने मंदिर में जाकर प्रसाद बंटवाया। मोहल्ले के लोगों को बुलाकर भोजन कराया। उन्होंने खुशी मनाई कि 'अच्छा हुआ गृह प्रवेश के पहले ही भवन ध्वस्त हो गया। कम से कम परिवारजनों की जान तो बची... थोड़े दिन बाद गिरता तो मेरे पत्नी–बच्चे मारे जाते।' उन्होंने उत्सव मनाया।

जीवन को देखने का दृष्टिकोण कैसा है, इस पर सब निर्भर करता है। जीवन कोरी किताब है, इसमें हम क्या लिखते हैं, हम पर निर्भर है। सुखद कथा या दुखद कथा। जिंदगी खाली कैनवास है, हम जैसे रंग इसमें भरेंगे, यह पेंटिंग वैसी ही हो जाएगी–सुंदर या कुरूप। अतः अत्यंत होश–पूर्वक, सद्भाव–सहित जिंदगी जीना। संतुलित नजरिया रखना। सम्यक दृष्टि जीवन रूपांतरण की कुंजी है, जो त्रस्त को मस्त बना सकती है।

## मस्त होकर जीयो, अमृत रस पीयो

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि दुनिया के बहुत से अच्छे लोगों ने
जिंदगी को गलत तरह से देखना सिखाया है।
जिन लोगों ने भी कहा जिंदगी असार है, जिन लोगों ने कहा जीवन दुख है,
जिन लोगों ने कहा जीवन छोड़ देने जैसा है, जिन लोगों ने कहा जीवन पाप है
और जिन लोगों ने कहा जीवन कुछ भी नहीं,
सब माया है, सब व्यर्थ है, सब असार है, उन सारे लोगों ने
आपके मन में एक निगेटिव, एक नकारात्मक दृष्टि की जगह बना दी है,
उन सारे लोगों ने मनुष्य को धार्मिक होने से रोका है।
जिन लोगों ने भी जीवन का विरोध सिखाया है, जिन लोगों ने भी लाइफ में
निगेटिव आदतें डाली हमारी और जिन्होंने जीवन के सब रस को,
सब आनंद को निषेध किया, इनकार किया, उन सारे लोगों ने मनुष्य को
परमात्मा से जोड़ने वाली कड़ी से वंचित किया है।
क्योंकि मनुष्य तो केवल पॉजिटिविटी में–
जब वह परिपूर्ण विधायक रूप से जीवन के रस को देखता है,
जब वह घने अंधकार में एक प्रकाश की ज्योति को देखता है,
जब वह कांटों से भरी झाड़ी में एक गुलाब के फूल को देखता है
और यह कह पाता है भगवान को कि धन्यवाद, तू अद्भुत है,
यह जीवन चमत्कार है, इतने कांटों के बीच में भी एक फूल पैदा हो जाता है,
यह मिरेकल है! जब वह यह कह पाता है भगवान से,
तब वैसा आदमी जीवन के वे द्वार खोलता है,
जहां से अमृत का प्रवेश होगा।
–ओशो, अमृत कण

# सम्मासति :
# राइट माइंडफुलनेस

- सम्मासति : राइट माइंडफुलनेस
- सम्मासति द्वारा कलह-क्रोध से मुक्ति
- क्रोध अपने से कमजोर पर
- अंधकार रूपी अहंकार को पहचानो
- आत्म-विस्मरण है अहंकार
- न्यायोचित संघर्ष- उमर की कहानी
- अहंकार के विविध रूपों का मनोविज्ञान
- अहंकार रूपी भूतों के मुख्य गुण
- अहंकार रूपी भूतों के उभय लक्षण
- अहंकार के दुर्गुण : दूसरों की नजरों में
- अहंकार के सदगुण : स्वयं की नजरों में
- क्रोध के सूक्ष्म रूप
- अहंकार का जीवन दुख है

# सम्मासति : राइट माइंडफुलनेस

भगवान बुद्ध का शब्द 'सम्मासती' यानी सम्यक स्मृति ही सदगुरु ओशो के अंतिम प्रवचन का आखिरी शब्द है। इसका भावार्थ हैः राइट रिमेंबरेंस, राइट अवेयरनेस। आज के इस सत्र में हम चिंतन-मनन करेंगे यह राइट माइंडफुलनेस क्या है?

यह ख्याल रखनाः विचारों की एकाग्रता, कंसंट्रेशन ध्यान नहीं है। एकाग्रता में करने का भाव आ गया है। कंसंट्रेशन इज अवर एक्शन, बट मेडिटेशन इज नाट। ध्यान समग्रता है, समग्र रूपेण सजगता। एक्टिव नहीं बल्कि एक प्रकार की पैसिव अवेयरनेस।

ध्यान का अर्थ है होश। हम कहते हैं फलां चीज का ध्यान रखना मतलब इसके प्रति होशपूर्ण रहना, सचेत रहना, सजग रहना। होश या अवेयरनेस के दो रूप हो सकते हैं। एक एक्स्ट्रोवर्ट अवेयरनेस बाहर की तरफ होश, और एक भीतर की तरफ होश इंट्रोवर्ट अवेयरनेस।

जिसे हम होश कह रहे हैं, ध्यान कह रहे हैं उसके दो रूप हो सकते हैं एक बाहर जगत की वस्तुओं, व्यक्तियों, परिस्थितियों के प्रति और एक भीतर अपने मन में चल रहे विचारों, कल्पनाओं, धारणाओं, भावनाओं, स्मृतियां इत्यादि के प्रति। लेकिन वास्तव में यह होश इन दोनों से पार है।

एक बाहर का जगत है और एक भीतर का भी जगत है। यहां से हम अवेयरनेस की साधना शुरू करते हैं लेकिन अंततः हम ऐसी जगह पहुंच जाते हैं जहां केवल होश रह गया। अब किसी के प्रति नहीं बचे। मान लो भीतर हम विचारों के प्रति जागरूक हुए थोड़ी देर में विचार गायब हो जाते हैं हम तो फिर भी हैं। विचार नहीं बचे। समझो गुस्सा आया था हम गुस्सा के प्रति जागरूक हुए। हमारे जागरूक होने से धीरे-धीरे क्रोध वीलिन हो गया। अब वह भावना तो नहीं है, लेकिन हम तो हैं, बिना भावना के हैं। हमारा होना उससे जुदा है, भिन्न है।

तो होश की यह साधना ध्यान है, मेडिटेशन है। इसकी शुरुआत निश्चित रूप से बाहर के जगत से ही होगी। हम देख रहे हैं, सुन रहे हैं, कुछ क्रियाएं कर रहे हैं उनके प्रति होशपूर्ण बनें। फिर दूसरा अपने मन के प्रति, विचारों के प्रति कुछ स्मृतियां हैं, कुछ कल्पनाएं हैं और उससे सूक्ष्म फिर भावनाएं हैं। सांस और भीतर आत्मा के बीच में जोड़ सांस का है शरीर और आत्मा के बीच में सांस के प्रति होश साधो। भगवान बुद्ध ने इनको अलग-अलग नाम दिए हैं यह सब होश के ही रूप हैं।

तो एक हुआ शरीर के क्रियाओं के प्रति। जैसे चलते हुए होश को हमने साधा और उसका नाम चक्रमण। आती–जाती श्वास के प्रति होश साधा इसका नाम अनापानसती योग। कालांतर में विपश्यना शब्द भी इसी के लिए काम आने लगा। भावसती यानी भाव के प्रति जागरूकता। विचारसती। सती का मतलब होता है स्मृति, जागरूकता, होश। प्राचीन भाषा में स्मृति शब्द का मतलब याददाश्त नहीं था। भगवान बुद्ध पाली भाषा बोलते थे नेपाली थे वह। उस समय की भाषा पाली कहलाती थी जिस एरिया में वह थे। तो वहां पर स्मृति शब्द का जब स्तेमाल करते हैं उसका मतलब है सजगता।

जब भीतर कुछ भी नहीं बचा निराकार शून्य बचा उसके प्रति होश। शून्यसती योग। ये बहुत बड़े–बड़े शब्द हैं। सीधी–सीधी भाषा में ध्यान यानी होश। माइंडफुलनेस यानी होश।

अब दूसरी बात समझते हैं राइट माइंडफुलनेस क्या है?

माइंडफुल यानी होश। राइट क्यों जोड़ा? सम्यक क्यों कहा?

बाहर और भीतर दोनों को जब इकट्ठा करेंगे इसका नाम राइट माइंडफुलनेस। समझो हम कोई काम कर रहे हैं, बगीचे में चल रहे हैं। चलते हुए हमें अपना भी स्मरण है, स्वयं का होश है तो यह राइट माइंडफुलनेस हुआ। यह सम्यक स्मृति हुई। अक्सर क्या होता है हम जिस क्रिया में संलग्न हैं उसका तो पता होता है, हमें अपना होश नहीं होता। दैट इज रांग माइंडफुलनेस।

अपना भी होश और बाहर जो हो रहा है उसका भी होश होना चाहिएः डबल एरोड कांशियसनेस।

मैं आपसे बोल रहा हूं यदि आप केवल मेरी बात सुन रहे हैं तो आप ध्यानपूर्ण नहीं हैं। हां, आप एकाग्र हो सकते हैं पर ध्यानपूर्ण नहीं है। ध्यानपूर्ण का मतलब क्या हुआ? मेरी बात भी आपको सुनाई दे रही है और यह सुनने वाला कौन है उसका भी ख्याल है।

यह सभी शब्द पर्यायवाची हैं। चाहे विपश्यना कहो, चाहे सम्यक स्मृति कहो, सम्मासती कहो, चाहे ध्यान या साक्षी कहो।

एक उदाहरण से समझिए। एक व्यक्ति अपने मकान के बाहर खड़ा है उसे केवल बाहर–बाहर का ही दिखाई देता भीतर का उसको पता नहीं चलता। यह बर्हिमुखी चेतना हुई। एक व्यक्ति भीतर आ गया अब उसको बाहर का नहीं दिखाई देता। कमरे के भीतर का दृश्य नजर आता है यह अंतर्मुखी चेतना। अब एक तीसरी स्थिति सोचिए। एक आदमी अपनी घर की दहली पर खड़ा है, बाहर का भी नजर आ रहा भीतर का भी नजर आ रहा। बीच में है वह।

भगवान बुद्ध का मार्ग मध्यम मार्ग कहलाता है बीच में। थोड़ी देर के लिए हम पूरी तरह भीतर जा सकते हैं उसका नाम समाधि है। घंटा–आधा–घंटा फिर हमें बाहर आना होगा अपने घर–गृहस्थी के काम करने हैं, दुकान और दफ्तर जाना है, पारिवारिक जिम्मेवारी निभानी है। हम हमेशा तो समाधि में नहीं हो सकते।

तो थोड़ी देर के लिए हम टोटली इंट्रोवर्ट हो सकते हैं परम शांति की दशा में लेकिन पूरे चौबीस घंटे हमें कौन सी साधना करनी है? साक्षी की साधना। हम ध्यान पूर्ण हों। जो कर रहे हैं उसका भी होश और अपना भी होश। तो इसको हम दुधारी तलवार जैसा समझें या ऐसा तीर जिसको हम दोनों तरफ फलक हैं। तो संक्षेप में बर्हिमुखी और अंतर्मुखी होश एक साथ।

तो ध्यान यानी होश। फिर होश के कई रूप होते हैं। बर्हिमुखी होश के भी कई रूप हैं। एक का नाम है एकाग्रता, जब हम एक विषय पर फोकस होते हैं। दूसरी है चंचलता, जब हमारा विषय बार–बार बदलता है। कभी यह, कभी वह। कहीं हम टिकते नहीं। एक है विक्षिप्तता। जब चंचलता बहुत बढ़ जाती है तो आदमी पागल जैसा हो जाता। तो तीनों बर्हिमुखी होश है। एकाग्रता, चंचलता, विक्षिप्तता। एकाग्रता में एक विषय के प्रति जागरूक हैं।

समझो एक बच्चा स्कूल में पढ़ रहा है, टीचर जो कह रहे हैं गौर से सुन रहा है उसको हम कहेंगे एकाग्रता। एक दूसरा बच्चा है चंचल उसका चित्त यहां–वहां भागता है। टीचर क्या कह रहा है एक–दो सेंटेंस सुने फिर खिड़की में से बाहर झांकने लगा फिर कहीं कुत्ते की भौंकने की आवाज आई उसका दिल वहां चला गया। उसे अपने कुत्ते की याद आ गई फिर वापिस क्लास में मन आया। फिर टीचर क्या कह रहा वह सुना। बीच का कुछ गायब हो गया। फिर थोड़ा सा सुना फिर कुछ और कल उसने कौन सी फिल्म देखी थी वह याद आ गई। फिर टीचर के एक–दो सेंटेंस सुने, फिर दो–चार सेंटेंस गायब कहीं और मन चला गया। इसको हम कहेंगे चंचलता। यह बच्चा ठीक से सीख नहीं पाएगा, ठीक से पढ़ नहीं पाएगा, इसको परीक्षा में अच्छे अंक नहीं मिलेंगे। यह भी बर्हिमुखी है और एकाग्रता वाला भी बहिर्मुखी है। एकाग्रता वाले को पढ़ाई में सफलता मिलेगी लेकिन हैं दोनों बर्हिमुखी।

तीसरा जिसको हम कहते हैं विक्षिप्त, पागल उसका मन अति चंचल रुकता ही नहीं। जरा में बदल जाता है। एक आदमी आपको मिला गले मिला, हाथ मिलाए, नमस्कार किए और एक थप्पड़ मारा फिर। इसको हम कहेंगे पागल हो क्या? इसका मन बड़े जल्दी–जल्दी बदलता है। अभी प्रेम में था अभी गुस्से में आ गया। कहेंगे यह आदमी पागल है इसका भरोसा नहीं। कुछ भी कर सकता है। उसका मन बहुत तेजी से चेंज हो रहा है। कुछ भी कर सकता है, कुछ भी कह सकता है। एक मिनट में पलट

सकता है कुछ और कहने लगेगा। आधी बात कहीं और आधी सेंटेंस को छोड़ कर कुछ और कहने लगा। हम कहेंगे यह आदमी पागल है, कुछ भी बकता रहता है, इसका कोई सेंस नहीं है। इसकी चंचलता बहुत ज्यादा बढ़ गई। है यह भी बहिर्मुखी।

तो होश तो है, लेकिन बाहर है। अब भीतर अपने होश लाएं तो भीतर हमें क्या–क्या पता चलता है? अपने भीतर मन है, मन में विचार हैं, कल्पनाएं हैं, याद हैं, योजनाएं हैं, चिंता है, फिर हमारे भीतर हृदय है, उसमें भावदशाएं हैं। कभी अच्छी वाली भावदशा है मित्रता की, प्रेम की, खुशी की, आशा की, कभी निगेटिव भावदशा है, खराब मूड हैं, उदासी है, निराशा है, क्रोध है, ईर्ष्या है, शत्रुता है, वैमनश्य, हिंसा की भावना है। यह दुर्भावनाएं हैं। हम इनके प्रति भी जागरूक हो सकते हैं। अक्सर हमें अपने भीतर की चीजों का तब पता चलता है जब वह जा चुकी। जब क्रोध आया तब हमें पता नहीं चला क्रोध अपना खेल खेल गया। तब हमें बाद में होश आया कि अरे मैंने यह क्या कर दिया। ऐसा मुझे नहीं कहना था। यह तो गलत हो गया।

काश उस समय होश आता जब क्रोध हमारे चित्त को आक्षादित कर लिया था। तब कुछ बात बनती। बाद में होश आने से क्या होता है? आग लग गई मकान जल कर पूरा धू–धू हो गया फिर हमें होश आया कि अरे वह चिंगारी ठीक नहीं थी अब क्या फायदा। वह तो जब चिंगरी सुलगी थी तभी होश आता तब हम उसको पैर से दबा के बुझा देते। फिर आग न लग पाती। तो हमें अपने भीतर भी होश साधना है विचारों के प्रति, भावनाओं के प्रति। उसके और भीतर हमारा निराकार शून्य आकाश है, अंतस चेतना है। उसके प्रति होश साध सकते हैं।

एक बाहर का जगत, एक भीतर का जगत; इन दोनों के बीच में है हमारा शरीर और सांस। शरीर की क्रियाओं के प्रति होश, सांस के प्रति होश, होश साधने के कई उपाय हो सकते हैं। भीतर और बाहर दोनों के प्रति होश लाना है। जब आप पैदल चल रहे हैं तो शरीर चल रहा है, जब आप इसके प्रति होश साधेंगे तो धीरे–धीरे आपको समझ में आएगा कि कोई है जो नहीं चल रहा इस चलने की घटना को जान रहा है वह आपकी चेतना है, वह आपकी आत्मा है। शरीर गति कर रहा है चेतना गति नहीं कर रही।

मैं बोल रहा हूं, यह कंठ से आवाज निकल रही है, लेकिन मेरे भीतर कोई है जहां अभी मौन और सन्नाटा है। चेतना कभी नहीं बोलती। वह होश मात्र है। बातचीत करते हुए मेरा हाथ हिल रहा है, चेहरे पर एक्सप्रेशन आ रहे हैं, यह शरीर की गति हो रही है और भीतर मैं अगतिमान हूं। चेतना तो चल ही नहीं सकती यह तो सदा–सदा स्थिर है। भगवान कृष्ण कहते हैं स्थित प्रज्ञ। जैसे दीपक की लौ बंद कमरे में हिलती–डुलती नहीं। हवा के कोई झोंके नहीं आते। ऐसा भी हमारे भीतर कुछ है उसका स्मरण।

जब विचारों के द्रष्टा बनो तो विचारों में मत खो जाना। अक्सर लोग अपने

आपको अंतर्मुखी कहते हैं, वह भी अंतर्मुखी नहीं होते वह विचारों में खो गए। अगर तुम्हें इसका होश रहा यह विचारों को कौन देख रहा है? हमारा मन ऐसे है जैसे टेलीविजन स्क्रीन जिस पर कहानी चल रही है, सीरियल चल रहा है, विचार चल रहे, कुछ कल्पनाएं हैं, कुछ स्मृतियां हैं। लेकिन याद करो कौन देख रहा है? वहां से ध्यान की शुरुआत होती है।

तुम विचारों से अलग उसके देखने वाले हो। तुम स्वयं एक विचार नहीं हो। और कभी–कभी फिर ऐसे क्षण आएंगे देखते–देखते कि कोई भी विचार नहीं मन की टेलीविजन स्क्रिन खाली, कुछ भी नहीं और बस तुम्हारा होना रह गया। यह शून्यता और शांति और आनंद की पहली–पहली झलक होगी।

इस तरह ध्यान के दो रूप हो गए बर्हिमुखी और अंतर्मुखी। दोनों को इकट्ठा जब हम साधेंगे उसका नाम साक्षी भाव। यह एक बहुत महत्वपूर्ण बिंदु हैः जब हम अपने प्रति भी होश रख रहे और बाहर के प्रति भी होश रख रहे। धीरे–धीरे हम उस बिंदु पर पहुंचने लगते हैं जहां होश मात्र रह जाता है। शरीर गति कर रहा है करता रहेगा और अपना एहसास भी बना रहेगा। एक अदभुत शांति छाने लगेगी। और आपकी शरीर की गतिविधियां भी बड़ी ग्रेसफुल, प्रसादपूर्ण हो जाएगी। आप बातचीत करेंगे, बोलेंगे उस बोलने में एक मिठास आ जाएगी। आपको अपना होश बना हुआ है। आपके मुख से ऐसी कोई बात नहीं निकलेगी जिसके लिए आपको पछताना पड़े कि मैंने ऐसा क्यों कह दिया। क्योंकि जब आप बोल रहे थे तभी आप पूरे होश में थे। होश में कोई गलती हो ही नहीं सकती गलती तो बेहोशी में होती है। एक होशपूर्ण व्यक्ति का जीवन बड़ा सुंदर, सुव्यवस्थित सफल जीवन होने लगता है। ऐसे व्यक्ति के भीतर फिर दुर्भावना नहीं आती, उसको कभी क्रोध नहीं आता। क्योंकि वह इतना होशपूर्ण है क्रोध कहां आएगा।

भगवान बुद्ध कहते थे यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेश, अहंकार, हिंसा इत्यादि चोर हैं, डकैत हैं। लेकिन यह उसी घर में घुसते हैं रात में जहां अंधेरा है। अगर किसी घर के भीतर दीपक जल रहा है तो स्पष्ट है कि घर में लोग जाग रहे हैं वहां पर चोर प्रवेश नहीं करता। ऐसे ही जिस व्यक्ति के भीतर होश का दीपक जल रहा है वहां पर यह दुर्भावनाएं फिर नहीं आती और इनको जो चोर कहा जाता है, लुटेरा कहा जाता है वह ठीक ही है हमारी जीवन की संपदा को यही लूट लेते हैं। हमारे जीवन को बर्बाद कर देते हैं। जो व्यक्ति जागरूक हो गया, माइंडफुल हो गया उसके भीतर रोशनी आ गई। अब यहां पर चोर–उचक्के नहीं आएंगे। मालिक जागा हुआ है।

राइट माइंडफुलनेस यानी साक्षी भाव की साधना। विपश्यना का मौलिक अर्थ भी यही था अपना होश प्लस बाहर के किसी एक आब्जेक्ट का होश।

योग की भाषा में भी इसको समझ लीजिए बड़ा आसान है। कर्म योग का मतलब

है कर्म के प्रति होश अपना ख्याल रखते हुए। मैं कुछ कर रहा हूं, मुझे अपना ध्यान बना रहे और कर्म का भी ध्यान बना रहे। इसको कर्म योग कहते हैं।

दूसरा कहलाता है तंत्र योग। अपनी इंद्रियों की संवेदनशीलता के प्रति होश और अपना भी होश। मैं कुछ सुन रहा हूं, मैं कुछ देख रहा हूं उसके प्रति तो होश तो है ही लेकिन अपना भी ख्याल है कि कौन है देखने वाला, कौन है सुनने वाला। जब आप भोजन करें, चाय पी रहे हैं, चाय की खुशबू, चाय का स्वाद, उसकी गर्माहट इसका आनंद लीजिए। साथ में ख्याल रखिए यह अनुभव किसको हो रहा है? वह आप हैं। अपना होश बना रहे और चाय पीना ध्यान बन जाएगा। स्नान कर रहे हैं गर्म–गर्म पानी ऊपर से डाल रहे हैं यह गर्माहट किसको महसूस हो रही है वह आप हैं। बीच–बीच में कभी आंख बंद करके स्नान कीजिए बड़ा मजा आएगा। कभी खाना खाते समय आंख बंद करके जरा स्वाद का मजा लीजिए। आप पाएंगे वाह! कितना रस। साधारण से भोजन में भी बड़ा रस आएगा। क्योंकि अब आप ज्यादा ध्यानपूर्ण हो गए, आप ज्यादा संवेदनशील हो गए।

एक पंछी की आवाज सुन रहे हैं और अपना भी ख्याल है। बड़ी गहरी शांति प्रगट हो जाएगी। सुनिए कौआ की आवाज आ रही, अब कोई आवाज नहीं। कौए की आवाज सन्नाटे की आवाज को और गहरा कर दे रही है। तंत्र योग का अर्थ है इंद्रियों की संवेदनशीलता के साथ आत्म स्मरण अपना ख्याल।

तीसरा है हठ योग। आती–जाती श्वास के प्रति होश और अपना ख्याल। यह कौन है सांसों को देखने वाला। उस द्रष्टा में साक्षी में रमना।

फिर हृदय की भावनाओं के प्रति होश का नाम भक्ति योग है। भावना के प्रति साक्षी बने तो चौथी प्रकार की साधना हो गई।

फिर पांचवीं: ज्ञान योग। ज्ञान योग का अर्थ है मन के विचारों के प्रति द्रष्टा का भाव। हमारे मन में जो विचार संकलित हैं उसी को हम अपना ज्ञान समझते हैं। ठीक इस ज्ञान के प्रति होश और अपना स्मरण। तो विचारों के साक्षी बनना ज्ञान योग कहलाता है।

छटवीं पद्धतिः राज योग या ध्यान योग। इसमें बिना किसी चुनाव के सभी चीजों के प्रति जागरूक होते हैं। शुरुआत के जो मैंने पांच योग कहे इनमें द्रष्टा भाव एक खास–खास चीज पे लागू होता है। कर्म योग, कर्मठ लोगों के लिए उचित होगा। तंत्र योग भोगी प्रवृत्ति वालों के लिए उचित होगा। हठ योग साहसी लोगों के लिए। भक्ति योग भावुक लोगों के लिए और ज्ञान योग विचारशील लोगों के लिए। यह पांच प्रकार के खास व्यक्तित्व हैं। कर्मठ, भोगी, साहसी, भावुक, विचारक। कुछ लोग ऐसे हैं जिनको हम इस कैटेगरी में नहीं बांट सकते उनमें सब चीजें मिश्रित हैं थोड़ी–थोड़ी।

ज्यादा लोग इसी कैटेगरी में आते हैं छटवीं कैटेगरी। मिश्रित प्रकार, मिक्स्ड टाइप। इनके लिए कोई खास योग करने की जरूरत नहीं है। यह तो बस जो भी कर रहे हैं जिस समय कभी भावना में है, कभी विचारों के प्रति जागरूक हैं, कभी शारीरिक क्रियाओं में संलग्न हैं। कभी कुछ नहीं कर रहे हैं बैठे हैं सांस तो चल ही रही है। तो जब जैसा मौका मिला उसी के प्रति ध्यानपूर्ण हो गए।

प्रथम पांच मार्गों पर हमने द्रष्टा भाव को किसी एक खास चीज के संग जोड़ा। छठवें प्रकार में हमने कुछ चुना नहीं, जीवन में जो हो रहा है, जैसा हो रहा है उसी के प्रति होशपूर्ण हो गए। तो कभी भाव हैं, कभी विचार हैं, कभी क्रियाएं हैं, कभी स्वाद ले रहे हैं। और कभी कुछ भी नहीं सांस तो चल ही रही है। तो जब जैसा मौका हो उसी के प्रति जागरूक हो जाना। इस प्रकार हमारे पूरे दिनचर्या में ध्यान फैल जाएगा। इसका नाम राजयोग या ध्यान योग भी कह सकते हैं। सदगुरु ओशो की प्रसिद्ध किताब है 'ध्यान योगः प्रथम और अंतिम मुक्ति' इसमें सब कुछ आ गया, सब प्रकार की चीजें आ गई।

फिर सातवां है सांख्य योग। बिना किसी विधि के, बगैर कोई सहारा लिए परम जागरण, साक्षी हो जाना।

जैसे-जैसे हम ध्यानपूर्ण होते जाते हैं भीतर शून्यता और शांति घटित होने लगती। और उस प्रगाढ़ होश की दशा में एक बहुत सूक्ष्म सी आवाज सुनाई पड़ने लगती जो ओम्... की ध्वनि से मिलती-जुलती है कुछ-कुछ। उसको हम कंठ से बोल नहीं सकते। जो निकटतम उपमा हम दे सकते हैं वह ओम की है। जैसे किसी मंदिर में गुम्बद के नीचे घंटा बजा दिया और गुंजार हो रही। एक हमिंग साउंड जैसे मधुमक्खियों का जत्था गुजर रहा हो। इसका नाम सहज योग है।

ये सभी द्रष्टा भाव की, साक्षी भाव की साधनाएं हैं। चाहे हम विपश्यना कहें, चाहे ध्यान कहें, चाहे योग कहें, चाहे सम्मासती कहें। आजकल अंग्रेजी भाषी जगत में इसे राइट माइंडफुलनेस कहते हैं। ओशो ने भी यही ट्रांसलेशन किया है। उनके अंतिम प्रवचन का अंतिम शब्द हैः सम्मासती, राइट माइंडफुलनेस।

शांति, शून्यता, आनंद आदि इसके परिणाम हैं। मेडिटेशन इज लाइक मेडिसन। मेडिटेशन इज मेडिसन ऑफ दि सोल। औषधि से शरीर स्वस्थ होता है, समाधि से आत्मा स्वस्थ होती है।

ओशो फ्रेगरेन्स के 6 दिवसीय शिविर, राइट माइंडफुलनेस रिट्रीट में होश साधने की कला सिखाई जाती है--बाहर और भीतर दोनों तरफ एक साथ। विभिन्न अध्यात्म प्रणालियों में अलग-अलग शब्द प्रयुक्त हुए हैं। जैसेः पतंजलि का शब्द द्रष्टा, कृष्ण का शब्द साक्षी। बुद्ध का शब्द 'सम्यक स्मृति' महावीर का शब्द 'विवेक'। गुरजिएफ का शब्द 'सेल्फ रिमेम्बरिंग'। सब समानार्थी हैं।

# सम्मासति द्वारा कलह–क्रोध से मुक्ति

## प्रश्नकर्ता– मानवता का अतीत युद्धों की दुखद कथा क्यों बनकर रह गया?

मानव, मानव नहीं हो पाया, इसलिए। नाम मात्र को हम मनुष्य हैं। कहने भर को सभ्य और सुसंस्कृत हो गए हैं। भीतर जंगली जानवर मौजूद है। ऊपर से शहरी, सुशिक्षित; अंदर से खूंखार पशु, आदिवासी। अभी हमें आदमी बनना है–जागरूक, प्रेमपूर्ण, करुणावान, उदार हृदय। सुनो यह गीत–

**सब कुछ है फिर भी कुछ खो रहा है आदमी,**
**होना था क्या, क्या हो गया है आदमी!**

**इस तरफ कुंआ और उस तरफ खाई है,**
**बीच में तलवार पर चल रहा है आदमी।**
**जिंदगी तो बस यूं ही नाम की है जिंदगी**
**अनचाहे बोझ सी ढो रहा है आदमी**
**आंखों को मूंदकर, सपनों में डूबकर,**
**बारूद के ढेर पर सो रहा है आदमी।**

**सब कुछ कर सकता, चाहे जो बन सकता,**
**आदमी भर हो नहीं पा रहा है आदमी।**

आदमी का पूरा इतिहास बारूद के ढेर से निर्मित है। पिछले तीन हजार वर्षों के ज्ञात इतिहास में लगभग पांच हजार बड़े युद्ध हुए। ये युद्ध तो वे हैं, जिनको इतिहास में दर्ज किया गया है। उन अनगिनत झगड़ों का तो कहीं जिक्र भी नहीं आया, जिनमें रोज सौ–दो–सौ लोग मारे जाते हैं, जिनमें बाप–बेटे, भाई–भाई, पति–पत्नी दिन रात एक–दूसरे को सताते रहते हैं। प्रथम विश्व युद्ध हुआ; लाखों लोगों की जानें गयीं। कुछ ही साल बीत पाये थे कि फिर द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया। फिर करोड़ों लोग मरे।

अभी इक्कीसवीं सदी में अंतिम युद्ध लड़ा जाने वाला है उसकी पूरी तैयारी चल रही है। रक्त रंजित इतिहास है हमारा। ऐसा लगता है कि मनुष्य जाति का एक ही उद्देश्य है–लड़ाई करना। झगड़ा करना। कलह करना। युद्ध करना। उसके अलावा हमें

जीवन का और कोई उपयोग समझ नहीं आता। कोई भी छोटी सी बात और लड़ाई–झगड़ा शुरु हो जाता है।

**डरा–डरा डांवाडोल लड़खड़ाता हुआ,**
**पता नहीं क्यों किधर जा रहा है आदमी?**
**जितना सुलझाओ उतना उलझ जाता है,**
**धागों के गुच्छे सा हो गया है आदमी।**
**काम खूब चलता है नकली मुखौटों से,**
**चेहरों की भीड़ में खो गया है आदमी।**
**दूर से लुभाता और पास से चुभाता है,**
**कैक्टस के झाड़ सा हो गया है आदमी।**
**चेतन की ज्योति से दुनिया को जान लिया,**
**दीया तले खुद से ही अजनबी है आदमी।**

तुम पूछते हो युद्धों की यह दुखद कथा क्यों घटी? क्योंकि दीया तले अंधेरा है। मनुष्य के भीतर चैतन्य की ज्योति है, उसकी रोशनी बर्हिमुखी है। बाहर तो सब प्रकाशित हो गया। भीतर अंधेरा रह गया। बाहर विज्ञान ने चमत्कार कर दिखाए; अद्‌भुत शक्ति आदमी के हाथों में पकड़ा दी। मगर भीतर कोई रूपांतरण न हुआ। हमारे भीतर क्रोध, हिंसा, वैमनस्य वैसा का वैसा है। आदिवासी थे, तब हाथ में पत्थर के हथियार या डंडे थे। अब विज्ञान ने पत्थर की जगह परमाणु बम और डंडों की जगह मिसाइल दे दी। जैसे बंदर के हाथों तलवार सौंप दी। इतिहास के सर्वाधिक खतरनाक मोड़ पर हम खड़े हैं। या तो बुद्धों की सुनें, या युद्धों में मरें। तीसरा विकल्प नहीं है।

गौतम बुद्ध करते हैं आष्टांगिक मार्ग में सम्यक स्मृति की बात। काश, अपना स्मरण आ जाये, स्वयं के प्रति जागरूकता, 'सेल्फ रिमेम्बरिंग'; चैतन्य का दीया तले अंधेरा मिट जाए तो हम सारे झगड़े–झंझटों से बच सकते हैं।

हमारे जीवन के दो तल हैं। सामान्यतः हम अपने अहंकार के तल पर जीते हैं, आत्मा के तल पर नहीं। आत्मा को हम बिल्कुल भूले हुए हैं। आत्म विस्मरण में हमारा पूरा जीवन जीया जा रहा है। हम अहंकार के तल पर जीते हैं और उस अहंकार से ही ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, प्रतियोगिता की भावना, घृणा, दूसरों से तुलना और सारी नकारात्मक भावनाएं उपजती हैं। गौतम बुद्ध कहते हैं, यदि हम आत्म जागरण, सम्मासती, सम्यक स्मृति से भर जाएं तो हमारा जीवन कलह मुक्त हो सकता है।

हमारा जो अहंकार है, वह एक घाव की तरह है। यदि आपके पैर में चोट लगी हो या फोड़ा–पुंफसी हो गया हो, तो किसी का पैर आपके पैर के ऊपर रखा जाता है। जहां आपको दर्द हो रहा है, वहीं किसी और के द्वारा चोट लग जाती है। कहीं टेबल से टकरा जाते हैं तो कभी कुर्सी से। छोटा बच्चा आकर उसी पैर पर पैर रखकर खड़ा हो जाता है, जहां तकलीफ है। वहां और तकलीफ पहुंच जाती है। उसी प्रकार जब भी हमें चोट लगती है, तो आत्मा में नहीं, अहंकार में पीड़ा होती है। अहंकार जीवन का घाव है। सभी उसी से टकराते प्रतीत होते हैं। यद्यपि कोई जान–बूझकर नहीं टकराता। मगर 'अहं' चोट खाता रहता है। यदि चोटों से बचना है तो इस घाव का इलाज करना होगा।

अहंकार हमेशा दूसरों में भूल खोजता है अपने को दोष नहीं देता। यह अहंकार ही असली आतंकवादी है। इसकी जड़ें मूर्च्छा में छिपी हैं। व्यक्तिगत रूप से कलह हो, चाहे राष्ट्रीय स्तर पर आतंक, अथवा अंतर–राष्ट्रीय युद्ध हो; कारण अहंकार ही होता है। अमूर्च्छा, अप्रमाद, या जागरूकता की साधना ही इसके पार उठाकर हमें मनुष्य बनाती है। महावीर इसे कहते हैं–अप्रमाद, बुद्ध कहते हैं–सम्मासति, सम्यक स्मृति। ओशो के अंतिम प्रवचन का अंतिम शब्द भी यही है–'सम्मासति, राइट माइंडफुलनैश'।

## क्रोध अपने से कमजोर पर

**प्रश्नकर्ता– जब तक लोग न सुधर जाएं, गुस्सा आना कैसे बंद हो सकता है? क्रोध के कारण मौजूद रहते हुए क्रोध से छुटकारा तो संभव नहीं लगता।**

मैंने सुना है कि एक सुबह नसरुद्दीन सड़क पर गालियां देता हुआ चला जा रहा था–जो डिक्शनरी में भी नहीं हैं–हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में। कह रहा था कि देख लूंगा, निपट लूंगा, छोड़ूंगा नहीं। एक गली से एक आदमी निकला। उसने कहा कि भाई, यहां सड़क पर कोई है नहीं। तुम अकेले जा रहे हो। ये गालियां किसे दे रहे हो? किस पर इतना क्रोधित हो रहे हो? मुल्ला ने कहा यह सवाल नहीं कि किस पर क्रोधित हो रहा हूं। क्रोध मेरे भीतर है। कोई न कोई बेचारा मिल ही जाएगा। लो, अब तुम्हीं फंस गए। जो मिलेगा, उसी पर बरस पड़ूंगा। आओ, तुम्हीं से निपट लूं।

हमें लगेगा कि यह आदमी पागल है। लेकिन यह आदमी अकेला पागल नहीं है। हम सब भी इसी तरह विक्षिप्त लोग हैं। हमारे भीतर जब क्रोध उमड़ता है, क्रोध की अग्नि जलती है भीतर, तो उसकी लपटें दूसरों तक पहुंचने लगती है। हम सोचते हैं कि दूसरा व्यक्ति कारण है। लेकिन ऐसा नहीं है। हम सब बहाना खोजते हैं। जैसे हमें कोट

टांगना है, तो कोई भी खूंटी काम दे जाती है। खूंटी नहीं मिलेगी, कील पर टांग देंगे।

क्रोध भीतर उबल रहा है, तो कोई न कोई बहाना मिल जाएगा। लेकिन हम हमेशा उसका 'जस्टिफिकेशन' देंगे। तर्क–वितर्क देंगे कि क्यों क्रोध आया। एक उदाहरण से समझें, ऑफिस में आपके 'बॉस' ने डांट दिया किसी बात पर। अब आप अपने 'बॉस' को तो जवाब नहीं दे सकते पलट कर। क्योंकि शक्ति उसके पास है। चाहे तो नौकरी से निकाल दे। खतरा हो सकता है। जहां खतरा है, वहां आप अपना क्रोध जाहिर नहीं करते। आप वहां मुस्कुराते रहेंगे। दुम हिलाते रहेंगे। आप अपने से कमजोर व्यक्ति पर अपना क्रोध निकालेंगे। घर आएंगे। पत्नी ने खाना परोसा। थाली लगाकर दी। आप क्रोधित हो कर कहेंगे–'यह क्या! रोटी जल गई। दाल में नमक ज्यादा क्यों पड़ गया? आज दहीं क्यों नहीं है घर में?' कोई भी बात और आप नाराज हो जाएंगे। कहेंगे–'नहीं खाऊंगा ऐसा खाना।'

ऐसी बात नहीं कि आज ही रोटी जली है, कि आज ही दाल में नमक ज्यादा पड़ गया है। रोज यही होता है। लेकिन आज आप क्रोध में हैं। आज आप पत्नी पर बरस पड़ेंगे। क्रोध जो 'बॉस' पर व्यक्त होना था, वह पत्नी पर प्रकट हो जाएगा। अब पत्नी क्या करे बेचारी। हिन्दू घर की पत्नी है, बचपन से सीखा है कि पति परमेश्वर होता है। अब वह इंतजार करेगी कि कोई उससे भी कमजोर मिल जाए। हो सकता है वह घर की नौकरानी को डांट दे किसी बात पर। या छोटा बच्चा स्कूल से चला आ रहा है। जहां उसने देखा कि बच्चा आया, पकड़ कर उसे दो चांटे मारे। कहे कि 'कपड़े खराब करते हो, मिट्टी लगाते हो, धो–धोकर मैं परेशान हो जाती हूं। और ये किताब क्यों फाड़ दी?'

बच्चे तो बच्चे हैं। अब बच्चे कपड़े गंदे नहीं करेंगे, तो कौन करेगा? किताब भी फटेगी। और ऐसा नहीं कि आज ही किताब फाड़ी, कि आज ही उसने कपड़े गंदे किए। रोज कपड़ों में कीचड़ लगती है। लेकिन रोज उसकी मां उसे नहीं मारती। लेकिन आज वह गुस्से में बैठी है। पति ने उसे डांटा है। उसका बदला बच्चे से ले लिया। बच्चा कमजोर है, बेचारा कुछ नहीं कर सकता। वह अपने कमरे में जायेगा और जाकर गुड्डे की टांग तोड़ देगा। या सड़क पर एक निरीह कुत्ता बैठा है। वह कुत्ते को एक पत्थर मार देगा। उसने अपना क्रोध दूसरी चीजों पर निकाल दिया। क्रोध जब हमारे भीतर उबलता है तो कहीं न कहीं हम उसे निकालते हैं। ऐसा समझें कि पहाड़ से एक झरना बह रहा है। जल स्रोत को आप यदि रोक दें, वहां ईट–पत्थर लगा दें, तो दूसरी जगह से झरना बनकर फूट पड़ेगा। हमारा क्रोध भी अक्सर जहां निकलना चाहिए था, वहां से न निकलकर कहीं दूसरी जगह से निकलता है। सामने वाले को समझ नहीं आता कि मामला क्या है। हम बहानों को कारण बताकर हिंसा करते हैं और सिर्फ दूसरों को ही नहीं स्वयं को भी कष्ट देते हैं, अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार लेते हैं।

**जिस पर बैठा है, उसी डाली को काट रहा,**
**किस्मत के नाम पर रो रहा है आदमी।**
**पूरब भी जाना और पश्चिम भी जाना है,**
**द्वंद्व में ही टूटता जा रहा है आदमी।**
**कितने रोज आते हैं, कितने चले जाते हैं,**
**काल से बेखबर काल खो रहा है आदमी।**
**छाया से जूझ रहा, लड़-लड़ कर टूट रहा,**
**बीज फिर भी झगड़ों के बो रहा है आदमी।**
**आदर्श की आड़ में, अहंकार की चाल में,**
**व्यर्थ में शहीद-सा, हो रहा है आदमी।**
**तर्कों के तीर चला, बहाने को वजह बता,**
**गुस्से की आग में, जल रहा है आदमी।**

## अंधकार रूपी अहंकार को पहचानो

हम बहाने को वजह बताते हैं। जबकि क्रोध हमारे भीतर मौजूद है। कहीं न कहीं निकलेगा ही। अपनी समस्या को पहचानो। बीमारी है तो इलाज संभव हो सकेगा। कोई कुआं कहे कि मुझ में तो पानी नहीं है, लेकिन ये रस्सी-बाल्टी के कारण मुझ से पानी निकल आता है। पानी है, तो बाल्टी पानी निकाल सकती है। यदि कुआं सूखा होता, तो लाख बाल्टियां कुछ नहीं कर सकती थीं। बाल्टी को दोष मत दो। लोगों को सुधारने की कोशिश न करो। तुमने सबका ठेका ले रखा है? आज तक कोई किसी को सुधार पाया है? तुम अपनी ही फिक्र कर लो तो काफी है। कृपाकर सिर्फ एक व्यक्ति को सुधार लो-वह आप स्वयं हो।

ऐसा कोई भी आदमी नहीं है, जो लड़ना चाहता हो, झगड़ा करना चाहता हो, झंझट में फंसना चाहता हो। बड़े अचरज की बात है सभी प्रेम लेना देना चाहते हैं। फिर इतने फसादों में क्यों उलझते हैं? क्रोध कहां से आता है? यह अहंकार से आता है।

सभी ज्ञानी कहते हैं कि अहंकार वस्तुतः कोई चीज नहीं है। अहंकार का होना अंधकार के होने जैसा है। जैसे एक कमरे में अंधेरा हो, तो आप अंधेरे के साथ क्या कर सकते हैं? क्या उसको पोटलियों में बांधकर बाहर फेकेंगे, कि तलवार से काटेंगे, कि पिस्तौल चलाकर मारेंगे, या कुश्ती लड़ेंगे अंधेरे के साथ? नहीं, अंधेरे के साथ कुछ

भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि अंधेरे का अपना कोई पॉजिटिव एग्जिस्टेंस नहीं है। उसकी अपनी कोई विधायक सत्ता नहीं है। अंधेरा कहीं है नहीं, सिर्फ भासता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उसके परिणाम नहीं होते। परिणाम होते हैं। आप अंधेरे में चलेंगे, ठोकर खाकर गिर जायेंगे, गड्ढे में गिर जायेंगे, दीवाल से टकरा जायेंगे। सिर फूट सकता है।

अंधकार के परिणाम जरूर हैं, लेकिन अंधकार की अपनी सत्ता नहीं है। दीपक जलायें और अंधेरा विदा हो जाता है। यह कहना भी ठीक नहीं कि विदा हो जाता है। कहना चाहिए कि दीपक जलते ही अंधेरा पाया नहीं जाता। अंधेरा प्रकाश की अनुपस्थिति है। रोशनी की उपस्थिति और अनुपस्थिति दोनों एक साथ नहीं हो सकतीं। प्रकाश का होना और प्रकाश का न होना, 'ऐबसेंस' और 'प्रेज़ॅन्स', दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। इसलिए जैसे ही प्रकाश होता है, अंधेरा पाया ही नहीं जाता।

# आत्म–विस्मरण है अहंकार

## प्रश्नकर्ता– मेरा अहंकार ही मुझे लड़ाता है, यह बात समझा; मगर इसे कैसे जीतूं?

जीतने का नहीं, जागने का सवाल है। आत्म स्मरण से, 'सेल्फ रीमेंबरिंग' से, जो भीतर ध्यान में डूबता है, सजग होते ही, वह अपने भीतर अंधकार को नहीं पाता, अहंकार को नहीं पाता। अहंकार मिलता ही नहीं। कभी आप दस मिनट आंखें बंद कर के बैठें और बड़े होशपूर्वक भीतर जायें। आपको अपने भीतर विचार मिलेंगे, भावनाएं मिलेंगी। उनके भी भीतर जायें। और ज्यादा सजग हों। जैसे–जैसे होश बढ़ता जाता है, विचार विदा होने लगते हैं। उनके होने के लिए बेहोशी अनिवार्य है। भावनाओं के जो उद्वेग हैं, उनके होने के लिए मूर्च्छा आवश्यक है। आत्म विस्मरण जरूरी है। जैसे ही आप अपने स्मरण से भरते जायेंगे, भीतर पायेंगे कि केवल एक शून्यता रह गयी। सिर्फ जागरण रह गया। सिर्फ 'कॉन्शसनेस', चेतना शेष बची लेकिन अहंकार कहीं भी नहीं मिला। अहंकार चेतना की अनुपस्थिति का नाम है। आत्म विस्मरण यानी अहंकार। जो लोग सम्यक स्मृति पूर्वक अपना जीवन जीते हैं, उनके जीवन से कलह विदा हो जाती है। सारे लड़ाई–झगड़े समाप्त हो जाते हैं।

बुद्ध एक गांव से गुजर रहे थे। चार लोग वहां मिले जो उनका अपमान करने लगे। गालियां देने लगे। बुद्ध पर उन्होंने अपनी नाराजगी प्रकट की। गौतम बुद्ध शांत चुपचाप खड़े, सुनते रहे। जब उनकी गालियां समाप्त हुईं, गौतम बुद्ध ने कहा कि मित्रो एक प्रश्न तुमसे पूछता हूं। मैं अभी थोड़ी देर पहले पीछे एक गांव से गुजरा। कुछ लोग वहां पर मिठाइयां लेकर आये थे मुझे भेंट देने के लिए। मैंने कहा कि आप ये मिठाइयां वापस ले जायें। क्योंकि थोड़ी देर पहले ही मैंने भोजन लिया है। मित्रो जरा यह बताओ, उन लोगों ने मिठाइयों का क्या किया होगा? वे चार लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा कि तुम बुद्ध हो कि बिल्कुल बुद्धू हो गए हो, इतनी सी–बात भी नहीं समझते? अरे, उन्होंने जाकर अपने परिवार में, अपने मित्रों में पड़ोसियों में मिठाइयां बांट दी होंगी। गौतम बुद्ध ने कहा, ठीक। अब मुझे बड़ा दुख होता है यह सोचकर कि तुम इन गालियों का क्या करोगे? तुम जो गालियां मुझे देने आये थे, वे मैंने नहीं लीं। अब मैं सम्यक स्मृति पूर्वक जीता हूं। मैं अपनी आत्मा के तल पर जीता हूं। मैं अपना स्वामी हूं। मैं दूसरों के द्वारा संचालित नहीं होता। अपनी इच्छानुसार जीता हूं। तुम गालियां देने जरूर आये हो, लेकिन लेना या न लेना मेरे हाथ में है। मेरा पेट भरा हुआ था, मैंने मिठाइयां नहीं लीं। तुम्हारी गालियों का अब तुम क्या करोगे? अब तुम इस क्रोध का क्या करोगे?

हम सबका जीवन ऐसे है, जैसे कि हमने अपने जीवन का रिमोट कंट्रोल दूसरों के हाथ में दे रखा हो। एक आदमी आता है, आपका अपमान करता है, आप क्रुद्ध हो जाते हैं। दूसरा आदमी आता है वह खुशामद में चार मीठी–मीठी बातें बोलता है। आप बहुत प्रसन्न हो जाते हैं। आपका रिमोट कंट्रोल दूसरों के हाथ में है। कोई चाहे तो आपको प्रेम से भर सकता है और कोई चाहे तो आपमें घृणा जन्मा सकता है। कभी जरा इस बात को गौर से देखें। हम मनुष्य हैं कि यंत्र हैं?

एक मशीन की तरह हम व्यवहार करते हैं। जैसे बटन दबाते हैं और पंखा चलने लगता है। बटन बंद करते हैं तो पंखा बंद हो जाता है। पंखे की अपनी कोई स्वतंत्र चेतना नहीं है। बटन के द्वारा वह संचालित होता है। क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि जब आपको कोई गाली देता है, और आप क्रोध करने लगते हैं, तो आप यंत्रवत व्यवहार, मेकैनिकल बिहेवियर करते हैं। इसमें चैतन्य की गरिमा नहीं है। इसमें मनुष्य होने की महिमा नहीं है। अहंकार को जीतने का सवाल नहीं है। वह है ही नहीं तो जीतोगे कैसे? जागो और जानो कि वह नहीं है; यही आत्म विजय का सूत्र है।

प्रश्नकर्ता– क्या जागृत पुरुष कभी नहीं लड़ते?

ऐसा नहीं कि जो आदमी चेतना के तल पर जीता है वह कभी लड़ाई नहीं करता। सत्य के लिए वह एक प्रकार का संघर्ष कर सकता है जो न्यायोचित होता है।

अपने उत्तरदायित्व के कारण, करुणावश या बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना से प्रेरित होकर वह करता है। जैसा कि भगवान कृष्ण ने भी अन्याय के खिलाफ एक लड़ाई लड़ी। उन्होंने सुदर्शन चक्र उठाया। वह एक न्यायोचित संघर्ष था। अपने दायित्व को वे निभा रहे थे। उसे क्रोध से उत्पन्न कलह नहीं कहा जा सकता। जब हमारे ऊपर अहंकार का भूत सवार हो जाता है, तब हम जो लड़ाई करते हैं वह कलह है। उमर की कथा से इस बात को सदगुरु ओशो ने बड़े सुंदर अंदाज में समझाया है।

## न्यायोचित संघर्ष– उमर की कहानी

बगदाद में खलीफा उमर नामक एक सूफी बादशाह हुआ। उसका शत्रु बारह वर्षों से निरंतर उसके राज्य पर आक्रमण कर रहा था। उमर उसकी सेनाओं को बारंबार सीमांत तक खदेड़ आता। अंततः एक दिन ऐसा हुआ कि शत्रु सम्राट का घोड़ा घायल हो गया। दुश्मन जमीन पर चारों खाने चित्त। उमर उछलकर उसकी छाती पर सवार। ज्यों ही उमर उसके सीने में तलवार भोंकने को हुआ, तभी उसने उमर के मुंह पर थूक दिया। उमर ने तलवार वापस खींचकर म्यान में रख ली। दुश्मन तो आश्चर्यचकित रह गया। उसने पूछा–'बारह साल बाद तुम्हें यह मौका मिला था मुझे मारने का। क्यों छोड़ दिया?'

उमर बोला–'क्योंकि तुम्हारे थूकने की वजह से मुझे क्रोध आ गया। और मैं तुम्हें गुस्से से मारना नहीं चाहता।'

उसने कहा–'तो क्या इतने सालों से बिना क्रोध के लड़ रहे थे?'

उमर ने जवाब दिया–'निश्चित ही! मैं अपने राज्य की हिफाज़त के लिए, प्रजा की रक्षा के लिए तुमसे लड़ता था। तुम्हारे ऊपर क्रोध की वजह से नहीं, बल्कि अपना कर्तव्य निभाने की खातिर शस्त्र उठाता था। किंतु अभी, जब तुमने मेरे चेहरे पर थूका, तो व्यक्तिगत रूप से मेरे भीतर तुम्हारे खिलाफ क्रोध की लपटें जलने लगीं। इस क्षण अगर तुम्हें मार दूं, तो दुनिया तो यही समझेगी कि मैं अपना कर्तव्य निभा रहा हूं, जनता पर करुणा कर रहा हूं, लेकिन मेरी आत्मा जानती है कि मैं गुस्से में यह कृत्य कर रहा हूं। अभी तुम उठो, यहां से जाओ। शांत हो जाने पर कल फिर युद्ध करूंगा।'

'परमात्मा प्रेम है' की प्रथम घोषणा करने वाले ईसा मसीह सिखाते थे कि कोई एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल सामने कर देना। एक दिन वही प्रेम के मसीहा कोड़ा लेकर यहूदियों के मंदिर में प्रवेश करते हैं। कोड़े मार–मारकर पुरोहितों को खदेड़ देते हैं और उनके तख्त पलट देते हैं, क्योंकि उन पुरोहितों ने धर्म के नाम पर मंदिर में आर्थिक शोषण का षड्यंत्र चला रखा था। गरीब जनता को वे बहुत ज्यादा ब्याज की दर पर उधार दिया करते थे।

मूलधन की तो बात छोड़ो, लोग सूद भी न चुका पाते थे। पीढ़ी दर पीढ़ी कर्ज बढ़ता ही चला जाता था। परंतु याद रखना, जीसस का कोड़ा उठाना क्रोध के कारण नहीं, बल्कि एक करुणाजन्य कृत्य है। ऊपर–ऊपर से कर्म देखकर नहीं तय हो सकता, भीतर इरादा क्या है, यह पकड़ना होगा। जागृत पुरुष क्रोध भी करें तो उसे करुणा ही जानना।

## अहंकार के विविध रूपों के पीछे छिपा मनोविज्ञान

मनोवैज्ञानिक आधार पर अहंकार चौदह प्रकार के होते हैं। यह और अच्छा होगा कि सात जोड़े भूत–भूतनी कहें क्योंकि ये पति–पत्नी की तरह लड़ते ही रहते हैं। जब ये आदमी पर हावी हो जाते हैं तो बुद्धि–विवेक मारा जाता है। आदमी नशे की हालत में कुछ कर गुजरता है, जिसके लिए बाद में पश्चात्ताप करता है। प्रत्येक व्यक्ति में कोई एक 'टाइप' खासकर हावी होता है।

महाभारत सीरियल में आपने देखा होगा कि दो तरफ से तीर आते हैं। तीर टकराते हैं तो विस्फोट होता है। जब भी हम अहंकार का एक तीर छोड़ते हैं, 'आई ऐम राइट' और दूसरी तरफ से उल्टा तीर आता है, 'यू आर राँग'। तब महाभारत छिड़ता है। कलह होती है।

व्यापारियों में परिग्रह की वृत्ति बहुधा 'आई विल पौज़ेस' भूत के कारण होती है यह मारवाड़ियों का जातिगत भूत है। पत्रकार, कम्युनिस्ट, नक्सलाइट, यूनियन लीडर्स, चोर, डाकू बहुधा 'यू कैन नॉट पौज़ेस' भूत वाले लोग होते हैं।

'डॉमिनेशन' का भूत क्षत्रियों का जातिगत भूत है।

अक्सर 'बॉस' और 'सबॉर्डिनेट' के बीच जो झगड़ा होता है वह 'डॉमिनेशन' का झगड़ा होता है। 'बॉस' (अधिकारी) 'डॉमिनेट' करना चाहता है, यदि उसका 'सबॉर्डिनेट' (मातहत) 'डॉमिनेट' होने के लिए तैयार नहीं है तो फिर कलह होगी। पति–पत्नी के झगड़े अक्सर 'डॉमिनेशन' के झगड़े होते हैं। घर में किसकी बात मानी जायेगी। छोटे–छोटे बच्चे तक अपनी जिद मनवाने के लिए खूब हंगामा खड़ा करते हैं। देखो, मां–बाप की चलेगी अथवा हमारी चलेगी?

एक बार अपने भीतर के इस भूत की पहचान कर लें तो समझ में आ जाएगा कि कब भूत जागा... कि अब झगड़े की शुरुआत होने वाली है। अगर उस समय सजग हो जायें तो आपके ऊपर सवार भूत विदा हो जायेगा और आप प्रेम से भर जायेंगे।

अक्सर हम अपने अहंकार के इस भूत को 'जस्टिफाइ' करने की कोशिश करते हैं बड़े तर्क–वितर्क देते हैं कि क्यों मैं ऐसा कर रहा हूं? क्यों मैं न्यायोचित हूं। जब 'आई ऐम राइट' भूत के साथ तर्क जुड़ जाता है तो वह 'आई ऐम जस्टिफाइड' का महाभूत बन जाता है। खूब बहसबाजी चलती है। अकेले आप इतना ही कहेंगे 'आई ऐम राइट' 'मैं सही हूं' तो लोग हंसेंगे। आप उसे कई प्रकार से सिद्ध करते हैं कि मैं क्यों सही हूं? दूसरा क्यों गलत है? जब हम दूसरे के विपक्ष में दलीलें देने लगते हैं तो 'यू आर नॉट जस्टिफाइड' वाला भूत उभर आता है।

अहंकार के ये विभिन्न रूप हैं। इनके प्रति सजग होते ही ये निष्क्रिय हो जाते हैं।

गौतम बुद्ध इसे ही 'सम्यक स्मृति' कहते हैं। अहंकार के भूत एक दूसरे से लड़–लड़ कर शांत नहीं होंगे। उन्हें समाप्त करने के लिए होश से, सम्यक जागृति से भरना होगा।

## अहंकार रूपी भूतों के मुख्य गुण

| क्रम | चक्र | मुख्य गुण | सक्रियतावादी –राजसी | प्रतिक्रियावादी –तामसी |
|---|---|---|---|---|
| 1. | मूलाधार | चरित्र केंद्रित | मैं सही हूं | तुम गलत हो |
| 2. | स्वाधिष्ठान | धन केंद्रित | मैं अमीर बनूंगा | तुम बेईमान हो |
| 3. | मणिपुर | शक्ति केंद्रित | मैं शक्तिशाली हूं | तुम हावी मत होओ |
| 4. | अनाहत् | भाव केंद्रित | मैं हितैषी हूं | तुम मेरा पीछा छोड़ो |
| 5. | विशुद्ध | बुद्धि केंद्रित | मैं जानता हूं | तुम नहीं जानते |
| 6. | आज्ञाचक्र | निर्णय केंद्रित | मैं सलाह दूंगा | तुम सलाह मत दो |
| 7. | सहस्रार | यश केंद्रित | मैं महान हूं | तुम तुच्छ हो |

# अहंकार रूपी भूतों के उभय लक्षण

| सक्रियतावादी–राजसी | प्रतिक्रियावादी–तामसी |
|---|---|
| विधायक या परकेंद्रित | नकारात्मक या स्वकेंद्रित |
| मधुरभाषी, भले ही असत्य | सत्यभाषी, भले ही कटुतापूर्ण |
| बहिर्मुखी, बड़ी मित्र–मंडली | अंतर्मुखी, बहुम कम दोस्त |
| सामाजिक, औपचारिक, शीलवान | एकांतप्रिय, झगड़ालू, मूडी |
| व्यवस्था व परम्परा प्रिय | सत्ता विरोधी, मौलिकता प्रिय |
| वाचाल, परमार्थी, सक्रिय | मितभाषी, स्वार्थी, निष्क्रिय, |
| खुशामद–पसंद, चमचागिरी भी | खुशामद–नापसंद, प्रशंसा में कृपण |
| प्रेमी, समर्पित, भक्तिमार्गी | ज्ञानी, संकल्पवान, ध्यानमार्गी |
| प्रसन्न, उत्साही, ऊर्जावान | उदास, उमंग रहित, कमजोर |
| हार्दिक, भावुक, राजसी | बौद्धिक, विचारक, तामसी |
| दूसरों का ज्यादा ख्याल | स्वयं पर ज्यादा ध्यान |

# अहंकार के दुर्गुण : दूसरों की नजरों में

| | परकेंद्रित भूतों के लक्षण | स्वकेंद्रित भूतों के लक्षण |
|---|---|---|
| 1. | चरित्र प्रदर्शन,<br>दमित चित्त, धोखेबाज, कुत्तों से चिढ़ | सच्चाई उघाड़ना,<br>कटुभाषी, निंदक, कुत्तों से लगाव |
| 2. | धन प्रदर्शन,<br>बेईमान, लोभी, शोषक, भोगी, स्वार्थी | ईमानदारी दिखाना,<br>ईर्ष्यालु, कंजूस, चोर, डाकू |
| 3. | बल प्रदर्शन,<br>तानाशाह, गुंडा, नेता, दादा, चमचा | आत्म रक्षा करना,<br>बगावती, आतंकवादी, द्वेषयुक्त |
| 4. | प्रेम प्रदर्शन,<br>ममता–मोहग्रस्त, दीवाना, सनकी, मजनू | आत्म निर्भर होना,<br>दंभी, कठोर दिल, निर्मोही, बेदर्दी |
| 5. | ज्ञान प्रदर्शन,<br>मूर्ख, बकवासी, रूढ़िवादी, किताबी कीड़ा | समालोचना करना,<br>कुतर्की, छिद्रान्वेषी, कटाक्षी |
| 6. | मार्ग प्रदर्शन,<br>मुफ्त–सलाहकार, सताऊ, टांग–अड़ाऊ | मौलिकता खोजना,<br>जिद्दी, अवज्ञाकारी, नियम–भंजक |
| 7. | नाम प्रदर्शन,<br>धूर्त, पाखंडी, चालाक, यशाकांक्षी | वैज्ञानिक विचारणा,<br>निकृष्ट, पापी, तुच्छ, दुस्साहसी |

# अहंकार के सदगुण : स्वयं की नजरों में

| | राजसी समूह के लक्षण– सज्जन, कर्मठ, परंपरावादी | तमसी समूह के लक्षण– शांत, साहसी, आत्म विश्वासी |
|---|---|---|
| 1. | मृदुभाषी, शीलवान, सच्चरित्र, प्रशंसा की चाहत, धैर्यवान, सहिष्णु, संतुष्ट, सौंदर्य में रस | सत्यभाषी, शांतिप्रिय, सहज, स्वाभाविक, प्रामाणिक, सरल, स्वच्छता में रस, मजाकिया वृत्ति |
| 2. | विकासवादी, सुख–सुविधा जमीन – जायदाद, आभूषणों में रस, पूंजीवादी, व्यापारी, उद्योगपति, संग्रह में रस | साम्यवादी, ईमानदार, अन्याय–विरोधी, पत्रकार, समानता का मूल्य |
| 3. | अनुशासनप्रिय, पहलकर्ता, व्यवस्थापक, पहलवान, खिलाड़ी, प्रशासक, पद–प्रतिष्ठा में रस, नेतागिरी का शौक, | साहसी, स्वानुशासनवादी, विद्रोही, आत्म–सम्मान व सुरक्षा में रस, ट्रेड यूनियन लीडर बनने का शौक, अधिकारियों व प्रतिष्ठित लोगों से नाराज |
| 4. | परोपकारी, प्रेमी प्रकृति, समाज सेवक, मैत्री, ममता, करुणा, भोजन खिलाने व मेहमान नवाजी का शौक | स्वतंत्रता में रस, ध्यानी प्रकृति, आत्मनिर्भर, एकांतप्रिय, कलात्मक आयामों में रस |
| 5. | बुद्धिमान किंतु अतीतोन्मुख, पंडित, शास्त्रज्ञानी, न्यायप्रेमी वकील, लेखक, कवि, कहानीकार, ज्ञानी, पढ़ने का शौक, समन्वयवादी, तार्किक | बुद्धिजीवी किंतु भविष्योन्मुख, समाज सुधारक, आलोचक, व्यंग्यकार, हास्य कवि, विपक्षी वकील, न्यायाधीश, दार्शनिक |
| 6. | शुभचिंतक, सलाहकार, चिकित्सक, नर्स, पादरी, शिक्षक, सिखाने में रुचि | क्रांतिकारी, प्रगतिशील, मौलिकता में रुचि, आत्म विश्वासी, परिवर्तन–पसंद |
| 7. | सिद्धांतवादी, कलाकार, परंपरा–पोषक, यशस्वी होने में रस, धर्मगुरु, कथा–वाचक, अतीत का गुणगान | वैज्ञानिक, आदर्शवादी, नवीनता में रुचि, अभिव्यक्ति में कुशल, बदनामी से निडर, सुंदर भविष्य का सपना |

अतः सम्यक स्मृति से, सम्यक ध्यान से, होश रखकर जीएं। स्मरणपूर्वक जीएं। मैं क्या कर रहा हूं, इसे देखते, जानते हुए करें। क्रोध उठे तो क्रोध के प्रति भी अपने होश को सावधानी से देखते रहें कि यह क्रोध उठा, यह क्रोध मुझे पकड़ रहा है, अब यह क्रोध मुझसे कह रहा है, मार दो इस आदमी के सिर में डंडा; इस सबको देखते रहो।

और तुम चकित होगे कि अगर तुम देखने में थोड़े सावधान हो जाओ तो जो व्यर्थ है, वह अपने आप होना बंद हो जाएगा, और जो सार्थक है, वही होगा। धीरे–धीरे यह स्मृति तुम्हारे चौबीस घंटे पर फैल जाएगी। उठते–बैठते तुम जागे–जागे चलोगे। और एक ऐसी घड़ी आती है कि रात सोए भी रहोगे तब भी तुम्हारे भीतर जागरण की धारा बहती रहेगी। एक सूत्र शुभ्र ज्योति की भांति तुम्हारे भीतर जागा रहेगा।

वही तो गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि जब सब सो जाते हैं तब भी योगी जागता है–'या निशा सर्वभूतानाम तस्याम जागृति संयमी।' जागा रहता, इसका मतलब यह नहीं कि संयमी सोता ही नहीं, चलता कमरे में, बैठा रहता, अनिद्रा का बीमार रहता, ऐसा मतलब नहीं है। इसका मतलब इतना है कि नींद शरीर पर होती है, भीतर चैतन्य का दीया जलता रहता है।

सम्यक स्मृति का अर्थ है, जब चौबीस घंटे पर तुम्हारा ध्यान फैल जाए, बोध फैल जाए, तब तुम्हारी परिधि में जागरूकता आ गयी।

# क्रोध के सूक्ष्म रूप

## प्रश्न–हिंसा के प्रच्छन्न रूप कौन से हैं? क्रोध के सूक्ष्म रूपों से कैसे बचूं?

उत्तर–अहंकार का रस लड़ाई झगड़े में होता है। दो आदमी सड़क पर लड़ रहे हों, तो आस–पास लोगों की भीड़ जमा हो जाती है। लोग सुलझाने की कोशिश करेंगे, बचाने की कोशिश करेंगे। उनको पकड़–पकड़ के जितना खींचेंगे, उतना वे और भड़क उठेंगे। जितनी बड़ी भीड़ जमा हो जायेगी, उतना ही अहंकार दांव पर लग जायेगा। अब सिद्ध करके बता देंगे कि दोनों में से कौन ज्यादा ताकतवर है? भीड़ का मनोरंजन हो

जाएगा। मारपीट देखकर लोगों को राहत मिलेगी। फिल्मों में देखें तो हिंसा की कहानी। टी.वी. सीरियल देखें, तो षड्यंत्र और हिंसा की कहानी। हमारा पूरा इतिहास हिंसा की दुखद कथा है। मनुष्य में जरूर हिंसा के प्रति कुछ छुपा हुआ रस है।

सभ्य आदमी ने खेल का ईजाद किया। खेल परोक्ष रूप से हिंसा है। दूसरों को हराने का, दूसरों को पटकने का, जीतने का, अपना झंडा फहराने का, हिंसा का सुसंस्कृत व सूक्ष्म रूप है। इसलिए खेलों में जो इतना रस है, स्पोर्ट्स में, वह भी हिंसा का रस है। अमेरिका के मनोवैज्ञानिकों ने तो विश्लेषण करके पाया कि जब भी कहीं मुक्केबाजी का खेल चलता है, तो आसपास के क्षेत्र में दूर–दूर तक 25 प्रतिशत से लेकर 35 प्रतिशत तक अपराध की दरों में वृद्धि हो जाती है। अब यह एक जाना–माना तथ्य है, मनोवैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो चुका है कि जब भी कहीं हिंसा होती है, खेल में ही सही, उस हिंसा का व्यापक प्रभाव पड़ता है। सब लोग हिंसा में उत्सुक हो जाते हैं और फिर कहीं न कहीं वे हिंसा कर बैठते हैं। हमारे जो खेल हैं, वे हिंसा के ही छोटे–मोटे सभ्य दिखने वाले रूप हैं।

क्रोध के चार तल हैं। सबसे भीतरी तल है, भाव का तल। उसके बाहर है विचार का तल। फिर है वाणी का तल और सबसे बाहर परिधि पर है कर्म का तल। ये चार तल हैं। जब हिंसा के रूप में हम कोई कृत्य करते हैं, तो क्रोध कर्म बन गया। अब लौटना बहुत मुश्किल है। बंदूक से गोली निकल चुकी है। आपने बटन दबा दिया। गोली निकल गई। अब गोली लौटायी नहीं जा सकती।

कर्म में आने से पहले गुस्सा बोली में, वाणी में आता है। वाणी के प्रति सजग हों, और रुक जायें, तो शुभ। उससे भी ज्यादा शुभ है कि जब आपके विचार के तल पर क्रोध आया है, अहंकार ने पकड़ा है, उस समय सजग हो जायें। अभी आपने कुछ कहा नहीं है, कुछ किया नहीं है। सिर्फ आप सोच रहे हैं कि क्या करने वाले हैं। विचार हमारी अव्यक्त वाणी हैं। यदि विचारों में रुक जायें, तो अतिशुभ। उससे भी ज्यादा सुंदर जब क्रोध की सिर्फ चिंगारी भीतर जली है, अभी लपटें भी पैदा नहीं हुई, अभी धुआं भी बाहर नहीं आया। सिर्फ छोटी सी चिंगारी है। हृदय के तल पर, भाव के तल पर जन्मी है। अभी विचार का रूप भी उसने नहीं लिया है। यदि उसी समय सजग हो जायें, सम्यक स्मृति से भर जायें, तो क्रोध वहीं से विदा हो जाये। जो व्यक्ति इस गहन तल पर जागरूक हो जाता है, उसके जीवन से क्रोध सदा–सदा के लिये विदा हो जाता है। यदि सजगता इतनी सूक्ष्म हो जाए तो व्यक्ति के जीवन में क्रांति घटित हो सकती है।

# अहंकार का जीवन दुख है

बुद्ध कहते हैं : जन्म दुख है,
मरण दुख है, जीवन दुख है।
मैं उनसे राजी भी, राजी नहीं भी।
एक अर्थ में राजी, एक अर्थ में राजी नहीं।
अंहकार का जन्म दुख है,
अहंकार का मरण दुख है,
अहंकार का जीवन दुख है।
इस अर्थ में मैं राजी।
लेकिन आत्मा का जीवन आनंद है।
आत्मा का जन्म आनंद है,
आत्मा की मृत्यु आनंद है।
क्योंकि आत्मा का जन्म होता ही नहीं,
आत्मा जन्म के पहले है।
आत्मा का जीवन आनंद है,
क्योंकि आत्मा केवल साक्षी है, भोक्ता नहीं।
और आत्मा की मृत्यु भी आनंद है,
क्योंकि आत्मा की कोई मृत्यु होती ही नहीं,
आत्मा अमृत है।
बुद्ध ने अहंकार के आधार पर कहा है
कि जीवन दुख है, जन्म दुख है, मरण दुख है।
–ओशो, अमृत कण

# सम्यक कर्म,
# सजृन, उत्सव

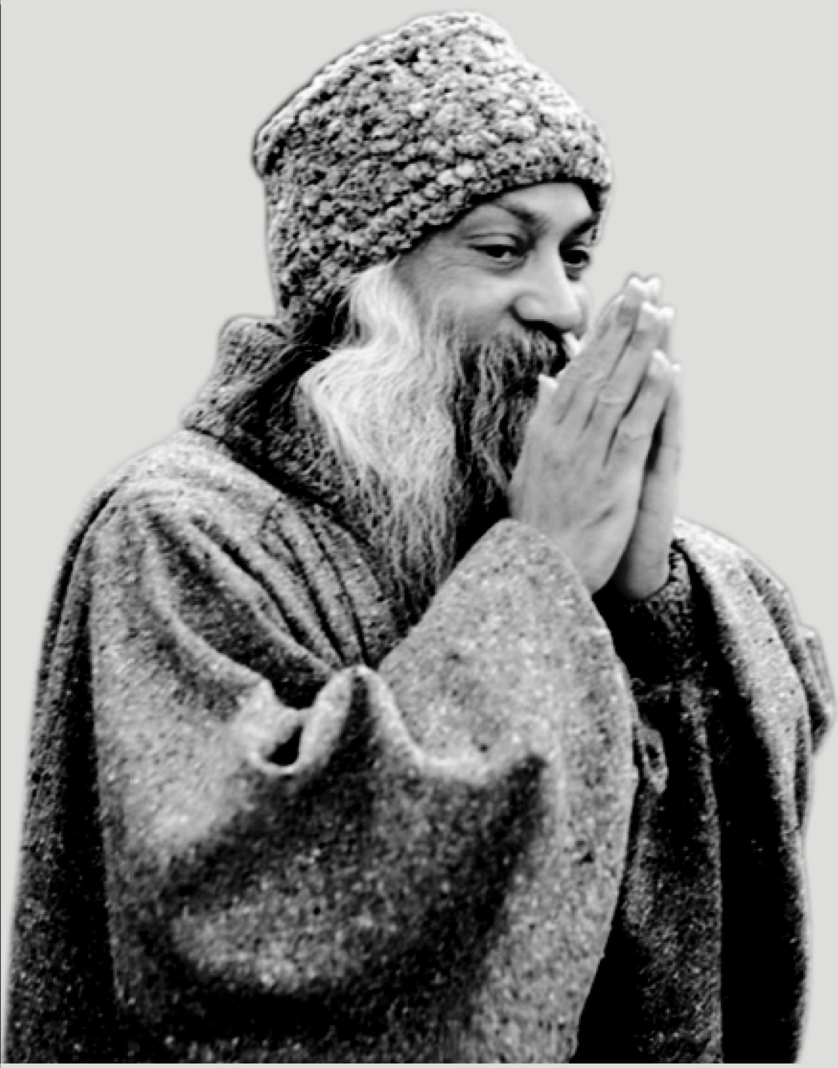

- सम्यक कर्म, सज़ृन, उत्सव
- मंगल भावना का प्रभाव
- चार प्रकार की कर्मशैलियां
- कर्म, सृजन और अकर्म
- सम्यक कर्म के लक्षण
- अकर्ताभाव और कर्म
- ध्यान-समाधि कर्म नहीं
- स्वयं की जिम्मेवारी पहचानो

# सम्यक कर्म, सजृन, उत्सव

## प्रश्नकर्ता– सहानुभूति और करुणा से जन्मे कर्मों में क्या भेद है?

ये दो शब्द सहानुभूति और करुणा सुनने में एक जैसे लगते हैं, किन्तु दोनों में काफी भेद है। सहानुभूति अहंकार का ही एक ढंग है, जबकि करुणा अहंकार–रिक्त अवस्था का नाम है। सहानुभूति में हम दूसरे के लिए महसूस करते हैं या कम से कम महसूस करने का दावा करते हैं। सहानुभूति दिखाते समय कहीं न कहीं हमारे भीतर एक अहंकार तृप्त हो रहा होता है कि दूसरा व्यक्ति दयनीय दशा में है और मैं दया दिखाने की हालत में हूं, मैं बेहतर स्थिति में हूं। इसलिए आप पायेंगे कि सहानुभूति करने वाला व्यक्ति अक्सर अहंकार से ग्रस्त होता है। जबकि करुणा में अहंकार नहीं है, दूसरे की तकलीफ का ध्यान है। हां, दूसरे के दुख में दुखी नहीं हैं।

इस भेद को समझना। सहानुभूति वाला व्यक्ति यह दिखाना चाहता है कि तुम्हारी तकलीफ में मुझे बहुत तकलीफ हो रही है, मैं तुम्हारे दुख में दुखी हूं। जबकि करुणा करने वाला व्यक्ति दुखी नहीं होता। हां, दूसरे को दुख के गड्ढे से उबारने की कोशिश वह जरूर करता है, लेकिन उसकी पीड़ा से पीड़ित नहीं होता। करुणावान व्यक्ति किसी की कुछ मदद कर सके तो जरूर करता है, प्रयास करता है लेकिन कोई फल की आकांक्षा नहीं होती। धन्यवाद पाने का भाव भी उसके मन में नहीं होता। सहानुभूति दिखाने वाला व्यक्ति अपने आप को श्रेष्ठतर स्थिति में समझता है, अहंकार से ग्रस्त होता है, धन्यवाद पाने के लिए करता है, कभी यश कमाने के लिए करता है। उसकी सेवा भी एक प्रकार का व्यवसाय है, उसके बदले में वह कुछ चाहता है, उसकी सेवा, उसकी सहानुभूति भी उद्देश्यपूर्ण है। करुणा से भरा व्यक्ति कुछ चाहता नहीं। उससे सहज रूप से जो हो जाए, हो जाए। उसके बदले में कुछ पाने की आकांक्षा उसकी नहीं है।

मैंने सुना है एक तिब्बती बौद्ध भिक्षु के बारे में। भीख मांगता था। उसका इरादा था भगवान बुद्ध के वचनों का एक संग्रह बिल्कुल सरल भाषा में वह प्रकाशित करवाये ताकि जन सामान्य भी उसको पढ़ सके और लाभ उठा सके। वह लोगों से यह कह कर भी मांगता था कि मैं एक किताब छपवाना चाहता हूं उसके लिए धन एकत्रित कर रहा हूं। करुणा के ऊपर दिये गये गौतम बुद्ध के वचन संग्रहित करना चाहता हूं। लोग उसे दान देते थे। दो साल बाद जाकर इतना पैसा उसके पास हो गया कि किताब छपवा सके। लेकिन उसी साल देश में सूखा व अकाल पड़ गया, लोग भूखे मर रहे थे। उसने

जितना धन इकट्ठा किया था... यद्यपि ज्यादा बड़ी रकम तो न थी, लेकिन जो कुछ भी उसके पास था उसने सब गरीबों में बांट दिया। कुछ लोग भूख से न मर

पायें... यह ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया।

उसने फिर भीख मांगनी शुरु कर दी। फिर अगले तीन–चार साल बाद वह किताब छपवाने लायक कुछ धन संग्रह कर पाया; लेकिन इस बार कोई महामारी फैल गयी। बहुत लोग बीमारी से मर रहे थे, लोगों के पास इलाज के पैसे नहीं थे। उसने अपनी सारी राशि बीमार लोगों में बांट दी ताकि वे इलाज करवा सकें। फिर उसने तीसरी बार भी मांगना शुरु कर दिया किताब छपवाने के लिए। पांच साल बाद उसने किताब छपवाई–करुणा के ऊपर गौतम बुद्ध के उपदेशों का संग्रह और भीतर उसने लिखा कि यह करुणा का तीसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। लोगों ने उससे पूछा कि बाकी के दो संस्करण तो कभी देखे नहीं, पहली बार किताब छप रही है। उसने कहा पहले दो संस्करण किताब रूप में न थे और वही वास्तविक संस्करण थे। यह तीसरा वाला उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, वे दो ज्यादा महत्त्वपूर्ण थे, लेकिन वे किताब रूप में नहीं हैं। उन्हें तुम पहचान न सकोगे, उन्हें जाना नहीं जा सकता। इसलिए इसमें लिखा है कि यह थर्ड एडीशन है, करुणा का तीसरा संस्करण है।

तो सहानुभूति और करुणा में भेद है। करुणा में व्यक्ति दुखी नहीं होता यद्यपि दूसरों को दुख से उबारने की कोशिश करता है। सहानुभूति में आदमी दिखाना चाहता है कि मैं तुम्हारे दुख में बहुत दुखी हूं। लेकिन भीतर कहीं उसके एक प्रसन्नता छुपी होती है। वह दया करने की हालत में है और दूसरा व्यक्ति बेचारा दयनीय स्थिति में है। दोनों से उत्पन्न कर्मों में भेद हो जाता है और इसलिए इनके परिणामों में भी भेद हो जाता है।

मैंने सुना है भारत से जब बोधिधर्म चीन गया तो वहां के सम्राट ने उससे पूछा कि मुझे कौन सा स्वर्ग मिलेगा मृत्यु के बाद। बोधिधर्म ने उपर से नीचे तक उसे निहारा। उसके रोएं–रोएं से अहंकार झलक रहा था। बोधिधर्म ने कहा–स्वर्ग? पागल हो गये हो! तुम तो भयानक नरक के हकदार हो। सम्राट आग–बबूला हो गया। उसने कहा–क्या बात करते हो। तुमसे पहले बहुत भिक्षु यहां आए हैं। मैंने कितनी धर्मशालाएं बनवाईं, सड़कों के किनारे कितने छायादार वृक्ष लगवाए, कितनी बुद्ध की प्रतिमाएं बनवाई, कितने मन्दिर बनवाये, भिक्षुओं के रहने के स्थान बनवाये, कितना धर्म के लिए मैंने दान दिया है; जानते हो? सारे भिक्षु कहते हैं कि मुझे सर्वोच्च स्वर्ग मिलेगा। बोधिधर्म ने कहा वे भिक्षु तुमसे झूठ बोले। उन्हें तुमसे कुछ लेना होगा, उनकी कोई कामना होगी। तुम उनके लिए मंदिर बनवाते हो, तुम उनके लिए भोजन का इंतजाम करते हो, धर्मशाला बनवाते हो इसलिए वे तुम्हारी तारीफ करते हैं। तुम्हारे धन पर उनकी नजर है और तुम्हारी नजर स्वर्ग पर है। तुम अपना धन खर्च करके स्वर्ग खरीदना चाहते हो।

मैं तुमसे कहना चाहता हूं आज तक तुमने जो कुछ भी किया है वह करुणा से नहीं किया, तुमने अपने अहंकार की सजावट के लिए किया है। इसका परिणाम स्वर्ग नहीं, घोर नरक की यातना होगी। सम्राट बहुत नाराज हो गया। आया तो था स्वागत करने बोधिधर्म का, बिना स्वागत किये ही लौट गया। बोधिधर्म ने फिर चीन में प्रवेश नहीं किया, वह वहीं सीमांत पर ही रुक गया। उसने कहा जिस देश का सम्राट इतना विवेकहीन है उस देश में प्रवेश करना ठीक नहीं। इस आदमी को इतनी-सी बात समझ में नहीं आ रही कि इसने जो कुछ भी किया है सब अहंकार के वशीभूत हो कर किया है, स्वर्ग पाने की वासना से किया है; यह पुण्य नहीं, सरासर पाप है।

तो ऊपरी कर्म को देखकर तय न होगा, भीतर से देखना होगा कि असली चाहत क्या है, भीतर का इरादा क्या है? सम्यक कर्म की पहचान है कि वह सत्-चित्-आनंद से उत्पन्न होता है। प्रामाणिकता, जागरूकता व प्रफुल्लता से जन्मता है।

# मंगल भावना का प्रभाव

## प्रश्न– किसी की मंगलकामना करने से वास्तव में उसका मंगल हो जाता है?

उसका होता है कि नहीं होता, इसकी चिंता न करो; कम से कम तुम्हारा मंगल तो जरूर हो जाता है–तुम्हारे भीतर से अमंगल का भाव गिर गया, यही क्या कम है। तुम्हारे भीतर से क्रोध, द्वेष और ईर्ष्या गिर गई, तुम दूसरे के लिये शुभकामना कर रहे हो। तुम्हारे भीतर के अशुभ-भाव नष्ट हुए, तुम्हारा तो शुभ हो ही गया। तुम दूसरे के कल्याण का भाव किए, कम से कम तुम्हारा तो कल्याण हो ही गया। तुम्हारे भीतर से अकल्याणकारी भाव समाप्त हुए, दूसरों को नुकसान पहुंचाने वाली अशुभ वृत्तियां समाप्त हुईं, यही क्या पर्याप्त नहीं है! और मैं तुमसे कहता हूं जिस व्यक्ति के भीतर नकारात्मक भाव गिर गये, निश्चित रूप से उसके माध्यम से जगत का भी भला होगा। तुम मंगल भाव से भरो, निश्चित रूप से मंगल होता है–तुम्हारा एवं दूसरों का भी। हम सब आपस में जुड़े हुए हैं और एक दूसरे की भावनाओं से प्रभावित होते हैं।

इसको उल्टी स्थिति से समझने की कोशिश करो–जब तुम क्रोध और घृणा से भरते हो तब क्या दूसरों का नुकसान नहीं होता? तुम भलीभांति जानते हो कि निश्चित रूप से होता है। तो फिर इसका विपरीत सत्य क्यों नहीं होगा? जब तुम किसी का

अमंगल करना चाहते हो तो उसका अमंगल होता है कि नहीं होता है, तुम्हारा अमंगल तो हो ही जाता है–तुम नकारात्मक विचारों से, निषेधात्मक भावनाओं से भर गये, तुम्हारी चेतना अशुद्ध हो गयी। तुम व्यथा में, पीड़ा में, जलन में, ईर्ष्या में जीयोगे। तुम मन ही मन षड्यंत्र रचते रहोगे, तुम अपराधी प्रवृत्ति के हो गये। याद रखना आज जो तुम सोच रहे हो, कल या परसों या और आगे... किसी न किसी दिन वह यथार्थ में हो ही जायेगा। यह विचार या भाव ज्यादा देर विचार या भाव नहीं रहेंगे, किसी न किसी दिन कार्य में परिणित होंगे।

रूस के प्रसिद्ध लेखक 'दोस्तोवस्की' की एक कहानी आपने शायद पढ़ी होगी, विश्वप्रसिद्ध किताब है–'क्राइम ऐण्ड पनिशमेंट'। उसमें एक विद्यार्थी की कहानी है जो हॉस्टल में रहता है। हॉस्टल के सामने ही एक अमीर बुढ़िया रहती है। उसके परिवार में कोई और नहीं है, वह बुढ़िया बिल्कुल अकेली है। बहुत उसकी उम्र हो गयी। वह गांव में लोगों को उधार पैसे देती है, बहुत ऊंचे ब्याज की दर पर। सूद भी नहीं चुका पाते लोग, मूलधन चुकाने की तो बात दूर। पीढ़ी दर पीढ़ी ब्याज बढ़ता जा रहा है लोगों पर। वह सारे गांव के लोगों का शोषण करती है। एक दिन इस विद्यार्थी के मन में ख्याल आता है कि इतने लोग दिन भर इससे उधार पैसा लेने आते हैं, कोई ब्याज चुकाने आते हैं; यह बुढ़िया इतनी दीर्घायु हो गयी, सबका खून चूस रही है, इसको मृत्यु क्यों नहीं आती? कितने लोग कितनी कम उम्र में मर जाते हैं। यह कब मरेगी? 95 साल से ऊपर की हो रही है।

... हमको लगेगा कि यह विचार कोई इतना बुरा तो नहीं। बेचारा ठीक ही तो सोच रहा है। लेकिन याद रखना अशुभ विचार हमारे भीतर शुभ का वेष धारण करके आते हैं। अमंगल–भावना हमारे भीतर बीज रूप में इसी तरह से आती हैं, किसी अच्छे आदर्श की आड़ लेकर आती है। वह युवक बार–बार इस बात को सोचने लगा कि यह बुढ़िया मरती क्यों नहीं? एक दिन उसके मन में ख्याल आया कि इतने लोग आते हैं कोई इसकी गर्दन क्यों नहीं दबा देता? झंझट खत्म हो। सबको इसने परेशान कर रखा है। पूरे गांव का शोषण कर रही है। ... अब देखना, विचार और आगे बढ़ा। पहले सोचता था कि ईश्वर उसको समाप्त कर दे, अब सोचने लगा कि कोई आदमी इसको समाप्त कर दे। एक महीने–डेढ़ महीने तक एक यही विचार उसके मन में कई बार आया। फिर एक दिन ऐसा हुआ कि पोस्ट ऑफिस की हड़ताल थी और उसकी फीस के लिये उसके पिता जो मनिऑर्डर भेजते थे वह आ नहीं पाया। उसको पैसे की जरूरत पड़ी, कॉलेज की फीस भरनी जरूरी थी, परीक्षा का समय आ रहा था। लेकिन हॉस्टल में जो अन्य विद्यार्थी थे, किसी का मनिआर्डर नहीं आया था, पोस्ट ऑफिस की हड़ताल की वजह से। बड़ी मुश्किल हो गयी, किसी मित्र से उधार भी नहीं ले सकते।

अंत में उसको ख्याल आया कि उसी बुढ़िया से जाकर उधार ले। गया उससे मांगने के लिये। शाम का समय था, धुंधलका हो चुका था। उसने कहा कि इतने पैसे मुझे चाहिये, मनिऑर्डर आते ही लौटा दूंगा। बुढ़िया ने कहा कि इतना ब्याज इस पर लगेगा। उसने कहा–ठीक। बुढ़िया ने पूछा– गिरवी क्या रखोगे? उसने कहा मेरे हाथ की घड़ी है, इस कलाई घड़ी को रख लो। उस घड़ी की क्या कीमत आंकी जाये, उजाले में यह देखने के लिये बुढ़िया खिड़की के पास गई। भीतर तो अंधेरा था। बुढ़िया महाकंजूस थी, दीपक भी नहीं जलाती थी। वह खिड़की के बाहर झांककर घड़ी को देखने लगी। बाहर थोड़ी सी रोशनी थी। इस घड़ी की कीमत का अंदाज लगाने लगी कि इसको कितने पैसे उधार दिये जायें? तभी अचानक उस युवक ने बाहर झुकी हुई बुढ़िया के दोनों पैर उठाये, बुढ़िया ऊपर की मंजिल से गिरी नीचे और क्षण भर में समाप्त हो गयी। वह युवक भागा। हॉस्टल के कमरे में पहुंचा और कमरा बंद करके भीतर पसीना–पसीना हो गया... थर्राता हुआ, घबराया हुआ, हृदय धक–धक कर रहा। वह सोचने लगा कि मैंने उसकी हत्या कैसे कर दी, कहीं किसी को पता न चल जाए।

सुबह हंगामा खड़ा हुआ। लोगों ने देखा बुढ़िया की लाश पड़ी हुई है। दूसरे दिन सुबह अखबारों में न्यूज़ छपी। पुलिस वाले जांच करने आए। वह लड़का घबराया हुआ जीने लगा कि कहीं मैं पकड़ा न जाऊं। अब वह डरा–डरा रहने लगा।

एक दिन विचार शुरु हुआ था कि बुढ़िया मर क्यों नहीं जाती। अन्ततः वह कार्य में परिणत हो गया। अब दूसरा विचार इसको पकड़ा कि पुलिस वाले कहीं मुझे खोज न लें कि मैंने हत्या की है। फिर इस विचार को लेकर वह चलता है। जिसके कारण वह इतना घबराया हुआ रहने लगा कि एक दिन हॉस्टल में अन्य लड़के बातचीत कर रहे थे कि बुढ़िया कैसे मर गई, वह बीच में बोल पड़ा कि मैंने कुछ नहीं किया। लोगों को शक हो गया कि यह कहने की क्या जरूरत कि तुमने कुछ नहीं किया, तुमसे पूछ कौन रहा है? तुम इसमें अचानक बीच में क्यों बोल उठे? फिर उसका यह विचार सघन होता जाता है कि मैं पकड़ा जाऊंगा और एक दिन वह पकड़ा जाता है।

दोस्तोवस्की की इस कहानी के उदाहरण द्वारा मैं आपसे कहना चाहता हूं कि आज जो भाव है कल वह विचार बन जायेगा। कल जो विचार है परसों वह वाणी बन जायेगा। जो वाणी में आ गया शीघ्र ही वह कर्म बन जायेगा। सावधान! अपने भाव को ही बदल लेना। अगर तुम चाहते हो जीवन में सम्यक कर्म हो तो तुम्हारी वाणी सम्यक होनी चाहिये, तुम्हारे विचार सम्यक होने चाहिये, तुम्हारे भाव सम्यक होने चाहिये, सूक्ष्म भावों से स्थूल कर्मों की शुरुआत होती है, वहां से चीजों के प्रति सचेत होकर उन्हें बदलना शुरु करो।

# मंगल भावना का प्रभाव

## प्रश्न– किसी की मंगलकामना करने से वास्तव में उसका मंगल हो जाता है?

उसका होता है कि नहीं होता, इसकी चिंता न करो; कम से कम तुम्हारा मंगल तो जरूर हो जाता है–तुम्हारे भीतर से अमंगल का भाव गिर गया, यही क्या कम है। तुम्हारे भीतर से क्रोध, द्वेष और ईर्ष्या गिर गई, तुम दूसरे के लिये शुभकामना कर रहे हो। तुम्हारे भीतर के अशुभ–भाव नष्ट हुए, तुम्हारा तो शुभ हो ही गया। तुम दूसरे के कल्याण का भाव किए, कम से कम तुम्हारा तो कल्याण हो ही गया। तुम्हारे भीतर से अकल्याणकारी भाव समाप्त हुए, दूसरों को नुकसान पहुंचाने वाली अशुभ वृत्तियां समाप्त हुईं, यही क्या पर्याप्त नहीं है! और मैं तुमसे कहता हूं जिस व्यक्ति के भीतर नकारात्मक भाव गिर गये, निश्चित रूप से उसके माध्यम से जगत का भी भला होगा। तुम मंगल भाव से भरो, निश्चित रूप से मंगल होता है–तुम्हारा एवं दूसरों का भी। हम सब आपस में जुड़े हुए हैं और एक दूसरे की भावनाओं से प्रभावित होते हैं।

इसको उल्टी स्थिति से समझने की कोशिश करो–जब तुम क्रोध और घृणा से भरते हो तब क्या दूसरों का नुकसान नहीं होता? तुम भलीभांति जानते हो कि निश्चित रूप से होता है। तो फिर इसका विपरीत सत्य क्यों नहीं होगा? जब तुम किसी का अमंगल करना चाहते हो तो उसका अमंगल होता है कि नहीं होता है, तुम्हारा अमंगल तो हो ही जाता है–तुम नकारात्मक विचारों से, निषेधात्मक भावनाओं से भर गये, तुम्हारी चेतना अशुद्ध हो गयी। तुम व्यथा में, पीड़ा में, जलन में, ईर्ष्या में जीयोगे। तुम मन ही मन षड्यंत्र रचते रहोगे, तुम अपराधी प्रवृत्ति के हो गये। याद रखना आज जो तुम सोच रहे हो, कल या परसों या और आगे... किसी न किसी दिन वह यथार्थ में हो ही जायेगा। यह विचार या भाव ज्यादा देर विचार या भाव नहीं रहेंगे, किसी न किसी दिन कार्य में परिणित होंगे।

रूस के प्रसिद्ध लेखक 'दोस्तोवस्की' की एक कहानी आपने शायद पढ़ी होगी, विश्वप्रसिद्ध किताब है–'क्राइम ऐण्ड पनिशमेंट'। उसमें एक विद्यार्थी की कहानी है जो हॉस्टल में रहता है। हॉस्टल के सामने ही एक अमीर बुढ़िया रहती है। उसके परिवार में कोई और नहीं है, वह बुढ़िया बिल्कुल अकेली है। बहुत उसकी उम्र हो गयी। वह गांव में लोगों को उधार पैसे देती है, बहुत ऊंचे ब्याज की दर पर। सूद भी नहीं चुका पाते लोग, मूलधन चुकाने की तो बात दूर। पीढ़ी दर पीढ़ी ब्याज बढ़ता जा रहा है लोगों पर। वह

सारे गांव के लोगों का शोषण करती है। एक दिन इस विद्यार्थी के मन में ख्याल आता है कि इतने लोग दिन भर इससे उधार पैसा लेने आते हैं, कोई ब्याज चुकाने आते हैं; यह बुढ़िया इतनी दीर्घायु हो गयी, सबका खून चूस रही है, इसको मृत्यु क्यों नहीं आती? कितने लोग कितनी कम उम्र में मर जाते हैं। यह कब मरेगी? 95 साल से ऊपर की हो रही है।

... हमको लगेगा कि यह विचार कोई इतना बुरा तो नहीं। बेचारा ठीक ही तो सोच रहा है। लेकिन याद रखना अशुभ विचार हमारे भीतर शुभ का वेष धारण करके आते हैं। अमंगल–भावना हमारे भीतर बीज रूप में इसी तरह से आती हैं, किसी अच्छे आदर्श की आड़ लेकर आती है। वह युवक बार–बार इस बात को सोचने लगा कि यह बुढ़िया मरती क्यों नहीं? एक दिन उसके मन में ख्याल आया कि इतने लोग आते हैं कोई इसकी गर्दन क्यों नहीं दबा देता? झंझट खत्म हो। सबको इसने परेशान कर रखा है। पूरे गांव का शोषण कर रही है। ... अब देखना, विचार और आगे बढ़ा। पहले सोचता था कि ईश्वर उसको समाप्त कर दे, अब सोचने लगा कि कोई आदमी इसको समाप्त कर दे। एक महीने–डेढ़ महीने तक एक यही विचार उसके मन में कई बार आया। फिर एक दिन ऐसा हुआ कि पोस्ट ऑफिस की हड़ताल थी और उसकी फीस के लिये उसके पिता जो मनिऑर्डर भेजते थे वह आ नहीं पाया। उसको पैसे की जरूरत पड़ी, कॉलेज की फीस भरनी जरूरी थी, परीक्षा का समय आ रहा था। लेकिन हॉस्टल में जो अन्य विद्यार्थी थे, किसी का मनिआर्डर नहीं आया था, पोस्ट ऑफिस की हड़ताल की वजह से। बड़ी मुश्किल हो गयी, किसी मित्र से उधार भी नहीं ले सकते।

अंत में उसको ख्याल आया कि उसी बुढ़िया से जाकर उधार ले। गया उससे मांगने के लिये। शाम का समय था, धुंधलका हो चुका था। उसने कहा कि इतने पैसे मुझे चाहिये, मनिऑर्डर आते ही लौटा दूंगा। बुढ़िया ने कहा कि इतना ब्याज इस पर लगेगा। उसने कहा–ठीक। बुढ़िया ने पूछा– गिरवी क्या रखोगे? उसने कहा मेरे हाथ की घड़ी है, इस कलाई घड़ी को रख लो। उस घड़ी की क्या कीमत आंकी जाये, उजाले में यह देखने के लिये बुढ़िया खिड़की के पास गई। भीतर तो अंधेरा था। बुढ़िया महाकंजूस थी, दीपक भी नहीं जलाती थी। वह खिड़की के बाहर झांककर घड़ी को देखने लगी। बाहर थोड़ी सी रोशनी थी। इस घड़ी की कीमत का अंदाज लगाने लगी कि इसको कितने पैसे उधार दिये जायें? तभी अचानक उस युवक ने बाहर झुकी हुई बुढ़िया के दोनों पैर उठाये, बुढ़िया ऊपर की मंजिल से गिरी नीचे और क्षण भर में समाप्त हो गयी। वह युवक भागा। हॉस्टल के कमरे में पहुंचा और कमरा बंद करके भीतर पसीना–पसीना हो गया... थर्राता हुआ, घबराया हुआ, हृदय धक–धक कर

रहा। वह सोचने लगा कि मैंने उसकी हत्या कैसे कर दी, कहीं किसी को पता न चल जाए।

सुबह हंगामा खड़ा हुआ। लोगों ने देखा बुढ़िया की लाश पड़ी हुई है। दूसरे दिन सुबह अखबारों में न्यूज़ छपी। पुलिस वाले जांच करने आए। वह लड़का घबराया हुआ जीने लगा कि कहीं मैं पकड़ा न जाऊं। अब वह डरा-डरा रहने लगा।

एक दिन विचार शुरु हुआ था कि बुढ़िया मर क्यों नहीं जाती। अन्ततः वह कार्य में परिणत हो गया। अब दूसरा विचार इसको पकड़ा कि पुलिस वाले कहीं मुझे खोज न लें कि मैंने हत्या की है। फिर इस विचार को लेकर वह चलता है। जिसके कारण वह इतना घबराया हुआ रहने लगा कि एक दिन हॉस्टल में अन्य लड़के बातचीत कर रहे थे कि बुढ़िया कैसे मर गई, वह बीच में बोल पड़ा कि मैंने कुछ नहीं किया। लोगों को शक हो गया कि यह कहने की क्या जरूरत कि तुमने कुछ नहीं किया, तुमसे पूछ कौन रहा है? तुम इसमें अचानक बीच में क्यों बोल उठे? फिर उसका यह विचार सघन होता जाता है कि मैं पकड़ा जाऊंगा और एक दिन वह पकड़ा जाता है।

दोस्तोवस्की की इस कहानी के उदाहरण द्वारा मैं आपसे कहना चाहता हूं कि आज जो भाव है कल वह विचार बन जायेगा। कल जो विचार है परसों वह वाणी बन जायेगा। जो वाणी में आ गया शीघ्र ही वह कर्म बन जायेगा। सावधान! अपने भाव को ही बदल लेना। अगर तुम चाहते हो जीवन में सम्यक कर्म हो तो तुम्हारी वाणी सम्यक होनी चाहिये, तुम्हारे विचार सम्यक होने चाहिये, तुम्हारे भाव सम्यक होने चाहिये, सूक्ष्म भावों से स्थूल कर्मों की शुरुआत होती है, वहां से चीजों के प्रति सचेत होकर उन्हें बदलना शुरु करो।

## चार प्रकार की कर्मशैलियां

### प्रश्न– ड्यूटी, वर्क, क्रिएशन, प्ले; इन चार प्रकार के कर्मों में क्या भेद हैं?

गंभीरता की 'डिग्री' अलग-अलग है। जिसे तुम 'ड्यूटी' कह रहे हो बड़ी 'सीरियस' बात है। जिसे तुम 'वर्क' या काम कह रहे हो उससे थोड़ी कम गंभीर। क्रिएशन और भी कम गंभीर और प्ले बिल्कुल ही गंभीरता-रहित। इन चारों में गंभीरता की मात्रा का भेद है। एक छोटी सी कहानी ओशो ने अपने प्रवचनों में कई बार कही है। मुझे बहुत प्रिय लगती है। शायद उससे तुम्हें बात समझ में आये। सुनो–

एक मंदिर का निर्माण हो रहा था। बहुत से मजदूर पत्थर तोड़ने का कार्य कर रहे थे। एक अजनबी व्यक्ति वहां से गुजरता है और एक मजदूर से पूछता है कि मेरे भाई, तुम क्या कर रहे हो? जेठ की तपती दोपहरी, माथे से चूता पसीना, थका हुआ वह आदमी... उसने गुस्से में अपना चेहरा ऊपर उठाया, लाल सुर्ख आखें उसकी... उसने कहा–दिखता नहीं, क्या अंधे हो! पत्थर तोड़ रहा हूँ, और क्या कर रहा हूं! अपनी 'ड्यूटी' निभा रहा हूं। मेरे ठेकेदार ने मुझे यही काम दिया है। मेरी किस्मत में यही पत्थर तोड़ना लिखा है। इसमें पूछने की क्या बात है। अंधे हो, दिखता नहीं है क्या?

निश्चित रूप से पत्थर तोड़ने वाला व्यक्ति तो क्रोधित होगा ही होगा।

वह अजनबी आगे बढ़ा, एक दूसरे मजदूर से उसने पूछा कि मेरे भाई, तुम क्या करते हो? दूसरा मजदूर क्रोध में तो नहीं था लेकिन उदास था। उसने कहा कि अपनी घर गृहस्थी का पालन–पोषण कर रहा हूं। काम कर रहा हूं, रोजी–रोटी कमा रहा हूं। निश्चित रूप से रोजी–रोटी कमाना बहुत सुखदायी चीज तो नहीं हो सकती। वह तो पशु भी करते हैं, पक्षी भी करते हैं, मछलियां भी करती हैं, पेड़–पौधे भी कर लेते हैं; अपने भोजन का इंतजाम तो सभी करते हैं। यह कोई बहुत सुखद बात तो नहीं हो सकती। वह मजदूर क्रोध में तो न था, लेकिन उदास था, दुःखी था।

वह अजनबी आगे बढ़ा, तीसरे मजदूर से पूछा कि मेरे भाई, तुम क्या करते हो? तीसरा मजदूर भजन गुनगुनाते हुए पत्थर तोड़ रहा था। उठ के खड़ा हो गया, उसने अजनबी को गले लगाया और कहा कि परमात्मा के मंदिर का सृजन कर रहा हूं। उसकी आखों में खुशी थी, उत्साह था, चेहरे पर चमक थी, उमंग थी। निश्चित रूप से परमात्मा के मंदिर का सृजन करना एक आनंददायी कृत्य हो सकता है।

पहला व्यक्ति क्रोध में है पत्थर तोड़ रहा है। दूसरा भी पत्थर तोड़ रहा है लेकिन उदास है। तीसरा व्यक्ति भी पत्थर तोड़ रहा है लेकिन आनंदित है, प्रफुल्लित है, फूल की तरह खिला हुआ है, सृजन के कार्य में संलग्न है। मैं एक और चौथी अवस्था का वर्णन करना चाहूंगा, जहां व्यक्ति 'प्लेफुल' है। सृजन में भी एक हल्की सी गंभीरता है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि इतना भी उद्देश्य मन में न हो कि परमात्मा के मंदिर का सृजन कर रहा हूं और व्यक्ति अपना कार्य करे। उसे मैं कहूंगा लीला, खेल, 'प्ले'। वह सर्वोत्कृष्ट अवस्था है। यद्यपि चारों ही कर्म हैं, और हो सकता है बाहर से देखने से बिल्कुल एक से लगें, लेकिन भीतर से भावदशा इनकी भिन्न–भिन्न है। खेल या लीला बिल्कुल गैर–गम्भीर हैं। और जिसे हम ड्यूटी या कर्तव्य कहते हैं वह महागम्भीर बात है।

मैं मध्य प्रदेश के अमलाई नामक एक छोटे से गांव में करीब 12 साल तक रहा। मेरे निवास स्थान से अस्पताल की दूरी कुल एक कि.मी. थी। मुझे पैदल घूमने का बहुत शौक था। सुबह शाम करीब 10 किलोमीटर पैदल घूमता था। लेकिन जब ड्यूटी करने के लिए अस्पताल जाता था तब मेरे पैरों में एक प्रकार की बोझिलता होती थी। एक दिन अचानक मुझे ख्याल आया, ओशो के प्रवचनों में यह मजदूरों वाली कहानी सुन कर, कि जब मुझे चलने में मजा आता है, तो क्या मैं आनन्दपूर्वक अस्पताल जा सकता हूं? आखिर सुबह भी तो मैं इसी सड़क पर घूमता हूं। मार्ग वही है, मेरे पैर वही हैं, चलने की प्रक्रिया वही है, लेकिन मेरे भीतर की भावदशा भिन्न है। जब मैं सुबह या शाम को टहलने निकलता हूं तो बड़ा आनन्दित होता हूं।

और अभी अस्पताल जा रहा हूं नौकरी करने के लिये, इसमें एक प्रकार की गंभीरता है, बोझिलता है। क्या मैं घूमने के भाव से कार्यस्थल तक जा सकता हूं? जिस दिन यह बात मेरे मन में अचानक 'क्लिक' हुई उस दिन से मेरे चलने का तरीका बदल गया। मेरा अस्पताल जाना भी ठीक वैसा ही हो गया जैसा कि मैं टहलने जाता था। और एक बार कुंजी हाथ में आ गई कि किसी भी काम के साथ हम अपने भीतर की भावदशा तो परिवर्तित कर ही सकते हैं... तब से जीवन के सारे कृत्य आनन्दपूर्ण हो गए। बाहर से देखने में अभी भी वैसे के वैसे हैं लेकिन भीतर से सारी बात बदल गयी। हमारे जीवन में माना कि बहुत से काम हैं जो हमें करने होंगे। लेकिन जब हम कहते हैं–करने होंगे, करने पड़ेंगे, तब उसमें एक गम्भीरता और उदासी झलकती है, मजबूरी और लाचारी झलकती है। एक बार यह कला हाथ आ जाये तब हम अपने सारे कामों को सृजनात्मक बना सकते हैं, लीलामय, खेलपूर्ण बना सकते हैं।

आप को याद होगा बचपन में आप खेलते होंगे। खेलने में कितना परिश्रम करते हैं बच्चे? शायद आप काम करने में भी इतना परिश्रम नहीं करते जितना खेलने में, फुटबाल या क्रिकेट या कोई अन्य खेल खेलने में करते हों। कितनी भागदौड़, कितना पसीना, लेकिन खेल के बाद आश्चर्य कि आप थकते नहीं, बल्कि और ऊर्जा से भर जाते हैं। कारण? उसको हमने खेल की भांति लिया है। यदि उतना ही मजबूरी में दौड़ना पड़े कि कोई आदमी आपके पीछे बंदूक लेकर खड़ा हो और कहे कि दौड़ो वर्ना गोली मार देंगे। वह दौड़ना और फुटबाल की गेंद के पीछे दौड़ना... दौड़ने की क्रिया तो वही की वही है लेकिन भीतर का भाव बदल गया। मैं आपसे कह रहा हूं कि अपने जीवन के सभी कर्मों को, आप चाहें तो सम्यक कर्म बना सकते हैं। उसमें लीला का भाव जोड़ दें, उसे खेल बना लें।

# कर्म, सृजन और अकर्म

## प्रश्नकर्ता–आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किये गये कर्म, सृजनात्मक कर्म और अकर्म में क्या भेद है?

सात प्रकार की हमारी आवश्यकताएं हैं, जीवन की जरूरतें हैं। पहली आवश्यकता, भूख–प्यास की तृप्ति–भोजन करना होगा, पानी पीना होगा, अपने शरीर के लिये इंतजाम करना होगा। सर्वाधिक गहरी जरूरत, जिसको हम कहेंगे 'फिज़ियोलॉजिकल नीड'–भोजन–पानी की जरूरत। उसके बाद आती है 'सेक्सुअल नीड'–काम–वासना की जरूरत। इसके बाद तीसरे चरण पर आती है सुरक्षा की जरूरत–'सेफ्टी ऐण्ड सिक्योरिटी नीड'। हमें मकान की जरूरत पड़ती है, धन चाहिए, सुरक्षा चाहिए। चौथी है प्रेम की जरूरत। हम चाहते हैं किसी से हमारा प्रेम का नाता हो, जिसे हम प्रेम कर सकें और वह हमें प्रेम कर सके–'लव नीड'। पांचवी जरूरत है 'बिलौंगिंगनेस नीड'–हम किसी समाज के हिस्से हों, कोई हमारा हो, हम किसी के हों। एक भींड़ के, एक संगठन के हम हिस्से होना चाहते हैं। हम देश के, समाज के, क्लब के, भांति–भांति की संस्थाओं के हिस्से होते हैं। हम अकेले नहीं होना चाहते, हम जुड़े हुए होना चाहते हैं। हम एक सामाजिक प्राणी हैं। वह भी मनुष्य की एक जरूरत है। उसके ऊपर छठवीं जरूरत है यश की आकांक्षा, 'एस्टीम नीड'–महत्त्वाकांक्षा। मैं कुछ हूं, लोग इसे जानें, मेरे महत्व को पहचानें। और इसके ऊपर सातवीं जरूरत है 'सेल्फ एक्चुलाइज़ेशन नीड'–स्व–यथार्थ बोध। वह जो बीज मैं लेकर आया हूं जन्म से, जब तक वह यथार्थ न बन जाए, मुझे तसल्ली और चैन न मिलेगा।

ये सात हमारी आवश्यकताएं हैं। इसके ऊपर एक और आठवीं, जिसका पश्चिम के मनोवैज्ञानिक मैस्लो ने वर्णन नहीं किया है, वह है मुमुक्षा–परम स्वतन्त्रता की इच्छा। यहां तक कि कामनाओं से भी, इच्छाओं से भी मुक्त हो जाने की इच्छा–मुमुक्षा–वह भी हमारे भीतर है।

हम चाहें तो इन आठ कामनाओं को तीन हिस्सों में बांट सकते हैं–पाशविक, मानवीय और दिव्य–एनीमल, ह्यूमन और डिवाइन। कुछ जरूरतें तो पशुओं की भी हैं। वे हमारी भी बुनियादी जरूरतें हैं। उसके बाद मानवीय जरूरतें शुरु होती हैं। अब कविता लिखनी है या 'पेन्टिंग' बनाना है, जिन्हें हम सृजन कह रहे हैं, वे मानवीय जरूरतें हैं। किसी पशु को जरूरत नहीं है कविता की, संगीत की, 'पेन्टिंग' की, नृत्य की। 'फिज़ियोलॉजिकल', 'सेक्सुअल', 'सेफ्टी ऐण्ड सिक्योरिटी', 'लव, बिलौंगिंगनेस' यह सब उनमें भी हैं।

चींटियों के भी अपने समाज होते हैं। मधुमक्खियों के संगठन होते हैं। दीमकों की बड़ी सुंदर सामाजिक व्यवस्था होती है। उनको भी सुरक्षा चाहिये, भोजन चाहिये, उनको भी कामवासना की तृप्ति चाहिये, प्रेम चाहिये। इसलिये ये पाशविक जरूरतें हैं। मानवीय जरूरतें मन से शुरु होती हैं। सुन्दर वस्त्र चाहिये–यह एक मानवीय जरूरत है, अच्छा मकान चाहिये–यह आदमी की जरूरत है, भोजन में स्वाद चाहिये–यह मानवीय जरूरत है। फिर सबसे ऊपर दिव्य या आध्यात्मिक जरूरतें हैं–ध्यान और समाधि, अद्वैत और मोक्ष।

तो पहली शरीर की, दूसरी मन की और तीसरी है–आत्मा की जरूरतें, आध्यात्मिक आवश्यकताएं–इनको पूरा करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। 'फिज़ियोलॉजिकल' व 'सेक्सुअल नीड्स' तो सभी पूरी करते हैं, पशु–पक्षी व कीड़े–मकोड़े भी पूरी करते हैं। मानवीय जरूरतें पूरी करने से सम्यक कर्म की शुरुआत होती है। कुछ सृजनात्मक बनो। जीवन में कुछ सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम उद्घाटित हो; उसकी कोशिश करो। वहां से सम्यक कर्म शुरु होता है। और आध्यात्मिक जरूरत–वह तो सभी मनुष्यों को महसूस ही नहीं होती; कुछ थोड़े से ही मनुष्यों को प्यास जगती है। परमात्मा की खोज, ध्यान और समाधि की तलाश, उस दिशा में लगना ही सम्यक कर्म है। अन्ततः वह प्यास जाकर अकर्म में परिवर्तित हो जाती है।

अकर्म का अर्थ है कि करने वाला परमात्मा है। कर्ता तो बस परमात्मा है हम केवल उसके हाथ की कठपुतली हैं। अगर तुम सम्यक कर्म करते चले गये, अपनी दिव्य जरूरतों को पूरा करने की दिशा में, एक दिन तुम पाओगे कि तुम अकर्ता भाव में पहुंच गये। वह इसका चरम शिखर है।

रैदास जिंदगी भर जूते बनाते रहे, कबीर जिंदगी भर जुलाहे का काम करते रहे, गोरा कुम्हार आजीवन घड़े बनाता रहा। लोगों ने बहुत कहा आप काम न करें, हम इतने सारे आपके शिष्य हैं, हम आपकी सारी जरूरतें पूरी कर सकते हैं। आप क्यों काम करते हैं? कबीर ने कहा कि यह मेरा सृजन है, यह मेरा आनंद हैं। परमात्मा मेरे माध्यम से इस रूप में बह रहा है। यह कपड़े मैं परमात्मा के लिये बना रहा हूं। शाम को बाजार में राम आयेंगे कपड़ा खरीदने। वे अपने ग्राहकों से कहते थे–'राम, बड़े प्रेम से चादर बुनी है, ले जाओ।' कबीर का कृत्य सृजनात्मक है, लीलामय है और सच पूछो तो न केवल सम्यक कर्म है बल्कि अकर्म भी है। सम्यक कर्म से चलो और अकर्म तक पहुंचो।

## सामान्य कर्म भी योग?

प्रश्नकर्ता–हम लोग अपने जीवन में जो सामान्य कर्म करते हैं। पुरुष रोजी–रोटी कमाते और महिलायें घर के काम–काज देखतीं; बच्चे पढ़ाई–लिखाई इत्यादि करते। क्या ये सभी कर्म भी योग बन सकते हैं? कोई सरल सी विधि बतायें।

निश्चित रूप से हम अपने जीवन के साधारण कार्यों में साक्षी भाव जोड़ दें, प्रेम का भाव जोड़ दें, आत्म–स्मरण जोड़ दें तो वह सम्यक कर्म हो जाता है। और जिन मित्रों को समाधि का ज्ञान हो गया, जिन्होंने परमात्मा को जान लिया वे अपने कार्यों में हरि–स्मरण जोड़ दें, प्रभु की याद जोड़ दें तो उनके छोटे–छोटे साधारण कार्य भी असाधारण और दिव्य कार्य हो जाएंगे। उनका सारा जीवन काम नहीं पूजा हो जाएगा। कहावत आपने सुनी होगी 'व्हेयर दी वर्क बिकम्स वरशिप' कार्य ही पूजा हो जाता है। वह आत्मस्मरण अथवा प्रभु–स्मरण के जोड़ देने से हो जाता है।

## विकर्म : आत्मविकास में सहयोगी

टूटे हुए सम्बन्धों को जोड़ना एक सांसारिक कर्म है, अथवा 'इनीशिएटिव' लेकर किया गया विकर्म है। फिर यह आत्मविकास में किस प्रकार से सहयोगी होगा?

संसार और अध्यात्म में विरोध नहीं है। एक उदाहरण से समझें, अगर संसार में आप असम्यक ढंग से जी रहे हैं–लड़ाई, झगड़ा, क्रोध, कलह, घृणा, वैमनस्य करते हुए तो आप ध्यान में डूब ही न सकेंगे। फिर आप कैसे कह सकते हो कि संसार और अध्यात्म जुड़े हुए नहीं हैं? जिस दिन आपका झगड़ा हो जाता है किसी से, ध्यान करके देखना... ध्यान होगा ही नहीं। ध्यान करने के लिये भी मन का शांत और शिथिल होना जरूरी है। संसार में हम क्या कर रहे हैं उस पर बहुत–कुछ निर्भर करेगा कि ध्यान में हमारी गति कैसी होगी।

इसलिये मत कहो कि टूटे हुए पारिवारिक संबंधों को जोड़ने से क्या होगा, हम तो परमात्मा से जुड़ना चाहते हैं। बड़ा अच्छा शब्द हिन्दुओं ने खोजा–योग। योग का अर्थ है जुड़ना। तुम भीतर परमात्मा से जुड़ना चाहते हो, बाहर परमात्मा की बनी कृतियों से नहीं जुड़ना चाहते, उनसे टूटना चाहते हो। मुझे याद आता है एक बहुत पुरानी फिल्म 'चित्रलेखा' का गीत–'होगा अपमान रचेता का, रचना को अगर ठुकराओगे; संसार से भागे फिरते हो, भगवान को तुम क्या पाओगे?'

तुम्हें रचना से घृणा है और रचयिता से प्रेम है–ऐसा कैसे होगा? जैसे तुम किसी कवि से कहो कि हम आपका तो बड़ा सम्मान करते हैं लेकिन आपकी कवितायें हमने सब फाड़कर पेंफक दीं और उसमें आग लगा दी। कविता–वविता हमको अच्छी नहीं लगती। अथवा आप किसी की 'पेंटिंग' को लात मारकर नीचे कीचड़ में गिरा दें और कहें कि हम तो 'पेन्टर' का सम्मान करते हैं, पेंटिंग में हमें कोई रस नहीं है। यह तो पागलपन की बात होगी। पेंटिंग का सम्मान ही तो पेन्टर का सम्मान है। इस सृष्टि का सम्मान ही स्रष्टा का सम्मान है। तुम स्रष्टा के साथ योग करना चाहते हो, जुड़ना चाहते हो और उसकी प्रकृति से टूटना चाहते हो; ये दोनों बातें कैसे संभव हैं?

नेपाल में हमारे एक मित्र हैं–स्वामी विजय, सुनौली में रहते हैं। उन्होंने शेयर किया कि पिछले 25 साल से वह अपनी मां से नहीं बोले हैं। जब उनकी उम्र 7 साल की थी तब मां ने किसी बात पर क्रोधित होकर उनको चांटा मार दिया था। तब से विजय ने उनकी तरफ देखा भी नहीं और बात भी नहीं की। मां ने भी गुस्से में उनसे बात नहीं की। अब जरा सोचो... संयुक्त परिवार में वह रह रहे हैं; एक ही छप्पर के नीचे वे दोनों रह रहे हैं और 25 साल से मां–बेटे में बातचीत नहीं हुई, आमना–सामना नहीं हुआ। कई प्रकार की बीमारियां विजय को थीं; 'पेप्टिक अल्सर', 'हाई ब्लड प्रेशर', 'डिप्रेशन की बीमारी', 'नींद न आने की बीमारी। मैंने कहा इन बीमारियों की जड़ मां से टूटे हुए संबंध हैं। जो बच्चा अपनी मां को प्रेम नहीं कर पायेगा, वह दुनिया में और किसे प्रेम कर पायेगा? और ऐसा व्यक्ति स्वयं को भी तो प्रेम नहीं कर पायेगा, तुम उसी मां के तो 'एक्सटेन्शन' हो, उसी के तो फैले हुए एक अंग हो। जब मां से घृणा है तब अपने आप से भी घृणा होगी। स्वामी विजय को बात समझ में आयी और उन्होंने वहीं से फोन करके अपनी मां से माफी मांगी।

मां तो घबरा गई उनकी आवाज सुनकर। जिन्दगी में पहली बार फोन पर आवाज सुनी। फिर तीन दिन का कार्यक्रम करके विजय अपने घर पहुंचे, मां से क्षमा मांगी, उनके चरणस्पर्श किए और कहा कि मुझे माफ कर दो मैंने बहुत बड़ी गलती की है। उसके बाद स्वामी विजय ने मुझे बताया कि ध्यान में उनकी गति तीव्र हो गई। समाधि में गहन डुबकी शुरु हुई। यदि हम बाहर प्रेम से नहीं जुड़े हैं, तो भीतर ध्यान भी नहीं हो पाएगा। इसलिए ओशो बारम्बार जोर देते हैं कि मेरे सन्यास के पक्षी के दो पंख हैं–ध्यान और प्रेम। क्यों... अकेला ध्यान क्यों नहीं कहते? प्रेम बीच में क्यों ले आते हैं? क्योंकि बिना प्रेम के ध्यान हो ही न सकेगा। दोनों बातें पारस्परिक जुड़ी हुई हैं। बिना ध्यान के प्रेम नहीं हो सकता, बिना प्रेम के ध्यान नहीं हो सकता। अगर अपना जीवन तुम घृणापूर्ण जी रहे हो, भीतर तुम ध्यानपूर्ण हो ही नहीं सकते। स्वामी विजय के जीवन में जब बाहर प्रेम आया तब भीतर ध्यान भी फलना शुरु हुआ।

किसी शायर की दो पंक्तियां मुझे बड़ी प्रिय हैं–

'हमने बस इतना ही जाना, इश्क बिना है ख़ाक ज़माना,

सौ तीर्थ जाने से बढ़कर, एक रूठा हुआ यार मनाना।'

प्रेम के पंख फैलाओ, फिर तुम पाओगे ध्यान में गति होने लगी। शुभ की दिशा में पहल करने वाला विकर्मी (प्रो–ऐक्टिव) व्यक्ति अंतर्यात्रा करने लगता है।

## कर्मों का महत्त्व : स्वयं के लिए

**प्रश्नकर्ता– करुणाजन्य कर्मों का स्वयं के लिए क्या महत्त्व है?**

ठीक ही पूछा है। तुम्हें लगता है करुणा तो दूसरों पर प्रभाव डालेगी; मुझ पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? मेरे लिए इसका क्या महत्त्व है? एक छोटी–सी घटना कहूं–गौतम बुद्ध एक दिन अपने प्रसिद्ध शिष्य सारिपुत्र को देखकर मुस्कुराने लगे। सारिपुत्र ने कहा–भन्ते, आप मुझे देखकर हंसते क्यों हैं? बुद्ध ने कहा कि तुम्हें देखा तो तुम्हारा पिछला जन्म मुझे दिखाई दिया। पिछले जन्म में तुम एक हाथी थे। जंगल में आग लगी थी; सभी पशु भाग रहे थे, तुम भी भाग रहे थे। भागते–भागते तुमने देखा कि एक छोटा–सा खरगोश का बच्चा तुम्हारे उठे हुए पैर के नीचे आकर दुबक के बैठ गया है। उस खरगोश के नन्हे–से बच्चे को पूरा हाथी तो दिखाई नहीं पड़ा। उसे तो लगा कि वह हाथी के पैर के नीचे, छाया में अपनी जीवन–रक्षा कर लेगा। हाथी की नजर पड़ी उस पर, बड़ी करुणा उमड़ी हृदय में... यदि नीचे पैर रखता है तो खरगोश मर जाएगा, और इस शरणागत को छोड़कर भाग जाना भी उसके दिल को गवारा नहीं। 'बेचारा यह खरगोश मेरी शरण में आया और मैं इसको छोड़ कर चला जाऊं। नहीं, यह नहीं हो सकता।' ––––वह हाथी अपना एक पैर ऊंचा करके, सिर्फ तीन पैरों पर खड़ा रहा। थोड़ी देर में आस–पास के वृक्षों में आग लग गई।

हाथी के बदन में भी आग लग गई। लेकिन जब तक उसके प्राण रहे वह एक पैर ऊंचा करके खरगोश के बच्चे को बचाए खड़ा रहा। बुद्ध ने कहा–सारिपुत्र तुम्हारे उस एक करुणा के कृत्य की वजह से तुम्हें मनुष्य योनि में जन्म मिला। और आश्चर्य, तुम एक ही जन्म में बुद्धत्व को भी पा गए। इसलिए तुम्हें देखकर मुस्कुराता हूं सारिपुत्र! ऐसा शायद आज तक कभी नहीं हुआ और शायद दुबारा भी कभी न हो कि कोई व्यक्ति पशु योनि से मनुष्य योनि में आए और एक ही जन्म में मनुष्य योनि से भी पार चला जाए। यह अद्‍भुत और अनूठी घटना है। तुम्हारा वह एक करुणा का छोटा–सा कृत्य... उसका परिणाम देखते हो! तुम पूछते हो करुणाजन्य कर्मों का स्वयं के लिए क्या महत्त्व है? वहीं से मनुष्यता की, सच पूछो तो दिव्यता की शुरुआत होती है। न केवल हमारा वर्तमान बल्कि हमारा भविष्य भी उसी से नियोजित होता है।

## करुणा के नाम पर अहंकार

**प्रश्नकर्ता–क्या करुणा के साथ अहंकार भी जुड़ा हो सकता है?**

हाँ, हो सकता है। करुणा सिर्फ ऊपर–ऊपर से दिखावा हो सकती है, वह सच्ची करुणा न होगी। यदि भीतर अहंकार है, भीतर चालाकी है, सेवा करके कुछ पाने का उद्देश्य है, तो वह सचमुच की करुणा न हुई, केवल दिखावटी करुणा हुई। मैंने

सुना है कि एक ईसाई पादरी ने स्कूल में जाकर बच्चों को समझाया कि सेवा करनी चाहिए, करुणा करनी चाहिए। बच्चों ने पूछा कि कुछ उदाहरण दीजिए कि क्या करना चाहिए?

पादरी ने कहा कि जैसे कि कोई वृद्ध स्त्री सड़क पार करना चाह रही हो और भीड़ में, ट्रैफिक में बेचारी नहीं कर पा रही हो, तो उसका हाथ पकड़कर तुम उसको पार करा दो, यह एक छोटा-सा सेवा का काम हुआ; पुण्य हुआ। बच्चों ने कहा बिल्कुल ठीक, हम ऐसा ही करेंगे। अगले सप्ताह वह पादरी फिर आया, उसने पूछा-बच्चो, क्या तुमने कोई सेवा का काम किया? तीन बच्चों ने हाथ उठाया। पादरी बहुत खुश हुआ। उसने पूछा एक बच्चे से कि बोलो क्या किया? बच्चे ने कहा-जी, मैंने एक बुढ़िया को सड़क पार करवाई। दूसरे से पूछा कि तुमने क्या किया? उसने कहा, 'मैंने भी एक बुढ़िया को सड़क पार करवाई।' पादरी थोड़ा हैरान हुआ। फिर भी सोचा कि सम्भव है दोनों बच्चों को सड़क पार कराने के लिए एक-एक बुढ़िया मिल गई हो। उसने तीसरे से पूछा कि तुमने क्या किया? उसने कहा-फादर, मैंने भी एक बुढ़िया को सड़क पार करवाई है।

पादरी ने आष्ठचर्य से पूछा कि तुम तीनों को तीन बुढ़ियां मिल गईं?

उन तीनों ने कहा नहीं, बुढ़िया तो बेचारी एक ही थी। हम तीनों ने मिलकर उसे पार करवाया।

पादरी ने पूछा-क्या बड़ी कठिन परिस्थिति थी, क्या बुढ़िया बिल्कुल चल-फिर नहीं सकती थी? बहुत कमजोर थी जो तीन-तीन सहारों की जरूरत पड़ी?

बच्चे बोले-नहीं फादर, आप समझे नहीं, वह कमजोर नहीं, बड़ी ताकतवर थी, मजबूत थी। बड़ी मुश्किल से उसको पार कराया। असल में वह दुष्ट औरत उस पार जाना ही नहीं चाहती थी। लेकिन हमको तो पुण्य कमाकर स्वर्ग जाना है, सो हमने बुढ़िया को पार करा ही दिया।

यदि सेवा में तुम्हारा कोई 'मोटिव' है, कोई चालाकी है, उसके पीछे तुम्हारा कोई इरादा छिपा है कुछ और पाने का, तब वह वास्तविक करुणा नहीं हुई।

# सम्यक कर्म के लक्षण

### प्रश्नकर्ता- सम्यक कर्म वाले व्यक्ति के कुछ लक्षण बतायें?

सम्यक कर्म वाले व्यक्ति और एक साधारण व्यक्ति में फर्क समझो। साधारण व्यक्ति अक्सर कहता है कि यह मेरा काम नहीं है। सम्भव होगा किन्तु बहुत कठिन है। सम्यक कर्म वाला व्यक्ति कहता है कि मैं यह काम भी कर सकता हूं; होगा कठिन मगर

सम्भव तो है। सामान्य व्यक्ति समस्यायें प्रस्तुत करता है और काम न करने के बहाने बताता है। सम्यक व्यक्ति समाधान की योजना बनाता है, उपायों की बात करता है। सम्यक कर्म वाला व्यक्ति सुझाव देगा, साधारण व्यक्ति शिकायत करेगा। साधारण व्यक्ति डांवाडोल या हठी प्रवृत्ति का होगा, भ्रमित रहेगा। सम्यक व्यक्ति स्पष्ट, विनम्र पर निश्चय में जींने वाला होगा। सम्यक व्यक्ति शान्त होगा, असम्यक व्यक्ति या तो उत्तेजित, अति–उत्साहित होगा या घोर निराशा (डिप्रेशन) में होगा।

सम्यक कर्म वाले व्यक्ति सर्वहित की बात सोचेंगे, साधारण व्यक्ति बेईमान होंगे, वचन के पक्के न होंगे; स्वार्थ की सोचेंगे। सामान्य व्यक्ति भाग्यवादी होंगे–या तो आशावादी या फिर निराशावादी। सम्यक व्यक्ति यथार्थवादी होंगे। साधारण व्यक्ति दुनिया को दोष देगा, स्वयं श्रेय लेगा। सम्यक व्यक्ति स्वयं उत्तरदायित्व लेंगे, दोष अपने ऊपर लेंगे, श्रेय दूसरों को देंगे। सम्यक व्यक्ति सीखने को तत्पर होता है, साधारण व्यक्ति अहंकारवश कहता है हमें तो सब मालूम है। सम्यक व्यक्ति आन्तरिक उत्साह से प्रेरित कर्म करता है, असम्यक व्यक्ति प्रतिकर्म करता है बाहरी कारणों से प्रेरित। सामान्य व्यक्ति केवल लेना जानता है, सम्यक व्यक्ति देना भी जानता है। सामान्य व्यक्ति अनुशासनहीन होगा या झूठा अनुशासन करेगा, पाखंडी होगा; सम्यक व्यक्ति आत्म अनुशासन से जीयेगा। सामान्य आदमी विवाद के लिये तैयार रहता है, सम्यक व्यक्ति संवाद में उत्सुक होता है। सम्यक व्यक्ति एकांत प्रिय होता है, याद रखना सृजन के सारे फूल एकांत की पृष्ठभूमि में खिलते हैं। सामान्य व्यक्ति सदा भीड़ की खोज में रहता है, अकेले होने पर अकेलापन महसूस करता है।

सम्यक व्यक्ति का चरित्र स्वस्फूर्त होता है जैसे वृक्ष में से फूल उगते हैं; असम्यक व्यक्ति झूठी प्रतिष्ठा में जीता है, उसका चरित्र कागजी फूल की तरह होता है। सम्यक व्यक्ति दूसरों का सम्मान सहज–भाव से करता है, असम्यक व्यक्ति या तो दूसरों को नीचा दिखायेगा या उनको चने के झाड़ पर चढ़ायेगा, इरादा उसमें भी गिराने का ही होता है। सम्यक व्यक्ति आत्मविश्वास और सम्यक साहस वाला होगा, सामान्य व्यक्ति जी हजूरी करेगा या तो कायर होगा या फिर दुस्साहसी होगा। सम्यक व्यक्ति आत्मगुणों में श्रद्धा करता है। सहज, सरल और विनोदी स्वभाव का होता है, सामान्य व्यक्ति धन दौलत और चालाकी में भरोसा करता है; महत्त्वाकांक्षी, कुटिल और गंभीर होता है। सम्यक व्यक्ति अपनी मंजिल को पाता है व संतोष, आनंद, तृप्ति और आंतरिक सफलता हासिल करता है। असम्यक व्यक्ति भीतर लक्ष्यहीनता के बोध से भरा होता है; सदा असंतुष्ट, विषादग्रस्त, अतृप्त और आंतरिक असफलता में जीता है। हो सकता है बाहर से वह सफल हो जाये लेकिन भीतर से असफल ही महसूस करता रहता है।

# अकर्ताभाव और कर्म

## प्रश्नकर्ता– 'मैं कर्ता हूं' इस भाव से कैसे मुक्त हुआ जाये?

जरा गौर से देखो, होशपूर्वक देखो तुम क्या कर रहे हो? और तुम पाओगे जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उसके कर्ता तुम नहीं हो, चीजें अपने आप हो रही हैं। क्या तुम भोजन पचाते हो? क्या तुम रोटी, दाल–चावल से खून बना सकते हो? क्या तुम श्वास ले रहे हो या कि श्वास चल रही है? जरा गौर से देखोगे तो तुम पाओगे कि चीजें हो रही हैं, 'कर्तापन' हमारा भ्रम है। तुम पूछते हो कैसे मुक्त हों इस भ्रामक भाव से? जागो और देखो, तुम पाओगे चीजें हो रही हैं।

क्या तुमने जन्म लिया? तुम जान–बूझकर पैदा हुए थे? क्या तुमने कहीं ईश्वर के दफ्तर में अर्जी दी थी कि हम पृथ्वी पर पैदा होना चाहते हैं? नहीं, एक दिन तुमने पाया कि तुम्हारा जन्म हो गया। क्या तुमने श्वास ली थी या कि अचानक श्वास चलनी शुरु हो गयी? अगर तुम श्वास लेते तब तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती– कहीं पतंजलि के योगपीठ में भर्ती होओ, योगासन–प्राणायाम सीखो उसके बाद श्वास चले... तब तक तो मर ही जाते! सब चीजें हो रही हैं। क्या तुम किसी को प्रेम कर सकते हो?

तुम्हारे वश में है अथवा प्रेम स्वयंमेव घटित होता है? होता है तो होता है, नहीं होता तो नहीं होता। इसमें तुम क्या कर सकते हो? ठीक ऐसे ही मृत्यु भी एक दिन होगी। जिंदगी में जो कुछ भी महत्वपूर्ण है वह सब कुछ हो रहा है। हम व्यर्थ ही कर्ता भाव में पड़ जाते हैं।

थोड़ा कभी गौर से देखें तो हम पायेंगे कर्ता भाव झूठ है। मिटाने के लिए कुछ करना नहीं है। वह है ही नहीं।

## प्रश्नकर्ता– क्या कर्मबंध का सिद्धांत सही है?

मैं कहूंगा 50 प्रतिशत सही है। वे लोग जो बेहोशी में जी रहे हैं, मूर्च्छा में जी रहे हैं उनके लिये सही है। वे बंधन में बंधते जाते हैं कर्म करते हुए। जो लोग चैतन्यपूर्वक, ध्यानपूर्वक जी रहे हैं साक्षी भाव में जी रहे हैं, उनके लिये सही नहीं है, क्योंकि वे लोग कर्म के बंधन में नहीं बंधते। जागृति से उत्पन्न कर्म बंधन पैदा नहीं करते। जितने ज्यादा मूर्च्छित, उतना ज्यादा बंधन; जितने ज्यादा जागृत, उतना कम बंधन। इसलिये कर्मबंध का सिद्धांत आंशिक रूप से सत्य है। वह मूर्च्छा की मात्रा पर निर्भर करेगा कि तुम कितने मूर्च्छित हो।

हज़रत अली के पास एक आदमी आया और उसने पूछा यही बात कि कर्म करने के लिये मनुष्य स्वतंत्र है या बंधन में? अली सीधे–सादे, गांव के अनपढ़ व्यक्ति थे। उन्होंने उस आदमी से कहा कि तुम अपना एक पैर ऊंचा उठाओ। उसने अपना बांया पैर ऊपर कर दिया। अली ने कहा कि अब कृपा करके दाहिना पैर भी ऊंचा कर लो। उसने कहा– अब यह संभव नहीं है, एक ही पैर ऊपर उठाया जा सकता है। अली ने कहा कि जब मैंने तुमसे पहली बार कहा था कि अपना एक पैर ऊंचा उठाओ तब तुम स्वतंत्र थे। चाहते तो बांया उठाते, चाहते तो दांया उठाते, या चाहते तो कोई–सा भी नहीं उठाते; मेरी बात न मानते, कोई मजबूरी न थी। तुम्हारे पास कई सम्भावनायें थीं। लेकिन तुमने जब बांया पैर उठा लिया तो तुम्हारा दाहिना पैर बंध गया। इसे बड़े ही सरल उदाहरण से अली साहब ने समझा दिया। बड़ा अनूठा उत्तर दिया कि कर्म करने के पूर्व हम स्वतन्त्र हैं। लेकिन कर्म करने के बाद हम बंध जाते हैं क्योंकि हमने एक पैर उठा लिया तो अब दूसरा पैर न उठा पायेंगे। फिर एक पैर उठाने का जो परिणाम है उसे हम भोगेंगे। हर कर्म बंधन में ले जाता है और जितनी ज्यादा मूर्च्छा होगी उतना ही ज्यादा हम बंधते चले जाएंगे; जितनी जागृति होगी उतनी ही हमारी स्वतन्त्रता भी ज्यादा होगी। तो कर्म–बन्ध का सिद्धांत आधा सही है, आधा गलत।

## ध्यान–समाधि कर्म नहीं?

### प्रश्नकर्ता– धर्मग्रन्थों में क्रिया मात्र को बन्धन बताया है। तो क्या ध्यान और समाधि का अनुष्ठान भी बंधन नहीं है?

ध्यान और समाधि कर्म नहीं हैं। तुम गलत समझ रहे हो। ध्यान का अनुष्ठान ध्यान नहीं है, ध्यान की विधि ध्यान नहीं है। ध्यान तो निष्क्रिय जागरूकता का नाम है। जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे, सिर्फ हो। न शारीरिक तल पर कुछ कर रहे, न मानसिक तल पर, न हार्दिक तल पर, तुम केवल हो। होना कोई क्रिया नहीं है।

ध्यान का अर्थ है सिर्फ होना, 'प्योर बीइंग', आत्म–सत्ता का बोध।

समाधि कोई क्रिया नहीं हैं और इसलिए उसका बन्धन नहीं होता। सच पूछो तो ध्यान और समाधि में डूबकर व्यक्ति को अकर्म का बोध होता है। मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, सिर्फ हूं और यह होना भी अस्तित्व की मर्जी से है, मेरे किसी कर्म का परिणाम नहीं है। इसलिए ध्यान और समाधि का कर्मबंध नहीं होता क्योंकि वह कर्म ही नहीं है।

# स्वयं की जिम्मेवारी पहचानो

तुम अपनी पीड़ा के लिए खुद जिम्मेवार हो, कोई इसका अंत नहीं कर सकता जब तक तुम इस 'मैं' को न छोड़ दो। इसलिए बुद्ध ऐसी बात नहीं कहेंगे कि प्रार्थना करो। बुद्ध कहेंगे, तुम्हें समझ में आ गया, औरों को समझाओ, प्रार्थना का सवाल नहीं उठता। कौन मिटाएगा? कोई है कहीं बैठा आकाश में जो इनके दुख मिटा दे? और अगर बैठा होता तो कितनी सदियों से तो तुम प्रार्थना कर रहे हो, हवन कर रहे हो, यज्ञ कर रहे हो--क्या-क्या मूढ़ताएं नहीं कर रहे हो--अभी तक उसने सुना नहीं? बहरा है तुम्हारा परमात्मा बिल्कुल? तुम्हारे ऋषि-मुनि थक गये चिल्ला-चिल्ला कर, पंडित-पुरोहित मंदिरों के घंटे बजा-बजाकर मर गये, उसके कानों तक कोई खबर नहीं पहुंची, जूं भी नहीं रेंगी, दुनिया का दुख बढ़ता ही चला गया। जितनी प्रार्थना चली, उतना ही दुख बढ़ा। प्रार्थना में कहीं बुनियादी भूल है। यह सवाल प्रार्थना का नहीं है, बोध का है। और बोध तो प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं का होना होगा।

तुम उत्तरदायी हो अगर दुखी हो। कोई दूसरा जिम्मेवार नहीं है। इसमें तो यह भ्रांति छिपी हुई है कि जैसे परमात्मा लोगों को दुख दे रहा है। इसलिए प्रार्थना कर रहे हैं कि भैया, अब दुख मत दो! अब बहुत हो गया! अब दुख देना बंद करो! जैसे परमात्मा जिम्मेवार है। जिम्मेवार तुम हो, प्रार्थना किससे हो रही है? इस भ्रांति को छोड़ो। तुम्हारी पीड़ा के जनक तुम हो, निर्माता तुम हो, सर्जक तुम हो, मिटा भी तुम्हीं सकते हो, कोई और नहीं मिटा सकता है। यह तुम्हारी काल्पनिक पीड़ा है। तुम सड़ रहे हो, गल रहे हो, तुम नर्क में पड़े हो, लेकिन नर्क तुम्हारा ही निर्माण है। नर्क कहीं और नहीं है, कोई भौगोलिक अवस्था नहीं है-न स्वर्ग कोई भौगोलिक अवस्था है-नर्क अहंकार से भरे हुए मन का नाम है। और स्वर्ग अहंकार से शून्य मन का नाम है। जहां अहंकार नहीं, वहां सुख की वर्षा हो जाती है। और जहां अहंकार है, वहां दुखों के अम्बार लग जाते हैं। कौन इसको दूर करेगा? प्रत्येक व्यक्ति को ही अपना मुक्ता होना है।

प्रत्येक व्यक्ति को ही अपने को मुक्ति देनी है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति ने ही अपने हाथ में जंजीरें डाली हैं। कोई दूसरा तुम्हारी जंजीरें तोड़ भी दे, तुम फिर डाल लोगे जब तक कि तुम्हें ही इस बात का बोध न हो जाए। मैं सन्यासी उस व्यक्ति को कहता हूं, जिसने यह स्वीकार किया कि मैं उत्तरदायी हूं अपने सारे दुखों के लिए। और जब यह कोई स्वीकार कर लेता है कि मैं उत्तरदायी हूं, तो आधी समस्या तो हल हो ही गयी। कुछ न किया और आधी मंजिल आ गयी। जैसे ही तुमने यह स्वीकार कर लिया कि मैं जिम्मेवार हूं अपने दुखों का, तुम्हें दूसरी बात भी साफ हो गयी कि चाहूं तो अभी छोड़ दूं ये सारे दुख। और चाहूं तो जो ऊर्जा मैंने दुखों में नियोजित की है, वही ऊर्जा सुखों में नियोजित कर दूं। मेरे हाथ का खेल है।

एक सूफी फक़ीर जब मरा तो उसके शिष्यों ने पूछा कि हम वर्षों से आपको देख रहे हैं–कुछ तो ऐसे शिष्य थे जो पचास साल से उसके साथ थे–उन्होंने कहा कि एक बात हमें चकित करती रही है, बार–बार हम पूछते भी रहे, आप हंसते हैं और टाल जाते हैं, आपको हमने कभी दुखी नहीं देखा, कभी उदास भी नहीं देखा। जब देखा तब ताजा। जब देखा तब फूल की तरह खिले हुए। जब देखा तब आनंदित। क्या राज है इसका? उस फकीर ने कहा, अब तो मैं मर ही रहा हूं, तुम्हें राज बता देता हूं। आज से पचास साल पहले मैं बहुत दुखी आदमी था। तुम कुछ भी नहीं हो। तुम क्या ख़ाक दुखी हो! मेरे दुख का कोई अंत नहीं था। मैं चौबीस घंटे दुख में सड़ रहा था। मेरा ढंग ही ऐसा था कि उसमें से दुख ही निकल सकता था। अगर मैं गुलाब के पास भी खड़ा होता तो कांटे गिनता था, फूल नहीं देखता था। और जो आदमी कांटे गिनेगा, उसके हाथ कांटो से बिंध जाएंगे; लहूलुहान हो जाएंगे। और जिसके हाथ लहूलुहान हो जाएंगे, आंखें आंसुओं से भर जाएंगी, उसको क्या ख़ाक फूल दिखाई पड़ेंगे! उसे फूल दिखाई भी पड़ जाएं तो भरोसा न आएगा। क्योंकि सवाल यह उठेगा कि हजारों कांटों में फूल खिल कैसे सकता है? जरूर मुझे कुछ भ्रम हो रहा है।

उस फक़ीर ने कहा कि लोग तो कहते हैं कि हर काली बदली में भी एक रजत–रेखा होती है, 'एवरी क्लाउड हैज ए सिलवर लाइन', मगर मेरी अपनी और ही धारणा थी। मेरी धारणा यह थी कि जहां भी रजत–रेखा होती है, उसके आसपास एक महान काली बदली होती है।

वह मेरे देखने का ढंग था। लोग कहते हैं कि दो दिनों के बीच एक रात होती है, और गुजर जाएगी। और मैं सोचता था कि यह किस मूरख ने दुनिया बनायी, कि दो रातों के बीच एक छोटा–सा दिन, जो आया और गया–और फिर अंधेरी रात है। मैं दुखों को ही खोजता था। मैं दुख ही चुनता था। इसलिए दुखी था।

फिर एक दिन सुबह मैं उठा और मैंने कहा, कब तक मैं दुखी रहूंगा? कब तक दुखी रहना है? और उस सुबह मुझे यह साफ हो गया कि यह मेरे हाथ में है। मेरा गणित गलत है। मेरा हिसाब गलत है। मैं नकारात्मक को ही सोचता हूं। मैं निराशा को ही चुनता हूं। निषेध ही मेरे चिन्तन का आधार है, विधेय नहीं। उस सुबह मुझे यह साफ हो गया कि अगर मुझे दुखी रहना है तो दुखी रह सकता हूं और अगर मुझे सुखी रहना है तो मैं सुखी रह सकता हूं। तो मैंने सोचा, आज प्रयोग करके देखूं, आज सुखी ही रहूंगा, जीवन को सुख के ढंग से देखूंगा। और वह आखिरी दिन था मेरे दुख का। उस दिन मैं पूरे चौबीस घंटे सुखी रहा। मैं हैरान हो गया। तब से हर रोज सुबह उठता हूं और अपने से कहता हूं कि बोल, क्या इरादा है? आज सुखी होना है कि दुखी? और हमेशा मैं सुख के पक्ष में ही निर्णय लेता हूं। किसको दुखी होना है! पचास साल हो गये

उस बात को गये, अब तो दुख मुझे यूं लगता है जैसे कभी था ही नहीं। कोई दुख स्वप्न देखा हो, जो कब का खो गया। या जैसे किसी कहानी में बात पढ़ी हो, जिससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं।

मैं तुमसे यही कहना चाहता हूं। कोई तुम्हारा दुख मिटाएगा नहीं। तुम इस भ्रांति को छोड़ दो। इसी भ्रांति के कारण तुम दुख में सड़ रहे हो। जा कर मंदिर में प्रार्थना करते हो कि प्रभु, हे तारणकर्ता, हरो मेरे दुख! तुम जरा गौर से तो सोचो, इसका मतलब यह हुआ कि उसने दिया होगा, तो ही हर सकता है। उसने बनाया होगा, तो ही मिटा सकता है। अगर बनाने वाला वह नहीं है तो मिटाने वाला वह कैसे हो सकेगा? और अगर तुम बनाने वाले हो तो वह लाख मिटाये, तुम फिर-फिर वही कर लोगे। क्या भेद पड़ेगा? तो लोग कह रहे हैं कि हम तो पापी हैं, हम तो दुखी हैं और तुम तो महान हो और तुम्हारी करुणा महान है, दया करो, अब दुख से छुटकारा दिलाओ। मगर ये प्रार्थनाएं चलती रहती हैं और दुख भी बनता रहता है; कहीं कोई प्रार्थना का परिणाम नहीं होता।

यह सवाल प्रार्थना का नहीं, बोध का है।

जो लोग दुखी हैं, वे स्वयं जिम्मेवार हैं। लेकिन आदमी ने हजार-हजार तरकीबों से अपनी जिम्मेवारी टालने की कोशिश की है। तरकीबें बदलती रहीं, आदमी वही का वही, दुख वही का वही। पहले आदमी कहता था, विधि का विधान है, क्या करें, किस्मत में लिखा है। यह तरकीब हुई। करते तुम हो और कहते हो, विधाता ने लिख दिया, अब हम करें क्या? खोपड़ी में लिख दिया! खोपड़ी में कुछ भी नहीं लिखा हुआ है। खोपड़ी बिल्कुल खाली है। कोई लिखावट नहीं है। मैंने लाखों खोपड़ियां पढ़ी हैं, कोई लिखावट नहीं है। मगर तरकीब थी पुरानी कि विधि का विधान है, विधाता ने लिख दिया। विधाता क्यों लिखेगा? विधाता कोई पागल है, विक्षिप्त है कि तुम्हारा दुख लिख देगा कि प्रभु की मर्जी। प्रभु है यह? कि तुम्हें सताने में रस लेने वाला कोई पागल है? कि इसके कारण इतना सारा दुख हो रहा है।

फिर यह बात पुरानी पड़ गयी। तो कार्ल मार्क्स ने कहा कि समाज की व्यवस्था! क्या कर सकता है आदमी? आर्थिक व्यवस्था! राजनैतिक व्यवस्था! यह समाज है जो दुख पैदा कर रहा है। लोगों को यह बात जंची। लोगों को हमेशा यह बात जंचती है कि कोई और जिम्मेवार हो। यह बात अखरती है कि कोई कहे कि तुम जिम्मेवार हो। बुद्ध पसंद नहीं आए, जीसस पसंद नहीं आए, सुकरात पसंद नहीं आया, लेकिन कार्ल मार्क्स पसंद आया। आधी दुनिया कम्युनिस्ट हो गयी। लेकिन रास्ता वही है। क्योंकि अब पुराना ढंग विधि-विधान का तो खत्म हो गया, पुराना हिसाब कि कर्मों के कारण हम फल भोग रहे हैं, पिछले जन्मों में बुरे कर्म किये थे, इसलिए अब फल भोग रहे हैं। तो

पिछले जन्मों में क्यों बुरे कर्म किये थे? वह उसके पिछले जन्म में, उसके कारण। और उस जन्म में क्यों किये थे? वह उसके पिछले जन्म में। तो जरा यह भी तो सोचो कि पहला जन्म कभी हुआ था, उसमें क्यों बुरे काम किये थे? उसके पहले तो कोई जन्म न था। मगर ये तरकीबें टालने की। अपने कंधे से किसी तरह बात दूसरे पर चली जाए। यह दुख को बचाने का उपाय है, यह सुरक्षा है, यह कवच है।

मार्क्स ने समझा दी नयी तरकीब। मार्क्स समझता है कि उसने कोई क्रांति ला दी! कुछ क्रांति नहीं लायी, सिर्फ शब्द बदल दिये। विधि–विधान न रहा, कर्म का सिद्धांत न रहा, समाज की आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था जिम्मेवार हो गयी। आदमी फिर वहीं–के–वहीं। तो रूस में तुम सोचते हो लोग सुखी हो गये हैं? चीन में सुखी हो गये हैं? जरा भी सुखी नहीं हो गये हैं। हां, इतना जरूर हो गया है कि अब अपने दुख की बात भी नहीं कर सकते हैं, इतने दुखी कर दिये गये हैं। कि अब दुख है, यह कहने की भी हिम्मत नहीं। अब दीवारों को कान हैं। अब जिसने कहा दुख है, उसका फैसला कर दिया जाएगा। उसका खात्मा कर दिया जाएगा। अब तो कितने ही दुखी रहो, कहना तो यही कि सब सुख ही सुख है। अपनी पत्नी से भी पति डरता है कहने में, क्योंकि पत्नी भी स्त्रियों के कम्युनिस्ट दल की सदस्या है। अपने बच्चों से बाप डरते हैं कहने में, क्योंकि बच्चे बच्चों की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हैं। वे जाकर खबर दे देंगे। और हर एक को समझाया जाता है, बच्चों को समझाया जाता है कि साम्यवाद सबसे ऊपर है; तुम्हारे माता–पिता अगर कोई खिलाफ बात करते हों, फौरन खबर करो। पत्नियों को समझाया जाता है कि पति तो सांयोगिक बात है, असली चीज साम्यवाद है, समाजवाद है; सर्वोपरि बात वही है। अगर पति कुछ खिलाफ बात करते हों, खबर करो। हर एक घर में जासूस बैठ गये। दुख भारी है। लेकिन कोई कुछ कह नहीं सकता, कोई कुछ बोल नहीं सकता।

मैंने सुना कि कुत्तों की एक प्रदर्शनी थी पेरिस में। यह कथा कम्युनिज़्म के जमाने की है। रूसी कुत्ते भी भाग लेने आए थे। फ्रेंच कुत्तों ने पूछा कि भई, रूस के कुछ हालचाल कहो। बड़ी मुश्किल से रूसियों से मिलना होता है। तो कुत्तों ने कहा, आनंद ही आनंद है। सुख ही सुख है। स्वर्ग है। लेकिन जब प्रदर्शनी खत्म होने लगी तो रूसी कुत्तों ने फ्रेंच कुत्तों से कहा कि कोई तरकीब बताओ कि अब हमें रूस न जाना पड़े। उन्होंने कहा, अरे, स्वर्ग ही स्वर्ग है, सुख ही सुख है, रूस क्यों नहीं जाना चाहते? उन्होंने कहा, और सब तो ठीक है, भौंकने की आजादी बिल्कुल नहीं। अब क्या ख़ाक करें सुख का, जहां भौंक ही न सकते हों। और कुत्ते का सबसे बड़ा सुख कि भौंकने की आजादी होनी चाहिए। विचार–स्वतंत्रता! उसने कहा, और सब तो ठीक है–अरे, लाख मक्खन खिलाओ, मगर खा कर भी क्या करेंगे जब भौंक ही नहीं सकते। आत्मा

को ही मारे डाल रहे हो। अब जाने की इच्छा नहीं है। यहां कम–से–कम भौंकने की आजादी तो है। वहां गले में सुरसुरी चलती रहती है, मगर दबाए बैठे रहो। संयम साधना पड़ता है। भौंक नहीं सकते।

रूस से लोग बाहर क्या निकल जाते हैं, फिर लौटना नहीं चाहते। कैसा सुख है यह? जो बाहर निकल गया, वह फिर पीछे नहीं लौटता।

इस तरह सुख हो नहीं सकता। यह बात फिर टाल दी गयी। सुख के लिए एक आधारभूत नियम ख्याल में लो, मैं जिम्मेवार हूं अपने दुख का, मैं निर्माता हूं, मैं सृष्टा हूं। न कोई पिछले जन्म, न कोई भाग्य, न कोई भगवान, न कोई समाज, न कोई व्यवस्था। मैं, मेरा अहंकार, मेरी मूढ़ता, मेरा अज्ञान, मेरी मूर्च्छा। कष्ट होता है इस बात को स्वीकार करने में। पीड़ा होती है इस बात को स्वीकार करने में। मगर इस पीड़ा को जो स्वीकार कर लेता हे, उसके जीवन में क्रांति की शुरुआत है। क्योंकि यह आधा पहलू। जैसे यह समझ में आ गया, तब तुम्हारे हाथ में है; बदल दो! बदल दो जिंदगी का ढंग फिर। मोड़ दो नाव। फिर कोई तुम्हें रोकने वाला नहीं है। ऐसे ही मैंने आनंद जाना है।

जिंदगी के सब पहलू तुम्हारे हाथ में हैं, तुम मालिक हो। यह मैं अपने अनुभव से कहता हूं। यह मैं किसी शास्त्र की बात नहीं दोहरा रहा हूं, यह मेरे स्वयं का अनुभव है और इसलिए मैं जरा भी स्वीकार नहीं कर सकता, कोई लाख कहे कि कोई और जिम्मेवार है। मैं भी दुखी था, जैसे तुम दुखी हो, जैसे कोई भी दुखी है, लेकिन जिस दिन यह बात समझ में आ गयी कि मैं ही जिम्मेवार हूं, उसी दिन से क्रांति हो गयी। उसी दिन से महल में उजाला हो गया। उसी दिन से दीया जल गया।

**–ओशो, दीपक बारा नाम का, प्रवचन–1**

# आजीविका और संबंध

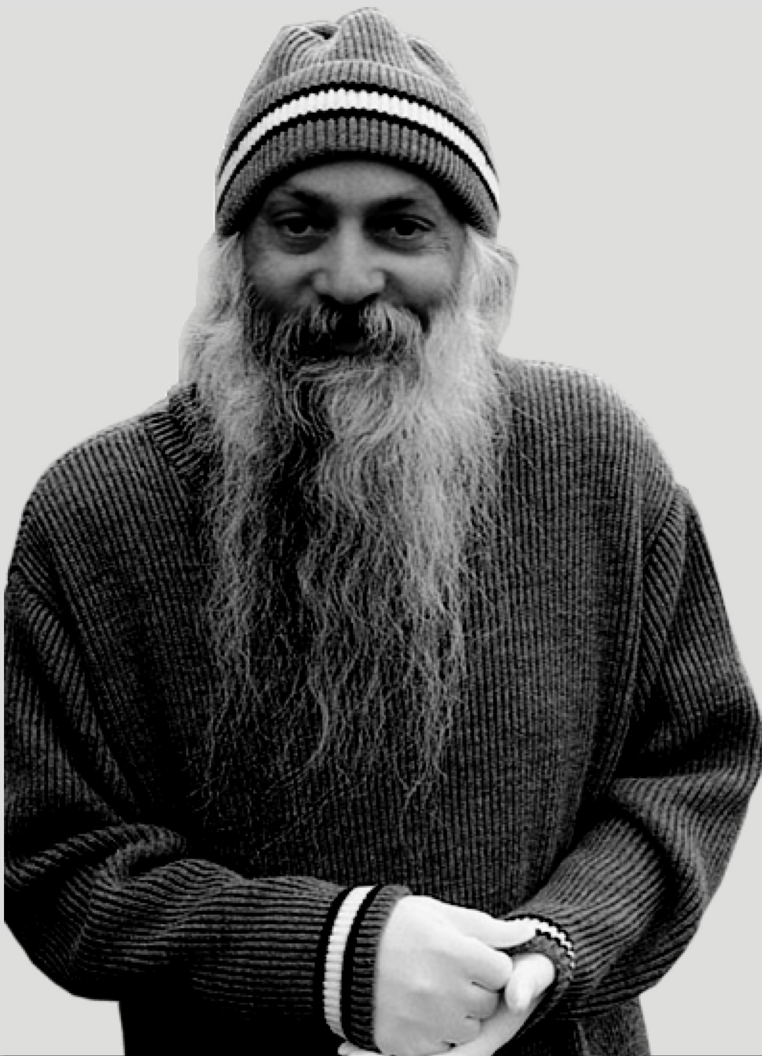

- सम्यक आजीविका
- संबंध के संबंध में एक गहरा सूत्र
- शांति व प्रीति का सूत्र: हृदय का विकास
- मैत्री भाव, आनंद भाव, समता भाव
- सत्संग यानि गुरु-शिष्य संबंध

# सम्यक आजीविका

बुद्ध कहते हैं, हर किसी चीज को आजीविका मत बना लेना। अब कोई आदमी कसाई बनकर अपनी रोटी कमा रहा है। यह भी कोई कमाना हुआ! रोटी ही कमानी थी, हजार ढंग से कमा सकते थे, कसाई होने की क्या जरूरत थी? यह बड़ी असम्यक आजीविका है। कि कोई स्त्री वेश्या होकर रोटी कमा रही है! कोई सम्यक आजीविका खोजना। रोटी तो कमानी ही है, यह बात सच है, लेकिन सम्यक खोजना।

और ध्यान रखना, अगर तुम्हारी आजीविका सम्यक हो, तो तुम्हारे जीवन में शांति होगी। अगर तुम्हारी आजीविका सम्यक हो, तो सत्य और तुम्हारे बीच अनेक बाधाएं कम हो जाएंगी। अब अगर कोई आदमी झूठ का ही धंधा कर रहा है--समझो कि वकील है--अब बड़ा मुश्किल होगा इसको जीवन में सत्य को लाना। इसका धंधा ही झूठ है। झूठ इसकी आजीविका है। झूठ में जितना पारंगत होगा, उतनी ही सफलता मिलने वाली है। अब सत्य से तो यह डरेगा। सत्य का तो कोई संबंध ही नहीं इसकी आजीविका से। इसको तो झूठ को ही सत्य सिद्ध करना है। और ध्यान रखना, वही वकील सफल होता है, जो अदालत में झूठ को सत्य सिद्ध ही नहीं करता, बल्कि इस तरह सिद्ध करता है कि लगे कि सत्य है ही। खुद भी आंदोलित दिखायी पड़ता है, कि उसे पक्का भरोसा है कि यह सच है। झूठ को बोलते वक्त ऐसे बोलता है कि जैसे वह खुद आंखों से देखा है, सामने मौजूद था। क्योंकि अगर वकील खुद ही आश्वस्त नहीं है तो अदालत को आश्वस्त नहीं कर पाएगा। अगर भीतर खुद ही जान रहा है कि यह झूठ है, तो झूठ की खबर मिलती रहेगी उसके चेहरे से, ढंग से, जानेगा कि यह मामला तो हारे ही हैं, जीतना मुश्किल है। तो उदास होगा, प्रफुल्लता न होगी, बल न होगा, वाणी में प्रभाव न होगा।

सम्यक आजीव का अर्थ है, सृजनात्मक आजीविका। ऐसी कुछ आजीविका चुनना, जो तुम्हारे जीवन को परमात्मा की तरफ ले जाने में सृजनात्मक हो, विध्वंसात्मक न हो।

बुद्ध कहते थे, अपने जीने के लिए किसी का जीवन नष्ट करना अनुचित है। अब कोई कसाई का काम करता है, तो बुद्ध कहते, यह व्यर्थ है। इतना उपद्रव बिना किए आदमी अपना भोजन जुटा ले सकता है। वही करो जिससे किसी के जीवन को अहित न होता हो। क्योंकि जब तुम दूसरों का अहित करते हो तो तुम अपने अहित के लिए बीज बो रहे हो। फिर फसल भी काटनी पड़ेगी। सम्यक-आजीव।

**-ओशो, एस धम्मों संनंतनो-65 और 86 से संकलित**

# संबंध के संबंध में एक गहरा सूत्र

ध्यान रहे, इसे एक सूत्र, गहरा सूत्र समझ लें–
कि जो मैं हूं, जैसा मैं हूं, जहां मैं हूं,
उसी तरह के संबंध मेरे निर्मित हो सकते हैं।
अगर मैं मानता हूं मैं शरीर हूं,
तो मेरे संबंध केवल उनसे ही हो सकते हैं जो शरीर हैं।
अगर मैं मानता हूं कि मैं मन हूं,
तो मेरे संबंध उनसे होंगे
जो मानते हैं कि वे मन हैं।
अगर मैं मानता हूं कि मैं चेतना हूं,
तो मेरे संबंध उनसे हो सकेंगे
जो मानते हैं कि वे चैतन्य हैं।
अगर मैं परमात्मा से संबंध जोड़ना चाहता हूं,
तो मुझे परमात्मा की तरह ही
शून्य और निराकार हो जाना पड़ेगा
जहां मैं की कोई ध्वनि भी न उठती हो।
क्योंकि 'मैं' आकार देता है।
वहां सब शून्य होगा तो ही मैं शून्य से जुड़ पाऊंगा।
भीतर मैं निराकार हो जाऊं,
तो ही बाहर के निराकार से जुड़ पाऊंगा।
जिससे जुड़ना हो,
वैसे ही हो जाने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।
जिसको खोजना हो,
वैसे ही बन जाने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

**–ओशो, अमृत कण**

# शांति व प्रीति का सूत्रः हृदय का विकास

महर्षि पतंजलि का योग सूत्र–'आनंदित व्यक्ति के प्रति मैत्री, दुखी व्यक्ति के प्रति करुणा, पुण्यवान के प्रति मुदिता तथा पापी के प्रति उपेक्षा–इन भावनाओं का संवर्धन करने से मन शांत हो जाता है।'

इससे पहले कि तुम इस सूत्र को समझो, बहुत सारी चीजें समझ लेनी हैं। पहली, स्वाभाविक मनोवृत्ति–जब कभी तुम किसी को प्रसन्न देखते हो, तो तुम अनुभव करते हो ईर्ष्या, प्रसन्नता नहीं, प्रसन्नता हरगिज नहीं। तुम दुखी अनुभव करते हो। यह है स्वाभाविक–मनोवृत्ति। यह अभिवृत्ति तुम्हारे पास पहले से ही है। और पतंजलि कहते हैं मन शांत हो जाता है, प्रसन्न के प्रति मित्रता का भाव करने से। यह बहुत कठिन है, जो प्रसन्न है उसके साथ मैत्रीपूर्ण होना जीवन की सर्वाधिक कठिन बातों में से एक है।

साधारणतया तुम सोचते हो, यह बहुत सरल है। यह सरल नहीं है। ठीक इसके विपरीत है अवस्था। तुम ईर्ष्या अनुभव करते हो, तुम दुखी अनुभव करते हो। हो सकता है तुम प्रसन्नता दर्शाओ, लेकिन वह मात्र एक ऊपरी बात होती है; एक दिखावा, एक मुखौटा होता है। कैसे प्रसन्न हो सकते हो तुम? कैसे हो सकते हो तुम शांत, मौन, यदि तुम्हारी ऐसी भावावस्था हो तो?

सारा जीवन उत्सव है, संसार भर में लाखों प्रसन्नताएं घटित हो रही हैं, लेकिन यदि तुम्हारी मनोवृत्ति ईर्ष्या की है तो तुम दुखी होओगे, तुम सतत एक नरक में होओगे। और तुम महा–नरक में जीओगे क्योंकि सब ओर स्वर्ग है। तुम स्वयं के लिए एक नरक निर्मित कर लोगे–एक निजी नरक–क्योंकि सारा अस्तित्व उत्सव मना रहा है।

यदि कोई प्रसन्न होता है तो सबसे पहले मन में क्या बात आती है? ऐसा लगता है जैसे कि प्रसन्नता तुमसे छीन ली गयी हो, जैसे कि वह जीत गया और तुम हार गये हो, जैसे कि उसने तुम्हें छल लिया हो। प्रसन्नता कोई प्रतियोगिता नहीं है, अतः चिंतित मत होना। यदि कोई प्रसन्न होता है, इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम प्रसन्न नहीं हो सकते, कि उसने ले ली तुम्हारी प्रसन्नता इसलिए अब तुम प्रसन्न नहीं हो सकते। प्रसन्नता का कहीं एक जगह भण्डार नहीं रखा है। अतः यह प्रसन्न व्यक्तियों द्वारा खत्म नहीं की जा सकती है।

तुम क्यों अनुभव करते हो ईर्ष्या? यदि कोई धनवान है, तो हो सकता है तुम्हारे लिए धनवान होना कठिन हो जाए, क्योंकि धन–दौलत परिमाण में विद्यमान होता है। यदि कोई व्यक्ति भौतिक ढंग से शक्तिशाली है, तो शायद तुम्हारे लिए कठिन हो

शक्तिशाली होना क्योंकि शक्ति के लिए प्रतियोगिता होती है। लेकिन प्रसन्नता कोई प्रतियोगिता नहीं है। प्रसन्नता मौजूद है अपरिसीम मात्रा में। कोई व्यक्ति कभी इसे समाप्त करने के योग्य नहीं हुआ; प्रतियोगिता बिल्कुल ही नहीं है। यदि कोई व्यक्ति प्रसन्न होता है तो क्यों तुम ईर्ष्या अनुभव करते हो? और ईर्ष्या के साथ नरक तुममें प्रवेश करता है।

पतंजलि कहते हैं, जब कोई व्यक्ति प्रसन्न हो, तो प्रसन्नता अनुभव करो, मैत्रीपूर्ण अनुभव करो। तब तुम्हारे भीतर तुम भी द्वार खोलते हो प्रसन्नता की ओर। जो प्रसन्न होता है उसके प्रति तुम अगर मैत्रीपूर्ण अनुभव कर सकते हो, तो सूक्ष्म ढंग से तुरंत तुम उसकी प्रसन्नता में हिस्सेदार बनने लगते हो; वह तुम्हारी भी हो जाती है, तत्क्षण ही। और प्रसन्नता कोई ऐसी चीज नहीं है कि कोई उससे चिपका रह सके। तुम उसे बांट सकते हो। जब एक फूल खिलता है, तो तुम उसमें हिस्सेदार बन सकते हो। जब कोई पक्षी चहचहाता है, तुम उसमें हिस्सा ले सकते हो। जब कोई व्यक्ति प्रसन्न होता है, तो तुम उसमें हिस्सा ले सकते हो।

और इसका सौंदर्य ऐसा है कि यह उस व्यक्ति के बांटने पर निर्भर नहीं करता है। यह तुम्हारे उसमें सम्मिलित होने पर निर्भर है।

यदि उसके बांटने पर निर्भर करता, कि वह बांटता है या नहीं, तब यह बिल्कुल ही अलग बात होती। हो सकता है वह बांटना पसंद न करे। लेकिन इसका तो कोई सवाल ही नहीं; यह उसके बांटने पर निर्भर नहीं करता है। जब प्रातः सूर्योदय होता है तो तुम प्रसन्न हो सकते हो, और सूर्य इस विषय में कुछ नहीं कर सकता है। वह तुम्हें प्रसन्न होने से रोक नहीं सकता है। कोई प्रसन्न है, तुम मैत्रीपूर्ण हो सकते हो। यह समग्र रूपेण तुम्हारा अपना भाव है, और वह अपनी प्रसन्नता न बांटकर तुम्हें रोक नहीं सकता है। तुरंत तुम खोल देते हो द्वार, और उसकी प्रसन्नता तुम्हारी ओर भी प्रवाहित हो जाती है। अपने चारों ओर स्वर्ग निर्मित कर लेने का यही राज है। और केवल स्वर्ग में तुम शांत हो सकते हो। नरक की ज्वाला में कैसे तुम शांत हो सकते हो? और कोई दूसरा निर्मित नहीं कर रहा है उसे, तुम कर रहे हो निर्मित। अतः बुनियादी बात समझ लेनी है कि जब कभी दुख हो, नरक हो, तुम्हीं हो उसके कारण। कभी किसी दूसरे पर जिम्मेदारी मत फेंकना क्योंकि वह जिम्मेदारी का फेंकना आधारभूत सत्य से भागना है।

यदि तुम दुखी हो, तो केवल तुम, नितांत तुम ही जिम्मेवार हो। भीतर देखो और उसका कारण ढूंढो। और कोई दुखी नहीं होना चाहता है। यदि तुम तुम्हारे स्वयं के भीतर कारण खोज लो, तो तुम उसे बाहर फेंक सकते हो। कोई तुम्हारे रास्ते में नहीं खड़ा है तुम्हें रोकने को। कोई भी बाधा नहीं है तुम्हें प्रसन्न होने से रोकने के लिए।

प्रसन्न व्यक्तियों के प्रति मैत्रीपूर्ण होने से तुम प्रसन्नता के साथ अपना स्वर साध लेते हो। वे खिल रहे हैं और तुम मित्रता से भर जाते हो। हो सकता है वे न हों मैत्रीपूर्ण; इससे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं। हो सकता है वे तुम्हें जानते भी न हों, इससे कुछ नहीं होता। लेकिन जहां कहीं खिलाव है, जहां आनंद है, जहां कोई खिल रहा है, जब कोई नाच रहा है और खुश है और मुस्करा रहा है, जहां कहीं उत्सव है, तुम स्नेहपूर्ण हो जाओ, तुम उसके हिस्से बन जाओ। तब वह तुम्हारे भीतर प्रवाहित होने लगता है। और कोई नहीं रोक सकता उसे। और जब तुम्हारे चारों ओर प्रसन्नता होती है, तुम शांत अनुभव करते हो।

पतंजलि कहते हैं-

'प्रसन्न व्यक्ति के प्रति मैत्रीपूर्ण भावना का संवर्धन करने से मन शांत हो जाता है।'

जबकि प्रसन्न व्यक्ति के साथ तुम ईर्ष्या अनुभव करते हो- एक सूक्ष्म प्रतियोगिता के रूप में। प्रसन्न लोगों के साथ तुम स्वयं को निम्न अनुभव करते हो। तुम सदा आस-पास रहने के लिए उन लोगों को चुन लेते हो जो अप्रसन्न हैं। तुम मित्रता बनाते हो अप्रसन्न व्यक्तियों के साथ क्योंकि अप्रसन्न व्यक्तियों के साथ तुम अपने को ऊंचा अनुभव करते हो। तुम हमेशा उसको चुन लेते हो जो तुमसे नीचे है। तुम हमेशा अधिक ऊंचे से भयभीत हो जाते हो; तुम हमेशा किसी निम्न को चुन लेते हो। और जितना तुम ज्यादा निम्न को चुनते हो, उतना नीचे तुम गिरोगे। तब फिर और ज्यादा निम्न व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

उनका साथ खोजो जो तुमसे ज्यादा ऊंचे हों-विवेक में ऊंचे, प्रसन्नता में ऊंचे, शांति में, मौन में, अखंडता में। हमेशा ज्यादा ऊंचे का साथ खोज लेना क्योंकि उसी तरह से तुम ज्यादा ऊंचे उठ सकते हो। तुम घाटियों के पार हो सकते हो और ऊंचे शिखरों तक पहुंच सकते हो। यह बात सीढ़ी बन जाती है। सदा ज्यादा ऊंचे का साथ खोज लेना, सुंदर का, प्रसन्न का साथ। तब तुम भी ज्यादा सुंदर हो जाओगे; ज्यादा प्रसन्न हो जाओगे।

और एक बार रहस्य जान लिया जाता है, एक बार तुम जान लेते हो कि कैसे कोई ज्यादा प्रसन्न होता है, कि कैसे तुम दूसरों की प्रसन्नता के साथ अपने लिए भी प्रसन्न होने की स्थिति निर्मित कर सकते हो, फिर कोई अड़चन नहीं रहती। तब तुम जितना चाहो उतना आगे बढ़ सकते हो। तुम बन सकते हो भगवान, जिसके लिए अप्रसन्नता अस्तित्व ही नहीं रखती।

कौन होता है भगवान? वह होता है भगवान जिसने जान लिया है यह रहस्य, कि

संपूर्ण विश्व के साथ, प्रत्येक फूल के साथ और प्रत्येक नदी के साथ और प्रत्येक चट्टान के साथ और प्रत्येक तारे के साथ किस प्रकार प्रसन्न रहना है। वह जो इस सतत चिरंतन उत्सव के साथ एक हो गया है; जो उत्सव मनाता है, जो चिंता में नहीं पड़ता कि यह किसका उत्सव है। जहां कहीं होता है उत्सव, वह भाग लेता है। प्रसन्नता में भाग लेने की यह कला बुनियादी बातों में से एक बात है–यदि तुम प्रसन्न होना चाहते हो तो इसी का अनुसरण करना है।

तुम बिल्कुल विपरीत बात करते रहे हो। यदि कोई प्रसन्न होता है, तो तुरंत तुम्हें झटका लगता है कि यह कैसे संभव है? तुम प्रसन्न नहीं हो और वह कैसे प्रसन्न हो गया है? यह तो अन्याय हुआ। यह सारा संसार तुम्हें धोखा दे रहा है और परमात्मा कहीं है नहीं। यदि परमात्मा है तो यह कैसे हुआ कि तुम अप्रसन्न हो और दूसरे प्रसन्न हुए जा रहे हैं? और ये व्यक्ति जो प्रसन्न हैं, वे शोषक हैं, चालाक हैं, धूर्त हैं। वे तुम्हारे रक्त पर पलते हैं। वे दूसरों की प्रसन्नता चूस रहे हैं।

कोई किसी की प्रसन्नता नहीं चूस रहा है। प्रसन्नता एक ऐसी घटना है कि उसे चूसने की कोई जरूरत नहीं है। यह एक आंतरिक खिलना है; यह बाहर से नहीं आता है। प्रसन्न व्यक्तियों के साथ प्रसन्न होने मात्र से तुम वह स्थिति निर्मित कर लेते हो जिसमें तुम्हारा अपना अंतर्पुष्प खिलने लगता है।

पतंजलि कहते हैं–

'मन शांत होता है, मित्रता की मनोवृत्ति का संवर्धन करने से... ।'

पर तुम निर्मित कर लेते हो शत्रुता की मनोवृत्ति। तुम उदास व्यक्ति के साथ मित्रता अनुभव करते हो, और तुम सोचते हो यह बहुत धार्मिक बात है। तुम उस के साथ मित्रता अनुभव करते हो जो निराश होता है, दुख में होता है। और तुम सोचते हो यह कोई धार्मिक आचरण है, कोई नैतिकता है। लेकिन तुम क्या कर रहे हो, तुम्हें पता नहीं।

जब तुम मित्रता अनुभव करते हो उसके साथ जो उदास होता है, निराश, अप्रसन्न, दुखी होता है तो तुम स्वयं के लिए दुख निर्मित कर लेते हो। पतंजलि का यह विचार बहुत अधार्मिक मालूम पड़ता है। किंतु ऐसा नहीं है, क्योंकि जब तुम उनका संपूर्ण दृष्टिकोण समझोगे तो तुम उसे अनुभव करोगे जो प्रयोजन उनका है। वे अत्यंत वैज्ञानिक हैं। वे कोई भावुक व्यक्ति नहीं हैं, और भावुकता तुम्हारी मदद न करेगी।

तुम्हें बहुत साफ, स्पष्ट होना है '... दुखी के प्रति करुणा... '। मित्रता नहीं, करुणा। करुणा एक भिन्न गुणवत्ता है और मित्रता एक अलग ही गुणवत्ता है। मैत्रीपूर्ण होने का अर्थ है, तुम एक स्थिति निर्मित कर रहे हो जिसमें कि तुम वही होना चाहोगे

जैसा दूसरा व्यक्ति है। तुम उसी भांति होना चाहोगे जैसा तुम्हारा मित्र है। करुणा का अर्थ है कि कोई अपनी अवस्था से गिर गया है। तुम उसकी मदद करना चाहते हो, किंतु उसकी भांति नहीं होना चाहोगे। तुम उसे हाथ दे देना चाहोगे, तुम उसका ध्यान रखना चाहोगे, उसे प्रसन्न करना चाहोगे लेकिन तुम उस भांति नहीं होना चाहोगे क्योंकि वह कोई सहायता न होगी।

कोई रो रहा है और बिलख रहा है, और तुम निकट बैठ जाते हो और तुम रोना-चीखना शुरु कर देते हो-क्या तुम उसकी मदद कर रहे हो? किस ढंग की है यह मदद? यदि कोई दुखी है और तुम भी दुखी हो जाओ, तो क्या तुम उसकी मदद कर रहे हो? तुम तो उसका दुख दुगुना कर रहे हो। वह अकेला ही दुखी था; अब दो व्यक्ति हो गये हैं, जो दुखी हैं। बल्कि दुखी के प्रति सहानुभूति प्रकट करने से तो तुम फिर एक चालाकी चल रहे होते हो। तुम दुखी के प्रति सहानुभूति दिखाते हो, किंतु ध्यान रहे, गहरे में सहानुभूति कोई करुणा नहीं है, सहानुभूति मैत्रीपूर्ण बात है। जब तुम सहानुभूति और मित्रता दिखाते हो निराश, उदास, दुखी व्यक्ति के प्रति, तो गहरे तल पर तुम प्रसन्नता अनुभव कर रहे होते हो। वहां हमेशा प्रसन्नता की अंतर्धारा होती है। क्योंकि यह एक सीधा-साफ गणित है-जब कोई व्यक्ति प्रसन्न होता है, तुम दुखी अनुभव करते हो; अतः जब कोई दुखी होता है, गहरे तल पर तुम बहुत खुशी अनुभव करते हो।

लेकिन तुम यह बात दर्शाते नहीं। यदि गहराई से ध्यानपूर्वक देखो, तो सहानुभूति प्रकट करते समय ऐसा पाया जायेगा कि तुम्हारी सहानुभूति में भी प्रसन्नता की सूक्ष्म धारा है। तुम अच्छा अनुभव करते हो कि सहानुभूति दिखाने की स्थिति में हो। वस्तुतः तुम प्रसन्न अनुभव करते हो कि तुम्हारी हालत अच्छी है। तुम ज्यादा ऊंचे हो, बेहतर हो। लोग हमेशा अच्छा अनुभव करते हैं जब वे दूसरों के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं। वे हमेशा इस बात से खुश हो जाते हैं। गहरे तौर पर वे अनुभव करते हैं कि हम कम दुखी हैं, कृपा है परमात्मा की हम अभी जिंदा हैं। और सहानुभूति प्रकट कर सकते हैं। इसमें कोई कीमत नहीं लगती। सहानुभूति दिखाने में कुछ खर्च नहीं होता। लेकिन करुणा एक अलग बात है। करुणा का अर्थ है कि तुम दूसरे व्यक्ति की मदद करना चाहोगे। तुम वह सब करना चाहोगे जो कुछ भी किया जा सकता है। उसे उसके दुख से बाहर लाने में तुम उसकी मदद करना चाहोगे। तुम उसके कारण प्रसन्न नहीं हो, किंतु तुम दुखी भी नहीं हो।

ठीक इन दोनों के बीच है करुणा। बुद्ध करुणामय हैं। वे तुम्हारे साथ दुखी अनुभव नहीं करेंगे क्योंकि उससे किसी को मदद नहीं मिलने वाली। और वे प्रसन्न भी

नहीं अनुभव करेंगे। क्योंकि प्रसन्नता अनुभव करने में कोई तुक नहीं है। जब कोई दुखी ही न हो, तो वह कैसे प्रसन्न अनुभव कर सकता है? लेकिन वे अप्रसन्न भी अनुभव नहीं कर सकते क्योंकि उससे मदद नहीं मिलने वाली। वे करुणा अनुभव करेंगे। करुणा है ठीक इन दोनों के बीच में। करुणा का अर्थ है, तुम्हारे दुख में से तुम्हें बाहर लाने में मदद करना चाहेंगे। करुणा का अर्थ है, वे तुम्हारे लिए हैं, लेकिन विरुद्ध हैं तुम्हारे दुख के। वे तुम्हें प्रेम करते हैं, तुम्हारे दुख को नहीं। वे तुम पर ध्यान देना चाहेंगे, लेकिन तुम्हारे साथ लगे तुम्हारे दुख पर नहीं।

हमेशा खोज लेना मन के गति–विज्ञान को। केवल तभी तुम्हारा रूपांतरण होगा; अन्यथा नहीं।

'मन शांत होता है आनंदित के प्रति मित्रता, दुखी के प्रति करुणा, पुण्यवान के प्रति मुदिता... ।' जरा ध्यान दो। पतंजलि सीढ़ियां बना रहे हैं। सुंदर और बहुत सूक्ष्म सीढ़ियां, लेकिन एकदम वैज्ञानिक। 'पुण्यवान के प्रति प्रसन्नता, पापी के प्रति उपेक्षा।'

जब तुम अनुभव करते हो कि कोई भला, धार्मिक व्यक्ति है, प्रसन्नचित है, तो साधाारण रवैया यही होता है कि वह जरूर धोखा दे रहा होगा। कैसे कोई तुमसे ज्यादा भला हो सकता है? इसलिए इतनी ज्यादा आलोचना चलती रहती है। जब कभी कोई ऐसा व्यक्ति होता है जो कि भला और गुणवान होता है, तुम तुरंत आलोचना करना शुरु कर देते हो, तुम उसकी बुराईयां खोजने में लग जाते हो। किसी न किसी तरह तुम्हें उसे नीचे लाना होता है। वह भला आदमी हो नहीं सकता। तुम यह मान नहीं सकते।

पतंजलि कहते हैं, 'पुण्यवान के प्रति प्रसन्नता', क्योंकि अगर तुम पुण्यवान व्यक्ति की आलोचना करते हो, तो गहरे तल पर तुम पुण्य की आलोचना कर रहे होते हो। अगर तुम अच्छे आदमी की आलोचना कर रहे हो, तो तुम उस बिंदु तक पहुंच रहे हो जहां तुम मानोगे कि इस संसार में अच्छाई असंभव है। तब तुम निश्चिंत अनुभव करोगे। तब तुम अपने दुष्ट तरीकों द्वारा आसानी से चलोगे।

नकारात्मक का सदा ही सरलता से विश्वास कर लिया जाता है क्योंकि वह तुम्हारे अहंकार को पोषित कर रहा होता है। विधायक पर विश्वास नहीं होता।

'पुण्यवान के प्रति मुदिता (प्रसन्नता) और बुरे के प्रति उपेक्षा।'

निंदा भी मत करना बुराई की। निंदा करने का प्रलोभन तो होगा। तुम अच्छाई की भी निंदा करना चाहोगे। लेकिन पतंजलि कहते हैं बुराई की निंदा मत करना। क्यों? वे मन के आंतरिक गति–तंत्र को जानते हैं कि यदि तुम बुराई की बहुत ज्यादा निंदा करते हो, तो तुम बहुत ज्यादा ध्यान देते हो बुराई पर। और धीरे–धीरे तुम ताल–मेल

बिठा लेते हो उसके साथ, जिस किसी पर तुम ध्यान देते हो। यदि तुम कहते हो, 'यह गलत है', 'वह गलत है' तो तुम गलत पर बहुत ज्यादा ध्यान दे रहे हो। तुम गलत के साथ आसक्त हो जाओगे। यदि तुम किसी चीज पर बहुत ज्यादा ध्यान देते हो, तो तुम सम्मोहित हो जाते हो। और जिस किसी चीज की तुम निंदा कर रहे हो, तुम उसे करोगे। क्योंकि वह बात एक आकर्षण बन जायेगी, एक गहन आकर्षण। अन्यथा क्यों चिंता करनी? वे दुष्ट हैं, पापी हैं, लेकिन तुम कौन होते हो उनके बारे में चिंता करने वाले?

जीसस कहते हैं, 'तुम मूल्यांकन मत करना।' यह अर्थ करते हैं पतंजलि उपेक्षा का–किसी भी ढंग से आलोचना मत करना, तटस्थ बने रहना।

ऐसा हुआ कि विवेकानंद अमेरीका जाने से पहले और संसार–प्रसिद्ध व्यक्ति बनने से पहले, जयपुर के महाराजा के महल में ठहरे थे। वह महाराजा भक्त था विवेकानंद और रामकृष्ण का। जैसे कि महाराजा करते हैं, जब विवेकानंद उसके महल में ठहरने आये, उसने इसी बात पर बड़ा उत्सव आयोजित कर दिया। उसने स्वागत–उत्सव पर नाचने और गाने के लिए वेश्याओं को भी बुला लिया। अब जैसा महाराजाओं का चलन होता है; उनके अपने ढंग के मन होते हैं। वह बिल्कुल भूल ही गया कि नाचने–गाने वाली वेश्याओं को लेकर सन्यासी का स्वागत करना उपयुक्त नहीं है। पर कोई और ढंग वह जानता नहीं था। उसने हमेशा यही जाना था कि जब किसी का स्वागत करना हो, तो शराब, संगीत, नाच–गान, यही सब चलना चाहिए।

विवेकानंद अभी परिपक्व न हुए थे, वह अब तक पूरे सन्यासी न हुए थे। यदि वे पूरे सन्यासी होते, यदि तटस्थता बनी रहती, तो फिर कोई समस्या ही न उठती; लेकिन वे तब तक तटस्थ नहीं हुए थे। वे उतने गहरे नहीं उतर पाए थे पतंजलि में। युवा थे, और बहुत दमनात्मक व्यक्ति थे। अपनी कामवासना और हर भावना दबा रहे थे। जब उन्होंने वेश्याओं को देखा तो अपना कमरा बंद कर लिया और बाहर ही न आए। महाराजा आया और उसने क्षमा चाही उनसे। वह बोला, 'हम जानते न थे। इससे पहले हमने किसी सन्यासी के लिए उत्सव आयोजित नहीं किया। हम हमेशा राजाओं का अतिथि–सत्कार करते हैं, इसलिए हमें राजाओं के ढंग ही मालूम हैं। हमें अफसोस है, पर अब तो यह बहुत अपमानजनक बात हो जायेगी, क्योंकि यह सबसे बड़ी वेश्या है इस देश की, और बहुत महंगी है। और हमने इसे इसका रुपया दे दिया है। उसे यहां से हटने को और चले जाने को कहना तो अपमानजनक होगा। और अगर आप नहीं आते तो वह बहुत ज्यादा चोट महसूस करेगी। इसलिए बाहर आएं।' किंतु विवेकानंद भयभीत थे बाहर आने में इसलिए मैं कहता हूं कि वे तब तक अप्रौढ़ थे, पक्के सन्यासी न

हुए थे। अभी भी तटस्थता मौजूद नहीं थी, मात्र निंदा थी। एक वेश्या?–वे बहुत क्रोध में बोले, 'नहीं।' तब वेश्या ने गाना शुरु कर दिया उनके आये बिना ही। और उसने गाया एक सन्यासी का गीत। गीत बहुत सुंदर है। गीत कहता है, 'मुझे मालूम है कि मैं तुम्हारे योग्य नहीं, फिर भी तुम तो जरा ज्यादा करुणामय हो सकते थे। मैं लोहा हूं, मगर तुम तो पारस हो; पारस को क्या चिंता? मैं राह की धूल सही; यह मालूम है मुझे। लेकिन तुम्हें तो मेरे प्रति इतना विरोधात्मक नहीं होना चाहिए। मैं कुछ नहीं हूँ, मैं अज्ञानी हूँ, एक पापी। पर तुम तो पवित्र आत्मा हो, तो क्यों मुझसे भयभीत हो तुम?'

कहते हैं, विवेकानंद ने अपने कमरे में सुना। वह वेश्या रो रही थी और गा रही थी, उन्होंने अनुभव किया... उस पूरी स्थिति को अनुभव किया उन्होंने कि वे क्या कर रहे थे। बात अप्रौढ़ थी, बचकानी थी। क्यों हों वे भयभीत? यदि तुम आकर्षित हो तो ही भय होता है। केवल तभी स्त्री से भयभीत होओगे यदि स्त्री के आकर्षण में बंधे हुए हो। यदि तुम आकर्षित नहीं हो तो भय तिरोहित हो जाता है। भय है क्या? तटस्थता आती है निर्विरोध होने से।

वे स्वयं को रोक न सके, इसलिए उन्होंने खोल दिये द्वार। वे पराजित हुए थे वेश्या के द्वारा। वेश्या विजयी हुई थी; उन्हें बाहर आना ही पड़ा। वे आये और बैठ गये। बाद में उन्होंने अपनी डायरी में लिखा, 'ईश्वर द्वारा एक नया प्रकाश दिया गया मुझे। भयभीत था मैं। जरूर कोई लालसा रही होगी मेरे भीतर, इसलिए डरा हुआ था मैं। किंतु उस स्त्री ने मुझे पूरी तरह पराजित कर दिया, और मैंने कभी नहीं देखी ऐसी विशुद्धआत्मा। वे अश्रु इतने निर्दोष थे और वह नृत्य–गान इतना पावन था कि मैं चूक गया होता। और उसके समीप बैठे हुए, पहली बार मैं सजग हो सका कि बात उसकी नहीं जो बाहर होता है। महत्व उसी का है कि भीतर क्या है?'

उस रात उन्होंने लिखा अपनी डायरी में, 'अब मैं उस स्त्री के साथ बिस्तर में सो भी सकता था और कोई भय न होता।' वे उसके पार जा चुके थे। उस वेश्या ने उन्हें मदद दी पार जाने में। यह एक अद्‌भुत घटना थी। रामकृष्ण न पहुंचा सके मदद, लेकिन एक वेश्या ने कर दी सहायता।

अतः कोई नहीं जानता कहां से मदद आयेगी। कोई नहीं जानता, क्या है बुरा और क्या है अच्छा? कौन कर सकता है तय? मन दुर्बल है और निस्सहाय है। इसलिए कोई दृष्टिकोण तय मत कर लेना। यही है अर्थ तटस्थ होने का।

**–ओशो, पतंजलि योग सूत्र, भाग–1, प्रवचन–19**

# मैत्री भाव, आनंद भाव, समता भाव

सारे जगत के लिए हो–मैत्री भाव। मनुष्य इसके पहले कि निर्भाव हो, इसके पहले कि उसके सारे भाव शून्य और समाप्त हो जाएं, कुछ भाव हैं जो उसकी चित्त की अशांति और उद्विग्नता को बढ़ाते हैं। कुछ भाव हैं जो उसकी चित्त की शांति को, समता को लाने में सहयोगी होते हैं और भूमिका बन सकते हैं ध्यान के लिए। वैसे तीन भावों की मैं आपसे चर्चा करूंगा। उनका भी थोड़ा प्रयोग जीवन में करेंगे, तो उपयोगी होगा।

सबसे पहले तो हमारे बाहर जो जगत है उसके प्रति एक भाव। उसके बाद हमारे कर्मों का जो जगत है उसके प्रति एक भाव। और सबसे अंत में हमारी संवेदनाओं का जो जगत है उसके प्रति एक भाव। हमारे बाहर तीन जगत हमें घेरे हुए हैं। एक तो वस्तुओं और व्यक्तियों का जगत है, जो हमारे चारों तरफ फैला हुआ है। उसके बाद हम जो कर्म करते हैं उनकी एक पर्त है, उनका एक जगत है, वह हमें घेरे हुए है। उसके बाद जो सुख–दुख की संवेदनाएं हमें छूती हैं, स्पर्श करती हैं, उनका एक जगत है, वह हमें घेरे हुए है। ऐसी तीन पर्तें हमें घेरे हुए हैं। इन तीनों पर्तों के लिए तीन भावनाएं, ध्यान के लिए सहयोगी हैं।

समस्त जगत के प्रति मैत्री भाव सहयोगी है। वह जो महावीर ने कहा : मित्ति मे सव्वभूएषु, वैरं मज्झ न केणई–मेरा किसी से वैर नहीं, मेरी इस सारे जगत से मैत्री है। यह भाव अगर हम साधें, अगर यह भाव हमारे चित्त में परिव्याप्त हो जाए, तो शून्य में और समाधि में जाने में हमें सहयोगी होगा। ऐसा मत सोचना कि यह भाव जगत के लिए सहयोगी है। जगत के लिए तो गौण अर्थ में सहयोगी है, स्वयं साधक के लिए सहयोगी है। आप जितने वैर से भरे हैं जगत के प्रति, उतने ही आप अशांत होंगे। आपके चित्त में जितना वैमनस्य और जितना दूसरों के प्रति दुर्भाव है, उतने ही ज्यादा आप अशांत होंगे।

थोड़ी कल्पना करें, अभी केवल कल्पना ही करें कि सारे जगत में जो भी हैं वे सब आपके मित्र हैं। सिर्फ कल्पना ही करें, समझ लें कि सारे जगत में आपके मित्र ही व्याप्त हैं। सारे पशु–पक्षी और पौधे, सारे मनुष्य, सारे प्राणी आपके प्रति मैत्री रखते हैं। कल्पना ही करें इस बात की केवल कि सारा जगत आपके प्रति मैत्री से भरा है और आप उस सारे जगत के प्रति मैत्री से भरे हैं। तो क्या आपके चित्त में शांति आनी प्रारंभ नहीं हो जाएगी? क्या अशांति का कारण कहीं वैर–भाव नहीं है? कहीं दुर्भाव नहीं है?

ध्यान की भूमिका में भाव के तल पर सारे जगत के प्रति मैत्री की धारणा बहुत बहुमूल्य है।

कैसे करेंगे मैत्री की धारणा? बहुत सरल है। मैत्री की धारणा से ज्यादा सरल कुछ भी नहीं। वास्तविक मैत्री की स्थिति तो ध्यान के बाद उपलब्ध होगी। वास्तविक मैत्री और प्रेम की स्थिति तो ध्यान के बाद उपलब्ध होगी, वह तो ध्यान का परिणाम होगी। लेकिन ध्यान के पूर्व मैत्री का भाव आपको शांति में, प्रगाढ़ शांति में ले जाने में सहयोगी हो जाएगा।

जब ध्यान के लिए बैठें, रास्ते पर चलें, उठें, भीड़ में जाएं, एकांत में जाएं, पर्वत पर हों, झील पर हों, दरख्तों के नीचे हों, तब अपने आसपास एक मैत्री का घेरा बनाएं। और अनुभव करें कि आपके आसपास मैत्री परिव्याप्त हो रही है; आप सबके प्रति, जो भी आपके आसपास हैं, प्रेम से भरे हुए हैं। इसका एक भाव-घेरा आरोपित कर लें।

दरख्त को देखें तो अनुभव करें कि आप उसके प्रति प्रेम और मैत्री से भरे हैं। और पक्षियों को देखें तो उनके प्रति अनुभव करें कि आप उनके प्रति मैत्री से भरे हैं और आपके हृदय से उनकी तरफ मैत्री प्रवाहित हो रही है। लोगों के पास भी जब उठें तो ऐसा अनुभव करें। आप थोड़े ही दिनों में अनुभव करेंगे–आपके चारों तरफ एक मैत्री का घेरा फैलता चला जा रहा है। और जिस मात्रा में आपके चारों तरफ मैत्री का सागर लहरें लेने लगेगा, उसी मात्रा में आपके भीतर अशांति का जो सागर लहरें ले रहा है वह शांत होता चला जाएगा।

अगर आप यह मैत्री का भाव रात्रि को सोते समय करके सो जाएं–सारे जगत के प्रति मैत्री का निवेदन करके, सारे जगत के प्रति यह भाव करके कि मैं उसके प्रति प्रेम से, मैत्री से भरा हूं और यह अनुभव करके कि मेरे भीतर से सारे जगत के प्रति मैत्री प्रवाहित हो रही है–आप सुबह एक अभिनव शांति में जागेंगे। सुबह उठकर भी इस भाव को दोहरा लें, अपने मन में इस भाव को आरोपित कर लें कि सबके प्रति मेरी मैत्री है। इस भाव को चौबीस घंटे... सतत... जब भी स्मरण आए, अपने से बाहर प्रवाहित होने दें। यह एक अद्‌भुत काम करेगा। यह उस दूसरे भाव को–हिंसा के और विरोध के और वैमनस्य के, जो आपमें सतत जागता है–उस नकारात्मकता को क्षीण करेगा, उसे विलीन कर देगा। और उसके कारण जो अशांति और क्रोध चित्त को व्यथित करते हैं और मथ डालते हैं, वे विलीन हो जाएंगे। और भी एक आश्चर्य की बात है, जो प्रयोग करेंगे तो आपको समझ में आएगी। एक बड़ी अद्‌भुत बात है कि हमारी भावनाएं संवेदित हो जाती हैं और हमारी भावनाएं दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करती हैं और स्पर्श कर लेती हैं।

अगर आप किसी के प्रति बहुत प्रेम और मैत्री से भरे हैं, अगर आपके भाव उसके प्रति वैमनस्य और विरोध के नहीं हैं, तो आप अनिवार्यतः पाएंगे, उसके हृदय में भी आपके प्रति मैत्री के भाव संवेदित हो रहे हैं, वे जाग रहे हैं। जो व्यक्ति सारे जगत के

प्रति मैत्री की भावनाएं फैलाता है और पेंफकता है, अनिवार्यतः सारे जगत का मैत्री भाव उसके प्रति प्रवाहित होने लगता है। हम जो पेंफकते हैं उसी को वापस ग्रहण कर लेते हैं। हम घृणा पेंफकते हैं, घृणा हम पर आरोपित हो जाती है। हम मैत्री पेंफकेंगे, मैत्री हम पर लौट आएगी। भाव के जगत में अनिवार्यतः वही वापस लौट आता है जो हमने पेंफका।

कल हम एक जगह गए थे। वह यहां की माथेरान की देखने की जगह 'इको पॉइन्ट' है। वहां जो हमारे साथ थे उन्होंने आवाज फेंकी, तो उन घाटियों से वह आवाज लौट कर चली आई। उन घाटियों ने कुछ भी नहीं जोड़ा, उन्होंने केवल उसको इको कर दिया, उसको प्रतिध्वनित कर दिया। हमने जो आवाज पेंफकी वह उन घाटियों ने वापस हम पर लौटा दी।

यह सारा जगत इको पॉइन्ट है। इसमें हम जो फेंकते हैं वही हम पर वापस लौट आता है। इसमें जो हम प्रतिध्वनित करते हैं वही वापस लौट कर हम पर, फिर हमें उपलब्ध हो जाता है। जिसे मैत्री चाहिए वह मैत्री को पेंफके, और जिसको प्रेम चाहिए वह प्रेम को लुटा दे, और जिसे फूल चाहिए वह रास्तों पर दूसरों के लिए फूल फैला दे। और यह केवल भाव न हो हमारा, यह हमारी जीवनचर्या में प्रविष्ट हो जाए और हमारी छोटी–छोटी बातों में परिलक्षित हो।

एक गुरु था, उसके तीन शिष्य उत्तीर्ण हुए थे। वे पच्चीस वर्ष के ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद अब जीवन में वापस लौट रहे थे। उस गुरु ने कहा, तुम्हारी एक परीक्षा और रह गई, वह मैं जाते समय ले लूंगा। वे विद्यार्थी राह देखते रहे, आखिर वह विदा का दिन भी आ गया और उनकी कोई परीक्षा नहीं हुई। सांझ को गुरु ने उन्हें विदा भी कर दिया। सूरज अस्त होने लगा और गुरु ने कहा, अब तो सूर्य अस्त होता है, तुम जाओ।

वे बहुत हैरान थे कि शायद गुरु भूल गए हैं वह अंतिम परीक्षा के लिए। उन्होंने अपनी–अपनी चटाइयां बांधी, अपने झोले लिए और वे चल दिए। सांझ चांद निकल आया, वे कोई दो–चार मील आश्रम से दूर चले आए हैं, जंगल में हैं, अब वे अपने गांव की तरफ हैं। और एक झाड़ी के पास बहुत से कांटे पड़े हुए हैं। पहला विद्यार्थी उसे छलांग करके निकल गया; दूसरा विद्यार्थी उसे बगल से काट कर निकल गया; तीसरे विद्यार्थी ने वे सारे कांटे उठा कर झाड़ी में डाले और तब आगे बढ़ा।

उन्होंने हैरान होकर देखा, गुरु उनका झाड़ी में छिपा है! और उसने उनसे कहा, जो दो छात्र आगे निकल गए हैं वे कृपा करके वापस लौट आएं। एक जिसने कांटे बीन कर अलग कर दिए हैं वह उत्तीर्ण हो गया। यह अंतिम परीक्षा थी।

रास्ते पर कांटा पड़ा है और अगर आप उसे बिना हटाए निकल जाते हैं, आप अहिंसक नहीं हैं और आपके मन में मैत्री भाव नहीं है। एक नुकीला पत्थर पड़ा है रास्ते

प्रतिध्वनित होगी, उतने बाहर से आने वाले अशांति के कारण विलीन होते चले जाएंगे।

तो पहली बात, भाव के जगत में मैत्री को, मैत्री भावना को थोड़ा सा विकसित करना सहयोगी होगा, भूमिका बनेगी, यह बाहर जो जगत व्याप्त है उसके संबंध में।

## कर्मों के बोझ से मुक्ति–आनंद भाव का उपाय

उसके बाद हमारे कर्मों का जो जगत है, जो हम रोज दिन–रात कर रहे हैं काम, उसके संबंध में भी एक भाव प्रगाढ़ कर लेना उपयोगी है। हम जो कर्म कर रहे हैं उन कर्मों में दो रास्ते हैं उन कार्यों को करने वेफ। एक रास्ता है कि उन कार्यों से हमें बाद में जो फल मिलेगा उसमें हमारी खुशी हो; और एक रास्ता है कि उन कर्मों के करने में हम आनंद का अनुभव करें। एक रास्ता है कि एक आदमी चित्र को बनाता हो, चित्र जब बन जाएगा और उसके दाम जो मिलेंगे वे उसे खुशी देंगे; और दूसरा रास्ता यह है कि चित्र बनाना उसका आनंद हो। हम अपने जीवन में करीब–करीब ऐसे काम कर रहे हैं जिन कामों में हमें कोई आनंद नहीं है। उन कार्यों के फलों में हमें आनंद है, कामों में कोई आनंद नहीं है।

मैं आपसे कहूँगा, कुछ ऐसे काम खोजें जो आपके लिए अपने में मूल्यवान हों, जिनका अपने में रस हो और अपना आनंद हो, जिनमें फल का प्रश्न न हो, जिन्हें करना ही एक खुशी और आनंद हो। और जिन कामों में आप इस तरह का अनुभव नहीं करते हैं उनमें भी क्रमशः इस भाव को प्रतिपादित करें, इस भाव की धारणा करें कि उन कामों की फलासक्ति, फल की तीव्र आकांक्षा क्षीण हो जाए और काम अपने में आनंद बन जाएं।

अगर इसका थोड़ा सा भाव–घेरा हम तैयार करें, भूमिका तैयार करें, तो आपको चित्त की शांति में पहुंचने में बड़ी तीव्र गहराई अपने–आप उत्पन्न होगी। आपकी आकांक्षाएं और कर्मों के फल की आकांक्षा आपको बहुत अशांत किए रहती है। आप कार्य करते समय कार्य करने में बिल्कुल उत्सुक नहीं होते, उसके बाद आने वाले परिणाम में उत्सुक होते हैं।

एक साधु को किसी ने पूछा, आपकी साधना क्या है? उसने कहा, मेरी साधना है–जब मैं कपड़े पहनता हूं तो इतने आनंद से पहनता हूं जैसे जगत में इससे बड़ा कोई आनंद नहीं है, और जब मैं स्नान करता हूं तो इतने आनंद से स्नान करता हूं जैसे जगत में इससे बड़ा कोई आनंद नहीं है, और जब रात्रि में सोने जाता हूं तो मैं सारे जगत के प्रति इतना अनुग्रह अनुभव करता हूं कि मुझे एक दिन और जीवन का मिला, और मैं इतने आनंद से सोता हूं जैसे सोने से बड़ा कोई आनंद नहीं है।

जीवन की छोटी–छोटी चीजों में जो आनंद को अनुभव नहीं कर सकेगा उसे कोई बड़े आनंद दुनिया में उपलब्ध नहीं होंगे। दुनिया में बड़े आनंद नहीं हैं। दुनिया में

पर और आप उसे बिना फिक्र किए निकल जाते हैं, आप किसी को चोट नहीं पहुंचाना चाहते, लेकिन आपको किसी को चोट से बचाने का मन नहीं है। ऐसा मनुष्य शांत नहीं हो सकता। ऐसे मनुष्य के भीतर अभी शांति की भूमिका बनने में कठिनाई है। उस पत्थर को हटाना, वह छोटा सा गेस्चर–वह रास्ते पर गिरे हुए पत्थर को हटा देने का, या एक कांटे को उठा देने का, इस जगत के प्रति आपकी मैत्री भावना को प्रतिवेदित करता है।

छोटी–छोटी बातें हैं जीवन में। उन छोटी–छोटी बातों पर थोड़ा विचार करें और देखें कि आप कुछ ऐसा तो नहीं कर रहे हैं जिसकी वजह से आप खुद अपनी अशांति के बीज बोते हैं?

एक महिला थीं ब्लावट्स्की, उसे लोग देखकर बहुत हैरान होते। वह जब भी सफर में चलतीं तो एक बड़ा झोला साथ में लिए रहतीं और कुछ खिड़की में से बाहर पेंफकतीं जातीं। किसी ने पूछा कि हमेशा जब आपको सफर में देखते हैं, झोले में आप क्या रखतीं हैं और खिड़कियों से बाहर क्या पेंफकतीं हैं?

उसने कहा, मुझे फूलों से प्रेम है और जिन रास्तों से मैं निकलती हूं उन पर फूलों के थोड़े से बीज पेंफक देतीं हूं। अभी वर्षा आएगी, अभी बादल घिरने लगे हैं और पानी गिरेगा, और दोनों तरफ के रास्ते फूलों से भर जाएंगे। कोई उन्हें देख कर मुस्कुराएगा, कोई उन्हें देख कर खुश होगा, किसी की आंख का आंसू सूख जाएगा, मेरी खुशी का ठिकाना नहीं। मुझे तो पता नहीं चलेगा, लेकिन मैं कल्पना करतीं हूं कि मेरे फूल किसी को अच्छे लगेंगे, किसी को प्रीतिकर लगेंगे। और इसलिए बीजों को मैं सड़कों के किनारों पर पेंफक देतीं हूं, कभी पानी गिरेगा, वे फूल बन जाएंगे।

मैं आपसे कहूंगा, मैत्री भाव सच में ही... एक कहावत है अंग्रेजी में : 'इट कॉस्ट्स नथिंग टु बी काइंड', दयालु होने के लिए कुछ खर्च नहीं करना होता। यह सच है, मैत्री भाव को फैलाने के लिए कुछ भी खर्च नहीं करना होता। घृणा को फैलाने के लिए बहुत कुछ खर्च करना होता है। जब आप किसी के प्रति घृणा से भरते हैं, आप बहुत महंगा काम कर रहे हैं–आप अपने को तोड़ रहे हैं, आप अपने को भीतर से दुख में डाल रहे हैं। और जब आप किसी के प्रति प्रेम और मैत्री को पेंफकते हैं, तो आप एक इतना सस्ता काम कर रहे हैं जिसमें आपका तो कुछ भी नहीं खो रहा, बल्कि कुछ मिल रहा है। आपके भीतर एक समता और शांति उत्पन्न होगी।

तो पहली बात, ध्यान के साधक को अगर सच में समाधि तक जाना है, तो उसे एक मैत्री भाव का घेरा, एक प्रेम का घेरा, जो कि बिल्कुल मुफ्त है, जिसे आप सहज प्रकट कर सकते हैं... । क्या खर्च होता है रास्ते पर से एक पत्थर को हटा देने में? और क्या खर्च होता है किसी के रास्ते पर दो फूल रख देने में? और क्या खर्च होता है इस सहज प्रेम में... जो हम अपने चारों तरफ परिव्याप्त कर सकते हैं? उसका परिणाम यह होगा–आपके भीतर, बाहर से मैत्री प्रतिध्वनित होगी। और जितनी मैत्री बाहर से

छोटे–छोटे आनंदों का इकट्ठा जोड़ बड़े आनंद को उत्पन्न कर देता है। और हमको सब चीजें छोटी मालूम होती हैं–कपड़ा पहनना, रास्ते पर चलना, चांद को देखना, एक फूल का खिलना–सब छोटी बातें हैं।

मैं आपको कहूंगा, ध्यान के साधक को अगर सच में भूमिका खड़ी करनी है तो उसे छोटी–छोटी बातों में आनंद को अनुभव करना शुरु करना चाहिए।

एक फूल खिल जाता है किनारे पर, हम उसे बिना देखे निकल जाते हैं? हम अंधे हैं! और हम उस फूल में जो खुशबू और जो आनंद परिव्याप्त हुआ है उसको एक क्षण प्रशंसा से भी नहीं देख पाते, उसके सौंदर्य को अनुभव भी नहीं कर पाते। एक छोटा सा फूल हो सकता है–एक क्षण उसको अनुभव करें, उस छोटे से फूल में आनंद को अनुभव करें। रात चांद से आकाश प्रकाशित होता है, तारे भर जाते हैं, कभी घना मखमली अंधेरा होता है, कभी छोटी–छोटी चिड़ियां गीत गाती हैं... इन छोटी–छोटी बातों को... कभी वर्षा होती है और बूंद टपकती है और उन बूंदों के टपकने में एक गीत और एक आनंद होता है। यह चारों तरफ जगत छोटे–छोटे आनंदों से भरा है, इसको अनुभव करें। और अपने छोटे–छोटे काम में भी, बुहारी देने में या कपड़े पहनने में–आनंद को अनुभव करें। एक आनंद को उसमें परिव्याप्त करें। आगे कुछ मिलने का प्रश्न उसमें बहुत विचारणीय न रखें, जो कर रहे हैं उसमें खुशी लें, उसमें आनंद लें।

तो आप हैरान होंगे कि आपके आसपास, मैत्री के विचार से एक शांति का घेरा जगत में बनेगा, स्वयं कर्म में आनंद लेने की वृत्ति से और भाव से–'कर्म ही आनंद है, फल नहीं', इस भावना के आरोपण से–कर्मों में शांति और आनंद मिलेगा। और आप पाएंगे कि आपके छोटे–छोटे काम बोझ नहीं रह गए, वे आनंद हो गए हैं। छोटे से अंतर की बात है, और काम बोझ हो जाता है; और थोड़े से भाव के अंतर की बात है, वह आनंद हो जाता है।

एक सन्यासी हिमालय पर चढ़ता था। वह तीर्थयात्री था। वह अपने बोझ को सिर पर लिए आगे बढ़ता था; दोपहर घनी, और धूप तेज, और थकान। और उसके सामने एक पहाड़ी लड़की भी चढ़ती थी, एक छोटी–सी लड़की और अपने एक भाई को लिए, भाई मोटा और वजनी। उस साधु ने दयावश, सहानुभूतिवश उस बच्ची के करीब से गुजरते हुए उससे कहा कि बेटी, बहुत वजन लगता होगा, धूप बहुत तेज है, चढ़ाई बड़ी है। उस लड़की ने बहुत हैरानी से उस साधु की तरफ देखा और कहा, आप क्या कह रहे हैं? वजन तो आप लिए हैं, यह तो मेरा छोटा भाई है। और उस सन्यासी ने लिखा है : मैंने बड़े शास्त्र पढ़े हैं, उससे अद्‌भुत वचन मैंने अपने जीवन में नहीं जाना। मुझे पहली दफा पता चला, छोटे भाई में वजन नहीं होता।

तराजू में तो वजन होता है। तराजू तो वजन बताएगा– चाहे छोटा भाई हो और

चाहे बिस्तर हो। लेकिन हृदय वजन नहीं बताएगा। प्रेम वजन को काट देता है, शून्य कर देता है। इस जगत में प्रेम अकेली शक्ति है जो बोझ को, वजन को काटती है। अकेली प्रेम शक्ति है जो ग्रैविटेशन के विपरीत है। वह जो जमीन में कशिश है वह हर चीज को खींच लेती है। अकेला प्रेम है जिसको वह नहीं खींच पाती। अकेला प्रेम मुक्त है इस जगत में, और सब चीजें बंधी हैं उसमें। जितना प्रेम होगा उतने आप निर्भार हो जाएंगे, उतनी 'वेटलेसनेस' आपमें अनुभव होगी। और जितनी आपमें निर्भारता होगी उतने आप भीतर प्रवेश कर सकेंगे, उतने आप शांति में, शून्य में प्रवेश कर सकेंगे।

तो दूसरी धारणा मैं आपसे कहूंगा, छोटे-छोटे कामों को भार न बनाएं, उनको आनंद बना लें। इसे जरा देखें-कल स्नान करते वक्त, कल भोजन करते वक्त, कल कपड़े पहनते वक्त, कल किसी की थोड़ी सी सहायता करते वक्त, कभी रास्ते से पत्थर हटाते वक्त। थोड़ा-सा देखें-एक पौधे में पानी देते वक्त। कोई ऐसे भी बेमन से पानी दे सकता है, कोई बड़े प्रेम से भी पानी दे सकता है। बहुत अंतर पड़ जाएगा। बहुत अंतर पड़ जाएगा, जमीन-आसमान का अंतर पड़ जाएगा।

तो अपने कर्म के जगत में, छोटे-छोटे काम हैं, कोई काम बड़ा नहीं है, सब काम छोटे-छोटे हैं, उन कामों को एक आनंद से, एक प्रीति से, एक उल्लास से करें और उनमें एक भाव स्थापित करें। तो आप थोड़े दिन में पाएंगे कि आपका जीवन एक अद्‌भुत आनंद की कथा हुआ जा रहा है। इसमें छोटी-छोटी बातें बड़ी महत्त्वपूर्ण और आनंदपूर्ण हो जाएंगी।

अभी मैं देखता हूं कि हमारी स्थिति बिल्कुल विपरीत है, हम उलटा ही करते हैं। हम किसी चीज में कोई आनंद अनुभव नहीं करते और हर चीज हम भार बना लेते हैं, हर चीज। हर चीज हमारे लिए भार हो जाती है। जो भी है, हमारे लिए भार है। तो फिर चित्त शांत नहीं हो सकता।

आप ख्याल करें-आपके पास ऐसी कौन सी चीज है जो आनंद है? आपके पास करीब-करीब हर चीज भार होगी। और जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, भार और बढ़ता चला जाता है, एक दिन बुढ़ापे में सिर्फ भार ही होता है आपके पास, और कुछ भी नहीं होता। वह भार आपको तोड़ देता है और आपकी शांति की संभावना को नष्ट कर देता है।

वह भार इतना वजनी हो जाता है कि आपके भीतर वे बीज पैदा नहीं हो सकते, वे बीज विकसित नहीं हो सकते, उस भार में दबे नष्ट हो जाते हैं, जो कि विकसित हो सकते थे, जो कि आपको आत्मज्ञान तक ले जा सकते थे।

तो एक भूमिका अनासक्त कर्म की। फल-आसक्ति-हीनता और आनंद का भाव, ये दोनों एक ही बातें हैं। जिसे कर्म में फलासक्ति न होगी उसमें आनंद परिव्याप्त हो जाएगा। और जिसे काम में आनंद परिव्याप्त हो जाएगा उसमें फल की आकांक्षा

विलीन हो जाएगी। फल की आकांक्षा इसलिए है कि काम में तो दुख है, उसे करेंगे कैसे जिस काम में दुख है? तो फल की आकांक्षा के पीछे उसको करते चले जाते हैं। काम तो दुख देता है, लेकिन फल की आकांक्षा के पीछे उसको करते चले जाते हैं अगर काम में आनंद होगा, फल–आसक्ति विलीन हो जाएगी।

तो उस काम में थोड़ा सा आनंद, उस भाव को कर्म के प्रति मैं चाहूंगा कि हम थोड़ा सा व्यापक करें। देखें, उसे छोटे–छोटे कामों में प्रयोग करके देखें। काम जिंदगी में बड़े कहां हैं? सब छोटे काम हैं। और उन सब छोटे कामों में अगर आनंद व्याप्त हो तो सारी जिंदगी का एक सिलसिला आनंद से भर जाएगा। इसे देखें, इसको अनुभव करें।

## सुख–दुख से मुक्ति का उपाय–समता भाव

तो एक तो मैत्री भाव और एक कर्म में आनंद भाव। तीसरा तल हमारी वेदनाओं का है, हमारी संवेदनाओं का है। चौबीस घंटे हम किसी न किसी संवेदना से घिरे हैं–या तो सुख से घिरे हैं या दुख से घिरे हैं। जब दुख होता है तो हम दुख से बचना चाहते हैं और सुख की आकांक्षा करते हैं, यह हमारा टेंशन, यह हमारी तकलीफ होती है। जब सुख आता है तो हमें यह डर पकड़ लेता है कि कहीं फिर दुख न आ जाए, तो हम सुख को पकड़ना चाहते हैं और दुख को बाहर रखना चाहते हैं, फिर भी टेंशन, फिर भी तकलीफ और तनाव बना रहता है।

आदमी बड़ी अजीब हालत में है। दुख होता है तो दुख झेलता है, इसलिए दुख झेलता है कि दुख है और हट जाए। और सुख होता है तो इसलिए दुख झेलता है कि सुख तो है, लेकिन कहीं दुख न आ जाए। दुख बाहर रहे और सुख बना रहे। सुख को पकड़ना चाहता है, दुख को हटाना चाहता है। दुख को हटाने में और सुख को पकड़ने में, दोनों ही स्थिति में उत्तेजना बनी रहती है।

दुख भी एक उत्तेजना है, वह अप्रीतिकर उत्तेजना है। सुख भी एक उत्तेजना है, वह प्रीतिकर उत्तेजना है। और उत्तेजना मात्र मन के लिए अशांति है, इसे स्मरण रखें। चाहे सुख की हो, चाहे दुख की हो, उत्तेजना मात्र अशांति है। अगर शांत होना है तो उत्तेजना को थोड़ा छोड़ देना होगा।

तो उत्तेजना क्या है? दुख आता है, उसको हम हटाना चाहते हैं, यह उत्तेजना है। सुख आता है, उसको पकड़ना चाहते हैं, यह उत्तेजना है। दुख जब आए तो उसे हटाने का बहुत विचार न करें।

चित्त जब दुख से भरा हो तब उस दुख को स्वीकार कर लें। उससे घबड़ा न जाएं, उससे पीड़ित, उत्तेजित न हो जाएं, थोड़ी समता रखें। और जब सुख आए तब भी उससे उत्तेजित, आंदोलित न हो जाएं, थोड़ी समता रखें। सुख–दुख के प्रति समता का भाव, आपके भीतर जहां संवेदनाएं आपको व्यथित कर जाती हैं, जहां संवेदनाओं की व्यथा से बचने का उपाय बनेगा। वहां क्रमश : जहां देखें, प्रयोग करके

देखें... सुख आता हो तब थोड़े अनुत्तेजित रह कर देखें। कठिन बिल्कुल नहीं है। किया नहीं, इतनी ही बात है। सुख आए जब जरा अनुत्तेजित रह कर देखें। जरा देखें कि सुख आया है तो क्या उत्तेजना भीतर होती है? क्यों होती है? और आप पाएंगे कोई उत्तेजना नहीं हो रही है, सुख आ गया है, उत्तेजना नहीं होगी। उन दोनों की, एक की भी उत्तेजना शून्य हो जाए, दूसरे की अपने आप शून्य हो जाएगी।

तपश्चर्या और कुछ नहीं है। तपश्चर्या के दो रूप हैं–जो दुख में हैं वे दुख की उत्तेजना को छोड़ दें, जो सुख में हैं वे सुख की उत्तेजना को छोड़ दें। सम्राट भी तपस्वी हो सकता है। जनक वैसा था। जनक की साधना यह रही–सुख है, उसकी उत्तेजना नहीं लेना। महावीर दूसरे साधक हैं–दुख है, उसकी उत्तेजना नहीं लेंगे। ऐसे गांवों में खड़े हो जाते जहां लोग उनको सताते, ऐसे श्मशानों में रुक जाते जहां लोग उनको परेशान करते। उनके साथी, उनके मित्रों ने उनको निवेदन किया कि अच्छी जगहें भी हैं, तुम इन्हीं को क्यों खोज लेते हो और यहीं क्यों खड़े हो जाते हो?

महावीर के लिए तपश्चर्या का हिस्सा था। दुख जैसे आमंत्रण देते फिरते थे। और दुख आए तो उस वक्त देखना है कि उत्तेजना है या नहीं? दुख आए तो अनुत्तेजित बना रहे आदमी।

तो आपसे मैं नहीं कहता आप दुख को खोजने जाएं, यूं ही दुख काफी आते हैं। आपको कहीं खोजने जाने की जरूरत नहीं है, वे काफी वैसे ही आते हैं। उनको आप परीक्षा समझें और देखें कि चित्त की समता, उस समय अनुत्तेजित चित्त की दशा रह पाती है? अगर रह पाए, थोड़ा-थोड़ा भाव करने से रह पाएगी, एक दिन आप पाएंगे कि दुख खड़ा है... दुख खड़ा है और आप बिल्कुल ही अकंप उसे देख रहे हैं, उसने आपको छुआ नहीं, वह आपमें प्रवेश नहीं किया। जितनी यह भावना आपकी गहरी होगी उतनी ही आपके भीतर शांति प्रगाढ़ होगी और समाधि की संभावना सुनिश्चित होती चली जाएगी।

तो तीन भाव मैंने कहे–जगत के प्रति मैत्री भाव! चाहे उसे अहिंसा भाव कहें, चाहे उसे प्रेम भाव कहें, इससे अंतर नहीं पड़ता। कर्मों के प्रति आनंद भाव! चाहे उसे फलासक्ति हीनता कहें, चाहे अनासक्ति भाव कहें, अंतर नहीं पड़ता। और तीसरा स्वयं के भीतर सुख-दुख की संवेदनाओं के प्रति समता भाव! अगर ये तीनों उत्पन्न हों, तो सुबह जैसे मैंने कहा था, सम्यक आहार हो, सम्यक निंद्रा हो, सम्यक व्यायाम हो, तो तीनों का इकट्ठा परिणाम सम्यक दृष्टि होगा–आहार, आचार के जगत में। अगर ये तीनों हों, तो भाव के जगत में सम्यक दृष्टि उत्पन्न होगी। और वह सम्यक दृष्टि भूमिका बनेगी। उस भूमिका में ध्यान की गति होगी।

इसे स्मरण रखें कि ध्यान, समाधि या आत्मा की उपलब्धि का रास्ता बिल्कुल ही वैसा है जैसे बगीचे में माली पौधे बोता है–बीज बोता है, सम्हालता है, खाद देता है,

पानी देता है, सूरज की रोशनी की व्यवस्था करता है, सुरक्षा करता है उनकी कि उन्हें जंगली जानवर न चर जाएं, उन पर बाड़ बिठाल देता है, बागुड़ लगा देता है। फिर रोज–रोज उनकी प्रतीक्षा करता है कि वे बढ़ें। लंबी प्रतीक्षा के बाद उनमें फूल आते हैं। जीवन–साधना भी एक बगीचे में फूल लाने से भिन्न नहीं है। हमें भी बीज बोने होंगे, बीज ध्यान के बोने होंगे। खाद और पानी और सूरज की रोशनी भी देनी होगी। यूं समझ लें : एक सम्यक आचार की, जिसकी तीन बातें मैंने कहीं, उसकी खाद देनी होगी। सम्यक भाव की जो मैंने तीन बातें कहीं, उसका पानी देना होगा।

–ओशो, समाधि कमल; प्रवचन–5

## सत्संग यानि गुरु–शिष्य संबंध

धर्म तो कभी–कभी अवतरित होता है–
जिसने सत्य को जाना हो, उसके सान्निध्य में,
जिसने सत्य को अनुभव किया हो,
उसके पास बैठ जाने में, उसकी निकटता में,
उसके साथ नाचने में, उसके साथ गाने में,
उससे आंखें चार करने में।
जहां खोजी की दो आंखें उन आंखों से
मिल जाती हैं जिसने खोज लिया,
उन चार आंखों के मिलन में कुछ होता है–
रहस्यपूर्ण, जादूभरा, इस जगत का सबसे बड़ा चमत्कार!
उन चार आंखों के बीच घटता है,
जिसे पकड़ा नहीं जा सकता, छुआ नहीं जा सकता,
देखा नहीं जा सकता;
फिर भी अनुभव किया जा सकता है।
वह जो घटता है उन आंखों के बीच, उसका नाम धर्म है।
धर्म एक काव्य है–महाकाव्य–
जो दो हृदयों की धड़कन के बीच जब जुगलबंदी हो जाती है,
तब घटता है।
जब दो व्यक्ति–एक जागा हुआ और एक सोया हुआ–
एक लय में आबद्ध हो जाते हैं, उस लय में,
उस सुर–ताल में, उस सरगम में धर्म छिपा है।
धर्म सत्संग की अनुभूति है।
–ओशो, अमृत कण

# वाणी,
# अभिव्यक्ति,
# सदाचरण

- सम्यक वाणी यानी संवाद की कला
- शील की महिमा
- आत्म-हिंसा शील नहीं
- सदाचरण के नियम
- गालियां या गीत

# सम्यक वाणी यानी संवाद की कला

साधो, सब्द साधना कीजै––सम्यक वाणी संबंधी कबीर साहब के पद पर ओशो ने अनूठी व्याख्या की है––

सब्द सब्द सार सब्द चित देय।
जा सब्दै साहब मिलै, सोई सब्द गहि लेय।।
सब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जानै बोल
हीरा तो दामों मिलै, सब्दहिं मोल न तोल।।
सीतल सब्द उचारिए। अहम आनिए नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झमें, सत्रु भी तुझ माहिं।।

सब्द सब्द, सार सब्द चित देय।

और शब्दों शब्दों में बड़ा भेद है। अखबार में भी शब्द हैं, और कुरान में भी शब्द हैं, मगर शब्द शब्द में बड़ा भेद है।

'सब्द सब्द, सार शब्द चित देय।' क्या भेद है? जो उस भीतर के शून्य से उठे, उनमें कुछ–कुछ शून्य की सुवास है। जो ऊपर ही ऊपर तुमने व्यवस्थित कर लिए हैं, उनका कोई मूल्य नहीं है।

अंग्रजी का महाकवि हुआ––कूलरिज। मर जाने पर उसके घर में हजारों अधूरी कविताएं मिलीं, जो उसने कभी पूरी नहीं की। उसके मित्रों को सदा से पता था। वे उनसे अक्सर कहते थे कि तुम ढेर लगाते जाते हो। इनको पूरा क्यों नहीं करते? और कूलरिज कहता: 'मैं पुरा करने वाला कौन? जितनी उतरती है, उतनी लिख देता हूं। उससे आगे नहीं उतरती, तो नहीं उतरती। जब उतरेगी तो पूरी कर

दूंगा। नहीं उतरेगी, तो अधूरी रहेगी। मैं कौन?' समझना।

कूलरिज यह कह रहा है कि जब आती है मेरे भीतर, मेरे बिना कुछ किए, तो मैं तो सिर्फ लिख देता हूं। मैं सिर्फ लिखने वाला हूं––रचयिता नहीं, स्रष्टा नहीं। प्रभु गाता है; कभी दो ही पंक्तियां उतरती हैं, दो ही लिख देता हूं।

कुछ कविताएं तो ऐसी हैं कि जिन में दो ही पंक्तियां कम हैं। कूलरिज ने कहा है कि कभी–कभी मैंने भी सोचा था, ये हजारों कविताएं इकट्ठी होती जा रही हैं, इनको पूरा कर दूं। कभी–कभी मैंने पूरा करने की कोशिश भी की थी। और दो पंक्तियां मैंने अपनी तरफ से जोड़ दीं। मगर तब मैंने पाया कि वह मेरी दो पंक्तियां बिल्कुल ही असंगत हैं। वे जो आई हैं पंक्तियां, उनका स्वाद अलग है। जो मैंने जोड़ दी हैं, वे मुरदा हैं।

वह ऐसे समझो कि जैसे एक आदमी का पैर कट जाता है और उसने लकड़ी का पैर लगा दिया। और लकड़ी का पैर किसी को धोखा दे दे। शायद रात में, अंधेरे में चलते वक्त किसी को समझ में भी न आए। और शायद कभी किसी उपद्रव के क्षण में काम भी आ जाए।

मैंने सुना है: एक पादरी अफ्रीका गया––मनुष्य–भक्षी लोगों के कबीले में ईसा का संदेह पहुंचाने। उसको पकड़ लिया गया। भट्टी सुलगा दी गई। कढ़ाए चढ़ा दिए गए। उसको भूंज कर खाने की तैयारी होने लगी। बैंड़–बाजे बजने लगे।

जब सब तैयारी पूरी हो गई उसे ले चले भट्टी की तरफ, तो उसने कबीले के प्रधान से कहा कि 'तुम जरा मेरा पहले स्वाद तो ले लो।' उसने क हा. 'मतलब?' तो उसने जल्दी से चाकू अपने खीसे से निक लकर पैर का एक टुकड़ा काटा और उसको दिया।

उस कबीले के प्रधान ने मुहं में रखा; चखा और थूका एकदम और लोगों से कहा कि 'बंद करो। यह आदमी खाने योग्य नहीं है।' उसका पैर तो कॉर्क का बना था। पैर कट गया था और कार्क का पैर लगा हुआ था। कार्क काटकर दे दिया था उसने। वह बच गया।

तो कभी काम भी पड़ सकता है––लकड़ी का पैर भी काम पड़ सकता है। मगर तुम तो जानते ही रहोगे भीतर कि लकड़ी का पैर, लकड़ी का पैर है। दूसरे को शायद धोखा भी दे जाए, तुम्हें तो धोखा नहीं देगा।

कूलरिंज ने कहा कि मैंने अपनी पंक्तियां जोड़ कर दूसरों को सुनाई भी, तो उन्हें धोखा भी हो गया। लेकिन मैं कैसे धोखा खाऊं! मुझे तो साफ दिखाई पड़ता है––अलग––कहां वह स्वच्छ धारा जो आई थी, और कहां मेरा गंदा नाला––जो मैंने मिला दिया! कहां तो वे अपूर्व जीवंत शब्द, और कहां मेरे मुरदा शब्द! कहां तो झरना था और मैंने ये चट्टानें रख दीं? इससे सौंदर्य कम को गया––बढ़ा नहीं। उसने कहा, 'फिर मैंने कोशिश नहीं की।'

ऐसी घटना रवींद्रनाथ के जीवन में घटी। उन्होंने गीतांजलि लिखी और फिर गीतांजलि का अंग्रजी में अनुवाद किया। अंग्रेजी पराई भाषा, तो उन्होंने सोचा: किसी से पूछ लें।

तो सी. एफ. एंड्रूज से उन्होंने कहा कि आप जरा इसको देख लें। मेरा अनुवाद ठीक है या नहीं।

सी. एफ. एंड्रूज भाषा के ज्ञानी थे। उन्होंने दो–चार जगह शब्द बदले। उन्होंने कहा कि ये शब्द व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं हैं, चार जगह उन्होंने शब्द बदल दिए और कहा, अब सब ठीक है।

फिर रवीन्द्रनाथ गए और लंदन में उन्होंने कवियों के एक समारोह में गीतांजलि का पाठ किया। वे बड़े हैरान हुए। अंग्रजी का एक महाकवि यीट्स खड़ा हो गया। और उसने कहा, 'और सब तो ठीक है, तीन–चार जगह ऐसा लगता है, किसी और ने शब्द रखे हैं। और सब जगह तो धारा बहती चली जाती है, मगर तीन–चार जगह ऐसा लगता हैः सब छिन्नभिन्न हो गया।'

रवींद्रनाथ चौंके। तीन–चार जगह! उन्होंने कहाः कौन से? उसने दो–तीन उदाहारण बताए। वह वे ही शब्द थे, जो सी. एफ. एंड्रूज ने लगवा दिए थे। रवींद्रनाथ ने कहा, 'मुझे क्षमा क रें। भूल मेरी है। और सी.एफ. एंड्रूज ने गलत नहीं किया।'

यीट्स ने भी कहा कि 'तुम्हारे क्या शब्द थे, जो तुमने पहले रखे थे?' रवीन्द्रनाथ ने कहा ... उसने कहा कि वह भाषा की दृष्टि से गलत, लेकिन काव्य की दृष्टि से सही। व्याकरण ठीक नहीं है उनका, लेकिन उनमें लय है, तारतम्य है; आगे पीछे के शब्द में संगीत छिन्न–भिन्न नहीं होता। तुम पुराने ही शब्द रखो। भाषा को जाने दो भाड़ में, काव्य को बचाओ।'

और रवींद्रनाथ ने अपने पुराने ही शब्द रखे। भाषा की भूल रही, लेकिन काव्य की भूल बच गई।

तो एक तो ऐसा शब्द है, जो तुम्हारे भीतर से आता है। और एक ऐसा शब्द है, जो तुम बाहर–बाहर से इंतजाम कर लेते हो। बाहर–बाहर से जो इंतजाम किया, उससे सावधान रहना। वह असार है। जो भीतर से आए, वह बड़ा मूल्यवान है।

जो प्रेम की घड़ी में उठता है, वह बड़ा मूल्यवान है। जो शांत–शून्य में उठता है, वह बड़ा मूल्यवान है। प्रेम में उठे शब्द को सम्हालना। शून्य में उठे शब्द को सम्हालना। करुणा में उठे शब्द को सम्हालना। क्रोध में उठे शब्द को फेंक देना; उसे सम्हालना मत; वह जहर है।

**गुफ्तगू बंद न हो**
**बात से बात चले**
**सुबह तक सामे–मुलाकात चले**
**हमपे हंसती हुई ये तारों भरी रात चले**
**हों, जो अल्फाज के हाथों में हैं, संगे–दुश्नाम**
**तन्ज छलकाए तो छलका करे जहर के जाम**
**तीखी नजरें हों, तुर्श अबरुए–खमदार रहे**
**बन पड़े जैसे भी दिल सीनों में बेदार रहे बेबसी**
**हर्फ की जंजीर–ब–पा कर न सके**

**कोई कातिल हो मगर कत्ले–नवा कर न सके**
**सुबह तक ढल के कोई हर्फे–वफा आएगा**
**इश्क आएगा बसद, लग्जिशे–पा आएगा**
**नजरें झुक जाएंगी, दिल धड़केंगे, लब कांपेंगे**
**खामुशी बोसा–ए–लब बन के महक जाएगी**
**सिर्फ गुंचों के चटखने की सदा आएगी**
**और फिर हर्फ–ओ–नव की जरूरत न होगी**
**चश्म–ओ–आबरू के इशारो में मुहब्बत होगी**
**नफरत उठ जाएगी, मेहमान मुरव्वत होगी**
**हाथ में हाथ लिए, सारा जहां साथ लिए**
**तोहफ ा–ए–दर्द लिए, प्यार की सौगात लिए**
**रेगजारों से अदावत के गुजर जाएंगे**
**खून के दरियाओं से हम पार उतर जाएंगे**
**गुफ्तगू बंद न हो**
**बात से बात चले**
**सुबह तक सामे–मुलाकात चले**
**हमपे हंसती हुई ये तारों भरी रात चले।**

जहां प्रेम के शब्द उठते हों, जहां हृदय के शब्द उठते हों, जहां अंतर्तम बोलता हो, उसे तो बोलने देना। 'गुफ्तगू बंद न हो।' प्रेम में चलती हुई बात बंद न हो।

गुफ्तगू बंद न हो बात से बात चले
सुबह तक सामे–मुलाकात चले

और जो साम को शुरू हुई थी मुलाकात, वह अगर रातभर भी चले, तो हर्ज नहीं।

सुबह तक सामे–मुलाकात चले
हमपे हंसती हुई ये तारों भरी रात चले

सत्संग हो––तो शब्द सार्थक हैं। प्रेम हो––तो शब्द सार्थक हैं। संगीत को लाते हों भीतर के, तो शब्द सार्थक हैं। भीतर की थोड़ी सी धुन भी आ जाती हो बसी–बसी, तो शब्द सार्थक हैं।

'हों, जो अल्फाज के हाथों में हैं संगे–दुश्नाम।' माना कि शब्द के हाथों में गालियों के पत्थर भी हैं।

हों जो अल्फाज के हाथों में हैं संगे–दुश्नाम।

तन्ज छलकाए तो छलका करे जहर के जाम।।

और यह भी हमें पता है कि शब्दों में बड़ा जहर भी हो सकता है।

'तीखी नजरें हों, तुर्श अबरुए–खमदार रहे।' और यह भी हम जानते हैं कि शब्द बड़े नाराज हो सकते हैं।

और शब्दों में बड़ी तीखी नजरें हो सकती हैं। शब्दों में बड़ी चोट हो सकती है। यह सब हमें मालूम है।

'बने पड़े जैसे भी दिल सीनों में बेदार रहे।' लेकिन कुछ भी हो, दिल को जगाए रखना है। दिल को जाग्रत रखना है। शब्दों का उपयोग करना है।

शब्दों में खतरे हैं, खाइयां हैं, खड्डे हैं, लेकिन उन्हीं खाइयों खड्डों से जाती हुई पतली सी राह भी है, बाट भी है।

'बेबसी हर्फ की जंजीर–ब–पा कर न सके।' ध्यान रखना शब्दों की जंजीर पैरों को बांध न सके––यह ख्याल रहे।

बेबसी हर्फ की जंजीर–ब–पा कर न सके।

कोई कातिल हो मगर कल्ले नवा कर न सके।।

इतना ख्याल रखनाः भीतर की आवाज शब्दों की जंजीरों में दब न जाए। भीतर की आवाज शब्दों की फांसी से मर न जाए।

'बेबसी हर्फ की जंजीर–ब–पा कर न सके।' बस, इतना ही खयाल रहे कि शब्द जंजीरें न बनें। हिंदू, मुसलमान, ईसाई न बना दें शब्द। शब्द से मुक्ति रहे।

'कोई कातिल हो मगर कल्ले–नवा कर न सके।' और भीतर की आवाज की शब्द हत्या न कर दें।

'सुबह तक ढलके कोई हर्फे–वफा आएगा।' प्रतीक्षा करो; सुबह आते–आते कोई प्रेम का शब्द आएगा।

**गुफ्तगू बंद न हो**
**बात से बात चले**
**सुबह तक सामे–मुलाकात चले**
**हमपे हंसती हुई तारों भरी रात चले**
**सुबह तक ढलके कोई हर्फे–वफा आएगा।**

अगर यह प्रेम की गुफ्तगू, यह प्रेम की बात, यह सत्संग चलता रहे, तो आज नहीं कल... सांझ नहीं तो सुबह तक... जवानी में नहीं तो पीरी में, बुढ़ापे में कभी न कभी अगर यह चलती रही बात, तो वह शब्द भी आएगा, जो प्रेम से आता है। वह शब्द भी आएगा जो अंतरतम से आता है।

'इश्क आएगा बसद लग्जिशे–पा आएगा।' प्रेम आएगा––कंपते हुए पावों से––हालांकि, क्योंकि हम प्रेम के आदी नहीं। 'इश्क आएगा बसद लग्जिशे–पा आएगा।' और एक बार नहीं सौ बार आएगा।

**गुफ्तगू बंद न हो**
**सुबह तक शामे–मुलाकात चले**
**हमपे हंसती हुई ये तारों भरी रात चले**
**नजरें झुक जाएंगी, दिल धड़केंगे, लब कांपेंगे**
**खामुशी बोसा–ए–लब बन के महक जाएगी।**

और जब उठेगा शब्द, तो होंठों पर चुंबन बन कर बिखर जाएगा।

'सिर्फ गुंचों के चटखने की सदा आएगी।' इस घड़ी में सिर्फ फूलों के खिलने की आवाज भर सुनाई पड़ेगी।

अगर तुम अपने भीतर जाओगे, तो तुम अपने गुंचे के फूटने की सदा सुनोगे। तुम अपनी ही कली के खुलने की आवाज सुनोगे।

तुमने कमल को खुलते देखा? तुमने कमल को खुलते सुना! सुनना भी चाहो तो नहीं सुन सकते। आवाज बड़ी धीमी है। लेकिन जब भीतर का कमल खुलता है, तो तुम सुन सकोगे। और कोई सुन सके या न सुन सके, तुम निश्चित सुन सकोगे।

सिर्फ गुंचों के चटखने की सदा आएगी
और फिर हर्फ–ओ–नवा की जरूरत न होगी।

और फिर शब्दों के अक्षरों की जरूरत न रह जाएगी। एक बार भीतर के कमल के खिलने की आवाज सुनाई पड़ जाए।

**और फिर हर्फ–ओ–नवा की जरूरत न होगी।**
**चश्म–ओ–आबरू के इशारों में मुहब्बत होगी।।**

फिर तो आंखों और भंवों के इशारों में प्रेम हो जाता है।

'नफरत उठा जाएगी, मेहमान मुरव्वत होगी।' फिर अपने आप एक शील पैदा होता है। 'मेहमान मुरव्वत होगी।' फिर अपने आप एक शील पैदा होता है। मेहमान मुरव्वत होगी। फिर एक शील आता है; एक शिष्टाचार आता है; प्रसाद आता है, जो अपने आप आता है। तुम्हारे लाने से नहीं, तुम्हारी चेष्टा से नहीं।

हाथ में हाथ लिए सारा जहां साथ लिए।
तोहफा–ए–दर्द लिए प्यार की सौगात लिए।।

वह प्रभु प्रेम की पीड़ा या प्रेम की पीड़ा... और प्यार की, प्रेम की पीड़ा का उपहार हाथ में लिए––'रेगजारों से अदावत के गुजर जाएंगे।' दुश्मनी, घृणा, वैमनस्य के मरुस्थल जो हमें घेरे हैं, ... 'रेगजारों से अदावत के गुजर जाएंगे।' इन मरुस्थलों से हम गुजर जाएंगे।

'खून के दरियाओं से हम पार उतर जाएंगे।' शत्रुताओं के, युद्धों के, अशांतियों के... ।

**गुफ्तगू बंद न हो**
**बात से बात चले**
**सुबह तक सामे-मुलाकात चले**
**हमपे हंसती हुई ये तारों भरी रात चले।**
**शब्द और शब्द में भेद है। 'सब्द सब्द।'**

सारा को पकड़ना, असार को छोड़ देना। और तुम्हारी हालत उलटी हैः असार को पकड़ लेते हो और सार को छोड़ देते हो! अगर कहीं कोई किसी की निंदा कर रहा हो, तो तुम ऐसी तल्लीनता से सुनते हो, तुम्हें जम्हाई नहीं आती!

तुमने कभी किसी की निंदा सुनते वक्त देखा कि जम्हाई आई हो? आती ही नहीं। लेकिन अगर कहीं सत्संग चलता हो, तो जम्हाई आने लगती है। कहीं गाली-गलौच चलती हो, तो तुम बड़े चौकन्ने हो जाते हो; तुम्हारी रूह जग जाती है; तुम्हारी आत्मा बड़ी जाग्रत हो जाती है।

दो आदमी रास्ते पर लड़ रहे हों और छुरे निकल आएं हों, तो तुम हजार काम छोड़ कर वहीं खड़े हो जाते हो-- साइकिल टिका कर--कि अब देख ही लें। तुम्हारी जिंदगी में बड़ा रस आ जाता है।

तुम व्यर्थ को बड़े ध्यानपूर्वक देखते हो। और व्यर्थ को बड़े ध्यानपूर्वक सुनते हो।

तुमने देखा नः लोग अपने-अपने ट्रांजिस्टर रेडिओ लिए कान से लगाए बैठे रहते हैं! सत्संग चल रहा है! कहीं कचरा छिटक के गिर न जाए, तो कान से ही लगाए बैठे हैं--कि बिल्कुल कान में ही पड़ता जाए। फिर अगर तुम जिंदगी के अंत में कूड़ा-कबाड़ के एक ढेर हो जाते हो, तो कुछ आश्चर्य तो नहीं। और कोई म्युनिसिपल का ठेला भी नहीं आता कि रोज तुम्हारा कचरा निकाल कर ले जाए। वह बढ़ता ही जाता है, बढ़ता ही जाता है।

'सब्द सब्द, सार सब्द चित देय।' वही सार है, जो तुम्हें स्वयं से मिला दे। ऐसे शब्दों को चित्त देना; बाकी शब्दों को त्याग कर देना। कोई निंदा करे, तो कहनाः क्षमा करो; क्यों व्यर्थ तुम अपना मुंह खराब करते; मेरे कान खराब करते!

कोई प्रभु का भजन गाता हो, सुन लेना--हृदयपूर्वक सुन लेना। कोई उकसाता हो, भड़काता हो, जलाता हो, कोई राजनेता आकर उकसाता हो, उससे क्षमा मांग लेना--कि, 'भैय्या, रास्ता पकड़ो। कहीं और जाओ। मुझे बख्सो। हम वैसे ही भड़के बैठे हैं; अब और न भड़काओ। ऐसे ही क्रोध जल रहा है और न जलवाओ। तुम अपनी ये आग कहीं और ले जाओ।' लेकिन तुम बड़ी उत्सुकता से सुनते हो।

जब राजनेता गांव में आता है, देखते हैं, लोग कैसे भागे चले जाते हैं! बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती है। कचरा है वहां, लेकिन भीड़ वहां पहुंच जाती है। तुम बड़ी उत्सुकता से पहुंचते हो, जैसे कुछ बहुमूल्य ले आओगे। हद्द पागलपन है, मगर है। और सजग होकर तुम्हें ध्यान देना पड़ेगा अन्यथा तुम भी उसी रौ में बहते चले जाओगे।

**सब्द सब्द, सार सब्द चित देय।**

**जा सब्दै साहब मिलै, सोई सब्द गहि लेय।।**

जिससे परमात्मा मिलता हो, ऐसे शब्द को गह लेना; बाकी सब छोड़ देना। यह रहे कसौटी।

'सब्द बराबर धन नही, जो कोई जानै बोल।' शब्द में बड़ा धन है, लेकिन 'जो कोई जानै बोल। हीरा तो दामों मिलै, सब्द ही मोल न तोल।'

अगर कोई सद्गुरु मिल जाए, सद्-वचन मिल जाएं; कोई वचन--जो तुम्हारे प्राणों के घाव भर जाएं; कोई वचन, जो तुम्हारे प्राणों को निद्रा से मुक्त कर जाएं; कोई वचन जो तुम्हारे सपने और भ्रम छीन लें और तुम्हें सत्य दे जायें।

**हीरा ता दामों मिलै, सब्दहिं मोल न तोल।।**

**सीतल सब्द उचारिए, अहम आनिए नाहिं।**

सुनना भी ऐसे शब्द, जो शांति और शीतलता से आते हों। क्रोध, वैमनस्य, हिंसा, और घृणा के शब्द नहीं। युद्ध और जहर से भरे हुए शब्द नहीं।

सुनना शब्द जो शीतल से आते हों। और बोलना भी शब्द ऐसे, जो शीतल हों। जब क्रोध मन में भरे, चुप रह जाना। अभी तुम जो भी बोलोगे, वह घातक होगा।

जब घृणा मन में उमगे, तब एकांत मे बैठ जाना। प्रभु को स्मरण करना। अभी किसी से कुछ भी मत कहना। जब हृदय प्रफुल्लित हो, आंनद से नाचता हो, उत्सव मनाता हो, धन्यवाद देने का भाव उठता हो, अहोभाव भरा हो, तब कुछ बोलना, तो तुम्हारे बोलने में संगीत होगा; तुम्हारे बोलने में सार होगा।

'तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रु भी तुझ माहिं।' ये शब्द जो हैं, अगर सार-सार पकड़ो, तो मित्र बन जाता है; तुम्हारा प्रीतम से मिलाने वाला द्वार बन जाएगा। और ये शब्द, अगर असार पकड़ने लगे, तो यही तुम्हारी फांसी हो जाएगी; यही तुम्हारी शत्रुता; यही तुम्हारा शत्रु हो जाएगा।

**तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रु भी तुझ माहिं।**

**सीतल सब्द उचारिए, अहम आनिए नाहिं।।**

**अहंकार छोड़ो, क्योंकि अहंकार ही गर्मी है।**

मैंने सुना हैः एक सूफी संत हुए--सूफी संत खैराबादी; वे अपने गुजारे के लिए सब्जी बेचा करते थे। भोले आदमी थे, सो बहुत लोग उन्हें खोटा सिक्का दे जाते थे। यहीं

तक नहीं, कुछ चालाक आदमी तो यह खोटा सिक्का तुम्हारी दुकान से ही हमारे पास आया है, कह कर, उनसे बदलवा भी ले जाते थे। लेकिन खैराबादी उसे चुपचाप स्वीकार कर लेते। और जब भी कोई खोटा सिक्का उनको दे जाता, तो लोग हमेशा देखते कि––जब भी कोई खोटा सिक्का देता, तो वे आकाश की तरफ देखते और हाथ जोड़ते।

यह जिंदगी भर की उनकी आदत थी। फिर उनका अंत समय आया, तब उन्होंने प्रार्थना की, 'हे परवर दिगार, सारी जिंदगी मैं खोटे सिक्के स्वीकार करता रहा। किसी का भी खोटा सिक्का लेने से मैंने इनकार नहीं किया। मैं भी एक खोटा सिक्का हूं और अब तुम्हारे पास आ रहा हूं, मुझे वापस न लौटा देना!'

तब लोगों ने समझा कि वे जिंदगीभर क्यों आकाश की तरफ आंख उठा लेते थे––जब कोई खोटा सिक्का उनको दे जाता था। तब यही प्रार्थना वे जीवन भर करते रहे 'हे परवरदिगार, सारी जिंदगी मैंने खोटे सिक्के स्वीकार किए हैं। किसी का भी खोटा सिक्का लेने से मैंने इनकार नहीं किया। अब मैं भी एक खोटा सिक्का हूं; अब तेरे द्वार आ रहा हूं। मुझे इनकार मत कर देना!

यह है निर–अहंकार भाव––मैं भी एक खोटा सिक्का हूं।

परमात्मा के सामने तुम अहंकार लेकर जाओगे, तो जाओगे ही कैसे? अहंकार तो पत्थर की दीवाल की तरह तुम्हारे सामने खड़ा होगा। तुम परमात्मा को पा न सकोगे। तुम तो वहां मिट कर जाओगे, तो ही मिलन है।

और अभी से मिटाना शुरू करो। गर्मी से तुम्हारा अहंकार बढ़ता है। क्रोध से, घृणा–वैमनस्य से तुम्हारे अहंकार को भोजन मिलता है।

'सीतल सब्द उचारिए।' शीतल हो रहो। और शीतल शब्द बोलो। शांति को अपने जीवन की व्यवस्था बना लो। वही तुम्हारी शैली हो।

शांत होते–होते, साधक होते–होते एक दिन साधु हो जाओगे। साधु होते–होते एक दिन सिद्ध भी हो जाओगे।

'साधो, सब्द साधना कीजै।'

यह है शब्द की साधना।

आज इतना ही।

**––ओशो, 'कहै कबीर मैं पूरा पाया' के तीसरे प्रवचन से**

# शील की महिमा

**प्रश्नः–भगवान, संस्कृत में एक सुभाषित है कि यदि शील अर्थात शुद्ध चरित्र न हो तो मनुष्य के सत्य, तप, जप, ज्ञान, सर्व विद्या और कला, सब निष्फल होते हैं।**

**सत्यं तपो जपो ज्ञान**
**सर्वा विद्या : कला अपि।**
**नरस्य निष्फला : सन्ति**
**यस्य शील न विद्यते।।**
**भगवान, निवेदन है कि इस सूक्ति पर कुछ कहें?**

ओशो :–आनंद किरण, तुमने जहां से भी अनुवाद लिया, वहीं भूल है। अनुवाद में ही भूल आ गई, पांडित्य आ गया। जिसने भी किया हो वह अनुवाद, चूक गया। निशाना ठीक जगह नहीं लगा। अनुवाद करने वाले लोग शब्दों का अनुवाद करते हैं। काश, यह सुभाषित सिर्फ शब्द ही होते तब तो इनका अनुवाद बड़ा आसान था। इनका अनुवाद तो केवल ध्यानी ही कर सकते हैं, समाधिस्थ ही कर सकते हैं।

अनुवाद तुमने जो दिया है : 'शील अर्थात शुद्ध चरित्र।'

यह जो अर्थात आ गया और शुद्ध चरित्र आ गया, फिर सब भ्रांति हो गई; फिर सब गड़बड़ हो गया; फिर तुमने गुड़ गोबर कर दिया; फिर कमल कीचड़ हो गया। कहां शील और कहां चरित्र। जमीन–आसमान का फर्क है। उस भेद को ही समझो तो सुभाषित का अर्थ प्रकट होने लगेगा।

## आविर्भूत अथवा आरोपित

चरित्र होता है ऊपर से आरोपित। दूसरे सिखाते हैं तुम्हें जो, वह चरित्र। और जो तुम्हारे अंतर से आविर्भूत होता है, वह शील। शील का अर्थ है : ध्यान से खुली हो आंख, फिर तुम्हारा जो हलन–चलन है, गति है, तुम्हारे जीवन की जो विधि है, शैली है, वह शील।

खुद की तो आंख बंद है, खुद तो अंधे हो, किसी ने लाठी पकड़ा दी, किसी ने दिशा बता दी, किसी ने कहा यूं जाना, यूं जाना, बाएं मुड़ जाना, दाएं मुड़ जाना–और तुम चल पड़े हो। तुम्हें पक्का नहीं तुम क्या कर रहे हो, तुम्हें यह भी पक्का नहीं कि तुम ठीक चल रहे हो कि नहीं चल रहे हो, तुम्हें यह भी पक्का नहीं कि जिसका तुमने

मार्ग–निर्देश लिया है वह भी अंधा था या आंख वाला था; कहीं ऐसा तो नहीं कि उसने भी किसी और से निर्देश लिया हो। यूं सदियों–सदियों निर्देश चलते रहते हैं।

नानक ने कहा है :

अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत।

अंधे, अंधों को धक्के दे रहे हैं, अंधे, अंधों को चला रहे हैं, और दोनों कुएं में गिर रहे हैं। अंधों की अपनी दुनिया है। अंधे अनुकरण ही कर सकते हैं। चरित्र है : अनुकरण।

न बोध है, न बुद्धि है; न सोचा है, न समझा है, न ध्याया है; और लोग कर रहे हैं तो तुम भी कर रहे हो। किसी एक घर में पैदा हुए हो, वहां एक चरित्र की व्यवस्था थी, तो तुम भी पूरा कर रहे हो। नहीं कर पाते हो तो अपराध अनुभव होता है और करते हो तो जीवन में कोई फूल नहीं खिलते। चरित्र की यह दुविधा है–और यही उसकी पहचान भी। पूरा करो, तो जीवन उदास–उदास। न पूरा करो, तो ग्लानि, आत्म–ग्लानि। हर हाल में मुसीबत। पूरा करो मुसीबत।

तुम्हारे संतों को देखो, महात्माओं को देखो। उदास। न मुस्कुराहट है जीवन में, न हंसी की फुलझड़ियां हैं, न आनंद का उत्सव है, न दीए जलते हैं, न रंग है, न गुलाल है, न होली, न दिवाली। मरुस्थल की तरह रूखे–सूखे लोग, उनको देख कर किसी को भी विरक्ति पैदा हो जीवन में, उनको देख कर जीवन व्यर्थ मालूम पड़ने लगे, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। और यही उनका उपदेश, और उनका जीवन उनके उपदेश का प्रमाण कि जीवन व्यर्थ है।

## जीवन में छिपा है परमात्मा

और मैं तुमसे कहता हूं : जीवन व्यर्थ नहीं है। क्योंकि जीवन में ही छिपा है सत्य, और जीवन में ही छिपा है मोक्ष, और जीवन में ही छिपा है परमात्मा। जीवन में छिपा है सारा साम्राज्य शाश्वत का, सनातन का। एस धम्मो सनंतनो। यही जीवन तो सनातन धर्म है। और यह जीवन कितने रंगों में, कितने रूपों में प्रकट हो रहा है।

मगर, अगर तुम किसी की बात मान कर चलते रहे, मान कर ही चलते रहे, तो तुम्हारा कभी इस जीवन से संबंध न जुड़ पाएगा। तुम टूटे–टूटे रह जाओगे, तुम उदास हो जाओगे। अनुकरण का अर्थ है : थोथा हो जाना, नकली हो जाना; झूठा सिक्का, पाखंड। चरित्र तो पाखंड होता है। इसलिए मैं कहता हूं : सन्यासी का कोई चरित्र नहीं होता। शील तो होता है, लेकिन चरित्र नहीं होता।

## बाह्य व्यवस्था या आत्मानुशासन

चरित्र है बाह्य व्यवस्था। इसलिए हिंदू का चरित्र अलग होता है, मुसलमान का अलग होता है, जैन का अलग होता है, बौद्ध का अलग होता है, सिक्ख का अलग

होता है, पारसी का अलग होता है। लेकिन शील तो अलग–अलग नहीं होते। बुद्ध का भी वही, कृष्ण का भी वही, महावीर का भी वही, लाओत्सू का भी वही, जरथुस्त्र का भी वही। शील तो अलग–अलग नहीं हो सकते। लेकिन आचरण तो अनंत प्रकार के हो सकते हैं।

दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं है जो कहीं किसी देश में, किसी जाति में, किसी काल में आदृत न रही हो। और ऐसी भी कोई चीज नहीं है जो किसी देश में, किसी जाति में, किसी काल में अनादृत न रही हो। पृथ्वी पर हजारों तरह के कबीले हैं। जो तुम सोच भी नहीं सकते, उसे करने वाले लोग भी हैं। और जो तुम कर रहे हो, उस पर हंसने वाले लोग भी हैं। चरित्र के साथ यह दुविधा रहेगी।

## सुसभ्य नरभक्षी

एक ईसाई मिशनरी को अफ्रीका के जंगलों में आदमखोर लोगों ने पकड़ लिया। ईसाई मिशनरी ने समझाने की कोशिश की कि तुम यह क्या कर रहे हो? आदमी को मार रहे हो! मुझे मार रहे हो! मुझे बचने की उतनी फिकर नहीं, मगर तुम यह कर क्या रहे हो! क्या आदमी को खाना उचित है? वे आदमखोर बोले–तुम और हमें सिखाते हो! दूसरे महायुद्ध के जमाने की बात है–कि लाखों लोग मारे जा रहे हैं, खबरें हम तक भी आती हैं, हम तुमसे यह पूछते हैं, इतने आदमियों को मारते हो तो करते क्या हो? अरे, खाने के लिए कोई मारे तो समझ में आता है। न खाना है न पीना है, सिर्फ मारना है! यह बात निपट मूर्खतापूर्ण है। हम तो मारते हैं तभी जब खाना होता है। और तुम तो खाना भी नहीं होता और मारे चले जाते हो! और एक–दो नहीं, लाखों को मारते हो। और हमने तो सुन रखा है कि यही तुम्हारा इतिहास है। और हमको तुम कहते हो, अमानवीय! और तुम मनुष्य हो! बात तो बड़ी सोचने जैसी है। तीन हजार साल में आदमी ने पांच हजार युद्ध लड़े हैं। अरबों लोगों को काटा है! और यह काटने वाले लोग सोचते हैं कि आदमखोर जो हैं, आदमियों को खाने वाले जो लोग हैं, यह पशु से भी गए–बीते हैं। और यह अरबों को मारने वाले लोग, ये ईसाई हैं, मुसलमान हैं, हिंदू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं–ये धार्मिक लोग हैं।

आचरण तो अजीब–अजीब तरह के होंगे।

## आचरणों में विविधता

अफ्रीका का एक कबीला चींटे और चींटियों का भोजन करता है। एकदम चींटे–चींटियां इकट्ठा करता रहता है। छोटे–छोटे बच्चे चींटा दिखा कि गप्प कर जाते हैं। और तुम्हारी तो सब्जी में भी चींटी दिख जाए, चींटा मिल जाए मरा हुआ, तो सब्जी भी खाई न जाए तुमसे! चीन में लोग सांप को खाते हैं। सांप की सब्जी बहुत बहुमूल्य सब्जी समझी जाती है। और साधारण आदमी ही नहीं खाते, बौद्ध भिक्षु भी खाते हैं।

जो जिस घर में पैदा हुआ है, जिस परिवार में, जिस संस्कार में, उसको ही पकड़ लेता है। और तो कुछ पकड़ने को होता भी नहीं। मां-बाप सिखा देते हैं; शिक्षक, गुरु, पंडित-पुरोहित, सब सिखा देते हैं; वह वैसा ही आचरण करना शुरु कर देता है।

### चरित्र काफी नहीं, शुद्ध भी?

इस आचरण का नाम शील नहीं है। यह तो बिल्कुल थोथी बात है। यह तो ऊपर से पहनाए गए वस्त्रों जैसी है। यह तो मुखौटा है। जैसे किसी ने चेहरे को रंग दिया हो, सुंदर बना दिया हो। यह तो पानी पड़ जाए तो बह जाए। बूंदा-बांदी हो जाए तो सब राज खुल जाए।

इसलिए, आनंद किरण, शील का अर्थ शुद्ध चरित्र न करो। और तुम्हारा मन-या जिसने भी यह अनुवाद किया हो-सिर्फ चरित्र से ही न माना, उसमें शुद्ध और जोड़ दिया। चरित्र काफी नहीं, शुद्ध भी होना चाहिए। प्रेम काफी नहीं, शुद्धप्रेम। दूध काफी नहीं, शुद्ध दूध। मिलावटी दिमाग हो गया हमारा। हर चीज में मिलावट है। आजकल तो प्रेमी भी प्रेयसियों से कहते हैं कि बिल्कुल खालिस प्रेम है, सौ टका। ऐसा मत समझना कि कुछ मिलावट है, कि पानी वगैरह मिलाया हुआ है, बिल्कुल शुद्ध प्रेम है, कोई फिल्मी नहीं है।

अब तो कोई चीज शुद्ध नहीं है। इसलिए शुद्ध का आग्रह बढ़ता जा रहा है। जब शुद्ध घी मिलता था तो दुकानों पर तख्तियां नहीं लगती थीं कि शुद्ध घी बिकता है। तब 'घी बिकता है', इतना ही काफी था। जब से शुद्ध घी नहीं मिलता, तब से 'शुद्ध घी बिकता है।'

अब तो हालत और बिगड़ गई। अब तो शुद्ध डालडा भी बिकता है। अब तो डालडा भी शुद्ध कहां है? इसलिए अब शुद्ध डालडा की भी तख्ती लगी रहती है कि यहां 'शुद्ध डालडा' मिलता है। पहले डालडा यानी अशुद्ध-सी चीज थी। अब डालडा शुद्ध चीज है, क्योंकि उससे भी रद्दी घी को मिलाने वाले लोग हैं। घी भी नहीं है, उसको भी मिलाने वाले लोग हैं। चर्बी मिला दें, कुछ भी मिला दें। अब तो दवाओं का भी कोई भरोसा नहीं है। अब तो तुम इंजेक्शन ले रहे हो और सोच रहे हो इंजेक्शन है, हो सकता है सिर्फ पानी हो। और वह पानी भी जरूरी नहीं कि शुद्ध हो।

### भारतीय मिलावटी दिमाग

तो हम इतने से ही राजी नहीं होते कि चरित्र। चरित्र पर्याप्त है। चरित्र का अर्थ ही होना चाहिएः शुद्ध। और चरित्रहीनता का अर्थ होगा : अशुद्ध। शुद्ध चरित्र का क्या मतलब है? लेकिन हमारे दिमाग में मिलावट घुस गई है। एक तो चरित्र शील का अर्थ नहीं है- यह बाहरी आडंबर है-दूसरा इसमें भी शुद्ध जोड़ रहे हो! आडंबर को और भी झूठा बना रहे हो।

## अंतःकरण से उत्पन्न आचरण

शील का अर्थ होता है : ध्यान के शून्य में जिसने अपने अंतःकरण को पहचाना है; जिसने शून्य में अपने केंद्र से संबंध जोड़े हैं; जो अपने प्राणों से संयुक्त हुआ है; जिसने पहली दफा जाना है कि मैं परिधि ही नहीं हूं, केंद्र भी हूं; और जिसकी परिधि केंद्र से प्रभावित होने लगी– उसका नाम शील है। शील है तुम्हारे भीतर से उगा हुआ और चरित्र है ऊपर से थोपा हुआ। जैसे कोई कागजी फूल वृक्षों पर अटका दे। हो सकता है राह चलते राहगीरों को धोखा हो जाए।

मगर तुम किसको धोखा दे रहे हो? क्या मधुमक्खियों को धोखा दे पाओगे? कोई एक मधुमक्खी भी तुम्हारे कागज के फूल पर न बैठेगी। क्या तुम भंवरों को धोखा दे पाओगे? कोई भंवरा तुम्हारे कागज के फूलों के पास गुनगुन करके गीत न गाएगा। तुम किसे धोखा दे रहे हो? और तुम सबको भी धोखा दे दो, मगर तुम्हें तो पता ही रहेगा कि फूल कागजी हैं। तुमने ही लटकाए हैं। तुम अपने को तो धोखा न दे पाओगे। तुम वृक्ष को तो धोखा न दे पाओगे।

इन कागजी फूलों को वृक्ष रस नहीं देने लगेगा। और अगर दिया भी उसने रस तो ये गल जाएंगे। ये मर जाएंगे। वह जीवनदायी रस इनके लिए मृत्यु हो जाएगा। असली फूल वृक्ष में लगते हैं। उसके अंग होते हैं।

कागजी एवं असली फूल

शील है असली फूल–तुम्हारे भीतर उगा, तुम्हारे भीतर लगा। नकली नहीं, बाजारू नहीं, कागजी नहीं। और तब इस सुभाषित का अर्थ खुल सकेगा। तो मैं शील का अर्थ शुद्ध चरित्र नहीं करता हूं। यह 'अर्थात शुद्ध चरित्र' छोड़ दो। ख्याल से ही हटा दो। इतना ही कहो कि शील न हो तो मनुष्य के जीवन में सत्य नहीं होता। क्या होगा! अगर सत्य हो तो शील ही होगा; अगर शील हो तो सत्य भी होगा। जिसने अपने जीवन के केंद्र को जान लिया, उस जानने को, उस पहचानने को ही तो सत्य का अनुभव कहते हैं। और जिसके जीवन में आत्म–अनुभव हो, उसके जीवन में तप होता है।

**–ओशो, लगन महूरत झूठ सब–5**

# आत्म-हिंसा शील नहीं

तप का क्या अर्थ है? तप शब्द को समझना चाहिए। लोग सोचते हैं तप का अर्थ है अपने को सताना, गलाना, परेशान करना, हैरान करना। तब तो तप एक तरह की आत्म-हिंसा हो गई। तो फिर दुनिया में दो तरह के लोग हैं : दूसरों को सताने वाले और अपने को सताने वाले। इनमें कुछ फर्वफ नहीं है, जहां तक सताने का संबंध है, यह एक जैसे हैं। इनकी कोटियां अलग-अलग नहीं हैं। कोई दूसरे को अगर सताए तो हम उसको दुष्ट कहते हैं। और अपने को सताए तो उसको संत कहते हैं। गजब के लोग हैं! हम भी गजब के लोग हैं। हमारी कोटियां भी गजब की, हमारी व्याख्याएं भी अद्‌भुत।

अरे, दूसरे को जो सताए वह उतना दुष्ट नहीं है, क्योंकि दूसरा अपनी आत्म-रक्षा भी कर सकता है। लेकिन जो खुद को सताए, वह तो बहुत ही दुष्ट है, क्योंकि खुद की अब कोई आत्म-रक्षा करने वाला भी नहीं है। अब तो जिसको हमने रक्षक समझा था, वही सता रहा है। अब तो जिससे हम बचना चाहते थे, वही मार रहा है। अब कौन बचाएगा? जिसको हमने सुरक्षा माना था, वही झूठी सिद्ध हो गई।

इसलिए जो कायर हैं, दूसरों को सताने में डरते हैं-क्योंकि दूसरों को सताने में खतरा है; दूसरों को छेड़ने में खतरा है। जैसे कोई मधुमक्खी का छत्ता छेड़ दे। दूसरे को छेड़ोगे तो दूसरा बदला लेगा, आज नहीं कल, कल नहीं परसों। और कौन जाने खतरनाक आदमी हो।

अथ नसरुद्दीन कथा

मुल्ला नसरुद्दीन चला जा रहा था एक रास्ते से, ऊपर से एक ईंट गिरी, उसकी खोपड़ी पर पड़ी। भनभना गया। तमतमा गया। उठाई ईंट और गुस्से में गया जीना चढ़ कर ऊपर कि सिर खोल दूंगा। कौन हरामजादा है जिसने ईंट पटकी? देखता भी नहीं।

उधर जाकर देखा तो एक पहलवान खड़ा था। अभी दंड-बैठक लगा कर ही उठा था। पहलवान को देख कर मुल्ला चौकड़ी भूल गए। पहलवान ने पूछा : 'कहो, क्या काम है?'

उसने कहा : 'कुछ नहीं, आपकी ईंट गिर गई थी, वह वापस करने आया हूं। अरे, कभी भी जरूरत हो तो पड़ोस में ही रहता हूं, आवाज दे दीजिए। कोई चीज गिर जाए, तो उठा कर ला दूंगा। सेवा तो हमारा धर्म है।'

भूल गए चौकड़ी। गए तो थे कि खोल दूंगा सिर, ईंट लौटा कर वापस अपना सिर मलते आ गए। जो लोग दूसरों को नहीं सता सकते, क्योंकि दूसरों को सताना

खतरे से खाली नहीं है, जोखिम का काम है, वे अपने को सताने लगते हैं। और मजा यह है कि यही कायर तुम्हारे महात्मा बन जाते हैं। यही तुम्हारे संत बन जाते हैं। इन्हीं के चरणों में तुम सिर झुका रहे हो। इन्हीं कायरों की पूजा चल रही है।

## जीवन–ऊर्जा का जागरण

तप का यह अर्थ नहीं है। तप का अर्थ होता है–तप शब्द में ही अर्थ छिपा हुआ है : तप यानी तपिश। एक ऊर्जा, एक गर्मी। जैसे भीतर सूरज उग आया हो। जैसे जीवन की सारी ऊर्जा जाग्रत हो गई हो। जैसे सोए स्रोत खुल गए हों। झरने फूट पड़े हों। एक दीप्ति, एक ओजस।

जिस व्यक्ति ने स्वयं के सत्य को जाना है, उसके जीवन में एक गर्मी होगी–क्रांति की, बगावत की। उसके जीवन में एक आग्नेयता होगी। क्योंकि उसके भीतर आत्म–ज्योति का दीया जलेगा। उसके भीतर ठंडा बरु जैसा हृदय नहीं होगा, मुर्दा हृदय नहीं होगा, जीवंत हृदय होगा। तप का अर्थ है : ऊर्जा, गर्मी। जैसे सूरज निकल आता है तो फूल जो बंद थे रात भर, खुल जाते हैं; पक्षी जो रात भर सोए रहे, जग जाते हैं; जिनके कंठ रात भर चुप थे, अचानक गीतों में फूट पड़ते हैं; वैसे ही सत्य के अनुभव के साथ तुम्हारे जीवन में ऊर्जा का पदार्पण होता है। सूरज उगता है, फूल खिलते हैं, जागरण आता है... तब गीत और नृत्य और उत्सव।

## अंतिम परिणाम : सृजन व कला

तप अपने को सताना नहीं है, अपनी जीवन–ऊर्जा को उसकी पराकाष्ठा पर प्रकट होने देना है। और जिसकी जीवन–ऊर्जा पराकाष्ठा पर प्रकट होगी, निश्चित ही उसका अंतिम परिणाम सृजन होगा, कला होगी। क्योंकि ऊर्जा तुम्हें सृष्टा बनाएगी। तुम गीत रचो, कि मूर्ति रचो, कि चित्र बनाओ, कि तुम जो कुछ भी करोगे, उस सब में एक सौष्ठव होगा, उस सब में एक संस्कृति होगी। तुम मिट्टी छुओगे तो सोना हो जाएगी। और मिट्टी को छूकर सोना बना देने का नाम ही कला है।

जब तक स्वयं के सत्य को नहीं जाना, शील को नहीं पहचाना, अपने भीतर के केंद्र को अनुभव नहीं किया, तब तक सब झूठ है; उसके साथ ही सब सच हो जाता है। एक को जान लो तुम, स्वयं को, तो तुम्हारे जीवन में फूल ही फूल खिल जाते हैं। इतने फूल खिल जाते हैं कि तुमने कभी कल्पना भी न की थी। इतने गीत कि तुमने कभी सोचा भी न था कि तुम्हारे भाग्य में होंगे। इतना आनंद, इतना नृत्य, इतनी ऊर्जा कि नृत्य तो फूटेगा ही, आनंद तो जागेगा ही। ऊर्जा तो अपने आप नाचती है। ऊर्जा बिना नाचे नहीं रह सकती, झरने फूट पड़ेंगे। और तभी जप। यह बैठ कर जो रामनाम की चदरिया ओढ़े हुए और माला हाथ में लिए जप कर रहे हैं मुर्दों की भांति, इनवेफ जप का कोई मूल्य नहीं है।

## आनंद की पुलक, अनुग्रह का भाव

जप का अर्थ होता है : जब तुम्हारे जीवन में आनंद की पुलक आई, लहर दौड़ी और तुम्हारे भीतर अनुग्रह का भाव उठा। परमात्मा को–या परमात्मा शब्द को बीच में न भी लाओ तो भी चलेगा–अस्तित्व को जब धन्यवाद देने के लिए तुम झुके, उस झुकने का नाम जप है। फिर वह मौन भी हो सकता है, मुखर भी हो सकता है।

उस स्वानुभूति के पहले जो ज्ञान है, कचरा है, किताबी है, शास्त्रीय है। उस स्वानुभव के बाद ही ज्ञान है। ज्ञान एक ही है : अपने को जानना।

उपनिषदों ने बड़ी अनूठी व्याख्या की है। दुनिया में कभी ऐसी व्याख्या नहीं की गई। जिसको आज हम विज्ञान कहते हैं, उसको उपनिषद अविद्या कहते हैं। बाहर का ज्ञान अविद्या। यह भूगोल और यह इतिहास और यह गणित और यह भौतिकी और यह रसायन–बाहर का सब ज्ञान उपनिषद अविद्या कहते हैं। और भीतर के ज्ञान को विद्या कहते हैं। तो ज्ञान तो एक ही बचा फिरः स्वयं को जानना, आत्म–साक्षात्कार। और शेष सब अविद्या हो गया। शेष सब कामचलाऊ है। उपादेयता है उसकी, लेकिन उससे कोई मुक्ति नहीं बनती। और उससे जीवन में कोई आनंद नहीं निर्मित होता और अमृत नहीं निचुड़ता। ज्ञान तो वह है जो मुक्तिदायी हो।

**सा विद्या या विमुक्तये**

वही है विद्या जो मुक्ति लाए। यह परिभाषा हुई विद्या की–जो मुक्ति लाए, वह विद्या। जो बांध दे, वह विद्या नहीं। जो खोल दे सारे बंधन, वही विद्या, वही ज्ञान।

**सत्यं तपो जपो ज्ञान**
**सर्वा विद्या : कला अपि।**
**नरस्य निष्फला : सन्ति**
**यस्य शील न विद्यते।।**

तानसेन के गुरु की कहानी

शील न हो तो कुछ भी नहीं। भीतर अंधेरा हो तो कुछ भी नहीं। भीतर उजाला हो तो सब कुछ। इसलिए मेरा जोर एक ही बात पर है–सिर्फ एक बात पर–कि कुछ भी हो, किसी भी कीमत पर हो, समाधि को पाना है। ध्यान को जगाना है। ध्यान की अंतिम चोटी को छू लेना है। वही समाधि है, संबोधि है, बुद्धत्व है। उसको छू लिया तो शेष सब रूपांतरित हो जाएगा। और उसको न छुआ, तो तुम लाख वीणा बजाओ– तकनीकी दृष्टि से शायद तुम वीणावादक हो जाओगे, लेकिन तुम्हारे वीणा बजाने में प्राण नहीं होंगे। तार झनझनाएंगे, गीत भी ओंठों से आएगा, मगर हृदय से नहीं।

अकबर ने तानसेन से कहा था कि तेरा वीणा–वादन देख कर कभी–कभी यह मेरे मन में ख्याल उठता है कि कभी संसार में किसी आदमी ने तुझसे भी बेहतर बजाया

होगा या कभी कोई बजाएगा? मैं तो कल्पना भी नहीं कर पाता कि इससे श्रेष्ठतर कुछ हो सकता है।

तानसेन ने कहा, क्षमा करें, शायद आपको पता नहीं कि मेरे गुरु अभी जिंदा हैं। और एक बार अगर आप उनकी वीणा सुन लें, तो कहां वे और कहां मैं।

बड़ी जिज्ञासा जगी अकबर को। अकबर ने कहा, तो फिर उन्हें बुलाओ।

तानसेन ने कहा, इसलिए मैंने कभी उनकी बात नहीं छेड़ी। आप मेरी सदा प्रशंसा करते थे, मैं चुपचाप पी लेता था, जैसे जहर का घूंट कोई पीता है, क्योंकि मेरे गुरु अभी जिंदा हैं, उनके सामने मेरी क्या प्रशंसा। यह यूं है जैसे कोई सूरज को दीपक दिखाए। मगर मैं चुपचाप रह जाता था, कुछ कहता न था, आज न रोक सका अपने को, बात निकल गई। लेकिन नहीं कहता था इसलिए कि आप तत्क्षण कहेंगे, उन्हें बुलाओ। और तब मैं मुश्किल में पडूंगा, क्योंकि वे यूं आते नहीं। उनकी मौज हो तो जंगल में बजाते हैं, जहां कोई सुनने वाला नहीं। जहां कभी-कभी जंगली जानवर जरूर इकट्ठे हो जाते हैं सुनने को। वृक्ष सुन लेते हैं, पहाड़ सुन लेते हैं। लेकिन फरमाइश से तो वे कभी बजाते नहीं। वे यहां दरबार में न आएंगे। आ भी जाएं किसी तरह और हम कहें उनसे कि बजाओ तो वे बजाएंगे नहीं।

अकबर ने कहा, फिर क्या करना पड़े? कैसे सुनना पड़े?

तानसेन ने कहा, एक ही उपाय है कि यह मैं जानता हूं कि रात तीन बजे वे उठते हैं, यमुना के तट पर आगरा में रहते हैं-हरिदास उनका नाम है-हम रात चल कर छुप जाएं। दो बजे रात चलना होगा; क्योंकि कभी तीन बजे बजाएं, चार बजे बजाएं, पांच बजे बजाएं; मगर एक बार जरूर सुबह-सुबह स्नान के बाद वे वीणा बजाते हैं। तो हमें चोरी से ही सुनना होगा; बाहर झोपड़े के छिपे रह कर सुनना होगा।

शायद ही दुनिया के इतिहास में किसी सम्राट ने-अकबर जैसे बड़े सम्राट ने-चोरी से किसी की वीणा सुनी हो। लेकिन अकबर गया। दोनों छिप रहे एक झाड़ की ओट में, पास ही झोपड़े के पीछे। कोई तीन बजे स्नान करके हरिदास यमुना से आए और उन्होंने अपनी वीणा उठाई और बजाई। कोई घंटा कब बीत गया-यूं जैसे पल बीत जाए। वीणा तो बंद हो गई, लेकिन जो राग भीतर अकबर के जम गया था वह जमा ही रहा। आधा घंटे बाद तानसेन ने उन्हें हिलाया और कहा कि अब सुबह होने के करीब है, हम चलें। अब कब तक बैठे रहेंगे। अब तो वीणा बंद भी हो चुकी। अकबर ने कहा, बाहर की तो वीणा बंद हो गई मगर भीतर की बजी ही चली जाती है। तुम्हें मैंने बहुत बार सुना, तुम जब बंद करते हो तभी बंद हो जाती है। यह पहला मौका है कि जैसे मेरे भीतर

के तार भी छिड़ गए हैं। और आज सच में ही मैं तुमसे कहता हूं कि तुम ठीक ही कहते थे कि कहां तुम और कहां तुम्हारे गुरु! अकबर की आंखों से आंसू झरे जा रहे हैं। उसने कहा, मैंने बहुत संगीत सुना, इतना भेद क्यों है? और तेरे संगीत में भी और तेरे गुरु के संगीत में इतना भेद क्यों है? जमीन–आसमान का फर्क है।

## जमीन–आसमान का फर्फ क्यों?

तानसेन ने कहा, कुछ बात कठिन नहीं है। मैं बजाता हूं कुछ पाने के लिए; और वे बजाते हैं क्योंकि उन्होंने कुछ पा लिया है। उनका बजाना किसी उपलब्धि की, किसी अनुभूति की अभिव्यक्ति है। मेरा बजाना तकनीकी है। मैं बजाना चाहता हूं, मैं बजाने का पूरा गणित जानता हूं– मगर गणित, बजाने का अध्यात्म मेरे पास नहीं। और मैं जब बजाता हूं तब भी इस आशा में कि आज आप क्या देंगे? हीरे का हार भेंट करेंगे? कि मोतियों की माला? कि मेरी झोली सोने से भर देंगे कि अशर्फियों से? जब बजाता हूं तब भी नजर भविष्य पर अटकी रहती है, फल पर लगी रहती है। वे बजा रहे हैं, न कोई फल है, न कोई भविष्य, वर्तमान का क्षण ही सब कुछ है। उनके जीवन में साधन और साध्य में कोई फर्क नहीं है, साधन ही साध्य है; और मेरे जीवन में अभी साधन और साध्य में बहुत फर्क है। बजाना साधन है। पेशेवर हूं मैं। उनका बजाना आनंद है,

साधन नहीं। वे मस्ती में हैं। वे पीए हैं। और जो परमात्मा को पीए हैं, उसके बजाने में जरूर वही शराब कुछ तो बह ही आएगी। उन तक भी बह जाएगी जिन्होंने तौबा कर रखी है कि कभी न पीएंगे; उनके कंठों में भी उतर जाएगी। किसी सच्चे पीने वाले के पास अगर बैठ गए, किसी पियक्कड़ के पास अगर बैठ गए, तो तुम्हारे तौबा के जीने से ही उतर–उतर कर तुम्हारे हृदय तक शराब पहुंच जाएगी। तुम्हारी कसमों को तोड़ देगी। तुम्हारे नियम–व्रत–उपवास तोड़ देगी। आनंद तुम्हें बहा ले जाएगा। बह जाओगे तभी पता चलेगा कि अरे, कितनी दूर निकल आए? बहुत दूर निकल आए!

शील में शेष सब समाहित

शील हो तो शेष सब आ जाता है। और शील न हो तो तुम जमाते रहो, बिठाते रहो सब साज–सामान, बस कचरा ही इकट्ठा कर रहे हो। मुक्ति नहीं होगी, और कचरे से दब जाओगे। शील मुक्ति है। चरित्र बंधन है।

**–ओशो, लगन महूरत झूठ सब, प्रवचन–5**

# सदाचरण के नियम

सदाचार के जितने भी नियम हैं, पहले के या आज के, खोजा जाये तो सभी किसी न किसी धर्म से ही निकले हैं–चाहे बाइबिल से, चाहे कुरान से, चाहे मनुस्मृति से, चाहे पतंजलि के योग सूत्र से। पतंजलि ने तो योगसूत्र के आरंभ में ही यम–नियम ऐसे कठिन सदाचार दे रखे हैं। तो फिर हम उनको छोड़कर कैसे चल सकते हैं?

छोड़कर चलने का सवाल नहीं है। उन्हीं को मानकर बैठ जाने का खतरा है। जब मैं कहता हूं कि अंतस प्रकाश से जीयें तो यह मतलब नहीं है कि समाज के सब आचरण के नियम तुम तोड़ दो। उससे तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि वह तो खेल का नियम है। वह तो वैसा ही है, जैसा सड़क पर बायें चलने का नियम है; उसकी कोई शाश्वतता नहीं है। कोई बायें चलने वाला स्वर्ग पहुंचेगा और दायें चलनेवाला नर्क पहुंच जायेगा, ऐसा नहीं है; लेकिन अगर तुम दायें चले तो कार के नीचे आ जाओगे। क्योंकि पूरा समाज बायां मानकर चल रहा है। इसमें कोई नियम की शाश्वतता नहीं है। अमेरीका में वे दायें चल रहे हैं तो दायें चलने का नियम है। अमेरीका जाते ही तुमको नियम अपना बदल लेना पड़ेगा। जैसा सड़क का नियम है, बस वैसे ही आचरण के नियम हैं। और आचरण के नियमों की जरूरत है क्योंकि तुम अकेले नहीं हो, बहुत लोग यहां रह रहे हैं। यहां कुछ व्यवस्था मानकर चलना पड़ेगा। और यहां किसी का भी दीया जला हुआ नहीं है। अगर बिल्कुल व्यवस्था छोड़ दी जाये तो एक क्षण भी जीना संभव नहीं होगा। लोग झूठ हैं, उनका व्यक्तित्व झूठ है, इसलिए नियम मानकर चलना पड़ता है कि सत्य, आचरण बनाओ। झूठ चलता है; सौ में से नब्बे प्रतिशत झूठ चलता है, लेकिन इस झूठ के बीच भी दस प्रतिशत सत्य को हम जमाते हैं; उससे समाज जीता है। यहां कोई आचरण भीतर से निकल नहीं रहा है किसी के।

तो दो ही उपाय हैं : या तो भीतर से आचरण निकले, तब तक हम प्रतीक्षा करें; और या फिर हम झूठे आचरण के नियम स्थापित कर लें, जिनसे काम चल जाये। ये नियम 'युटिलिटेरियन' हैं, कामचलाऊ हैं। इनकी जरूरत है। इनकी जरूरत इसलिए है कि यहां इतना भीड़–भड़क्का है, कि यहां किसी न किसी तरह रास्ते पर हमें सोचकर चलना पड़ेगा कि आते हुए लोग बायें से चलें, लौटते हुए लोग दायें से चलें; अन्यथा उपद्रव होगा।

और जैसे–जैसे दुनिया की संख्या बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे आचरण के नियमों की ज्यादा जरूरत पड़ती जाती है। एक जंगली कौम, वह बिना नियमों के रह सकती है, या थोड़े–से नियम से काम चल जाता है। जितनी सभ्यता सघन होगी, उतने ज्यादा नियम चाहिए क्योंकि उतने लोग बढ़ते जाते हैं; नहीं तो अराजकता होगी।

जब मैं कहता हूं, अंतस्प्रकाश को खोजो तो उससे यह भ्रांत निष्कर्ष मत ले लेना कि तुम्हें सब समाज के नियम तोड़ देने हैं। समाज का नियम तो खेल है। समाज का नियम तो नाटक की एक व्यवस्था है; उसे मानकर ही चलना होगा।

मैंने सुना है, एक गांव में रामलीला हो रही थी; और जो रावण बना था और जो स्त्री सीता बनी थी, वह वस्तुतः उसके प्रेम में था। तो जब शिव का धनुष तोड़ने की बारी आई तो बाहर आवाज गूंजती है राज–मंडप के, कि लंका में आग लगी है। रावण को जाना चाहिए। वह चला जायेगा, इस बीच राम धनुष को तोड़ लेंगे, विवाह हो जायेगा, कथा चलेगी। वह रावण जो था, उसने कहा, 'लगी रहने दो आग। जल जाये लंका। आज मैं यहां से जानेवाला नहीं।' बड़ी मुसीबत खड़ी हो गई; क्योंकि वह तो नाटक था और इसके पहले कि कोई रोक–टोक कर सके, परदा गिराये, वह उठा और उसने धनुष तोड़कर रख दिया। वह धनुष कोई शिवजी का धनुष तो था नहीं। साधारण बांस का धनुष था, उसने तोड़कर रख दिया।

जनक सिंहासन पर बैठे घबड़ाए। वह सारी कथा ही उसने खत्म कर दी।

उसने कहा, 'कहां है तेरी सीता? निकाल। आज तो विवाह होकर रहेगा।'

अब उसका अगर विवाह हो जाये, तो आगे सब उपद्रव। जनक तो बूढ़ा आदमी था, लेकिन पुराना कुशल अभिनेता था। उसने तत्क्षण रास्ता निकाला। उसने कहा, 'भृत्यो! यह तुम मेरे बच्चों के खेलने का धनुष उठा लाए, शिवजी का धनुष लाओ।'

तब परदा गिराकर रावण को बाहर करना पड़ा, दूसरे आदमी को रावण बनाना पड़ा। क्योंकि उस आदमी ने नाटक का नियम... नाटक तो नियम से चलता है!

जिस समाज में तुम जी रहे हो, वह एक बड़ा नाटक है। वहां मंच बड़ी है। वहां दर्शक कोई है ही नहीं, सभी अभिनेता हैं। वहां तुम्हें नियम मानकर चलना पड़ेगा। वहां तुम जान भी लो कि यह धनुष शिवजी का नहीं है तो भी तोड़ना मत; अन्यथा तुम्हारे जीवन में कठिनाई होगी, सुविधा नहीं होगी; और भीतर के प्रकाश की खोज में मुश्किल पड़ जायेगी। इसलिए पतंजलि ने, महावीर ने, बुद्ध ने जो शील के नियम कहे हैं, वे सिर्फ इसलिये कहे हैं ताकि तुम समाज के साथ अकारण उपद्रव में न पड़ो; अन्यथा तुम्हारी शक्ति झगड़े में नष्ट होगी। भीतर की खोज कौन करेगा? बुद्ध, पतंजलि के कारण भारत में कभी क्रांति नहीं हुई। क्योंकि बुद्ध और महावीर और पतंजलि ने कहा कि अगर तुम क्रांति में पड़ोगे, तो भीतर की क्रांति में कौन जायेगा? और असली क्रांति वहां है। इन छोटे–छोटे नियमों को बदलने से नहीं, कि बायें चलना ठीक नहीं, दायें चलेंगे... !

च्वांगत्से एक छोटी–सी कहानी कहता था। च्वांगत्से कहता था कि एक गांव में एक सर्कस था। सर्कस का मैनेजर था, मैनेजर के पास बंदर थे। उन बंदरों का वह सर्कस में खेल दिखलाता था। बंदरों को रोज सुबह चार रोटी दी जाती थीं, शाम को

तीन रोटी दी जाती थीं। एक दिन ऐसा हुआ कि रोटियां थोड़ी कम पड़ गईं तो मैनेजर ने बंदरों से उस दिन सुबह कहा, कि बंदरों! तीन ले लो, शाम को चार दे देंगे। बंदर एकदम नाराज हो गए। उन्होंने बहुत शोरगुल मचाया, उछल–कूद की। उन्होंने कहा कि नहीं, यह नहीं चलेगा। यह बर्दाश्त के बाहर है। सदा हमें चार मिलती रही हैं। उसने बहुत समझाने की कोशिश की लेकिन बंदर, तो बंदर। बहुत समझाने की कोशिश की कि चार और तीन सात ही होते हैं। चाहे सुबह चार लो कि तीन लो, चाहे शाम को चार लो, तो बंदरों ने कहा कि यह फालतू बातें हमसे मत करो।

चार हमें सदा मिलती रही हैं, चार हमें चाहिए। जब उन्हें चार रोटियां दे दी गईं, बंदर एकदम प्रसन्न हो गए। सांझ को तीन रोटियां मिलीं, वे प्रसन्न थे। कुल मिलाकर वे सात थीं।

करीब–करीब क्रांतियां ऐसी ही हैं–सभी क्रांतियां। उसमें सुबह चार मिलनी चाहिए, तीन नहीं लेंगे; कि शाम को तीन मिलनी चाहिए, चार नहीं लेंगे; लेकिन अंततः जोड़ बराबर सात होता है। कोई फर्क नहीं पड़ता। समाज के जीवन में कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ते हैं, बुनियादी क्रांति तो व्यक्ति के जीवन में घटित होती है। इसलिए पतंजलि ने कहा कि तुम इन सब नियमों को मानकर चलना ताकि समाज के साथ व्यर्थ की कलह खड़ी न हो। अन्यथा समाज बड़ा है और तुम कलह में ही नष्ट हो जाओगे। इसलिए विद्रोही व्यक्ति अक्सर सत्य को उपलब्ध नहीं हो पाते; न शांति को उपलब्ध हो पाते हैं; क्योंकि वे छोटी–छोटी बातों में लड़ रहे हैं, छोटी–छोटी बातों में उलझ रहे हैं। अगर बदलाहट भी हो जायेगी तो इतना ही फर्क पड़ेगा कि शाम को तीन रोटी, सुबह चार मिलेंगी; और कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। लेकिन तुम्हारा जीवन खो जाएगा।

समाज के साथ एक समझौता है इन नियमों में, कि हम तुम्हारे खेल का नियम मानकर चलते हैं, तुम हमें परेशान न करो। ताकि हम अपने भीतर प्रवेश कर सकें। तुम हमें बाधा न दो। जब समाज आश्वस्त हो जाता है कि तुम्हारा आचरण ठीक है, समाज बाधा नहीं देता। तुम उसका नियम मानकर चल रहे हो, फिर तुम ध्यान में जाओ, सन्यास में जाओ, तुम गहरी प्रज्ञा में प्रवेश करो, वह बाधा नहीं देता बल्कि साथ देता है। एक दफा उसे पता चल जाये कि तुम उपद्रव खड़ा करते हो, तुम नियम तोड़ते हो, तो वह तुम्हारा दुश्मन हो जाता है। हमने बुद्ध को सूली पर नहीं चढ़ाया, न महावीर को सूली पर चढ़ाया। चौबीस तीर्थंकर भारत में हुए, बिना सूली चढ़े चल बसे। बुद्ध, राम, कृष्ण को किसी को हमने सूली पर नहीं चढ़ाया। जीसस को सूली लग गई। उसका कुल कारण इतना था कि जीसस ने कुछ अजनबी प्रयोग कर लिये वहां। जीसस ने समाज के छोटे–मोटे नियमों की खिलाफत कर दी। अगर जीसस ने पतंजलि के सूत्र पढ़े होते, सूली नहीं लगती। छोटी–मोटी बातों पर झगड़ा खड़ा कर लिया। उस झगड़े

के कारण कोई परिणाम अच्छा नहीं हुआ। उस झगड़े के कारण जो लाखों लोग लाभ ले सकते थे जीसस के दीये का, वे वंचित रह गये। और सूली लग जाने की वजह से, जीसस के पीछे जो अनुयायियों का वर्ग आया, वह सूली से प्रभावित होकर आया। वह गलत था। वह जीसस की प्रज्ञा से प्रभावित नहीं हुआ, सूली से प्रभावित हुआ कि महान शहीद हैं। इसलिए क्रिश्चियनिटी बुनियाद में पॉलिटिकल हो गई, राजनैतिक हो गई।

वही भूल इस्लाम के साथ हो गई। मोहम्मद ने छोटी-छोटी बातों में बदलाहट करने की कोशिश की। उसकी वजह से मोहम्मद को चौबीस घंटे तलवार लिये खड़ा रहना पड़ा। और जब मोहम्मद ने तलवार ले ली तो फिर अनुयायी तो तलवार छोड़ ही नहीं सकता। यह तो च्वांगत्से की कथा है, यह बड़ी मीठी है। इस कथा का नाम है, 'दी लॉ आफ सेवेन', सात का सिद्धांत। समाज की व्यवस्था कुल जोड़ में वही रहेगी। तुम सिर पटककर यहां-वहां तीन की जगह चार, चार की जगह तीन कर लोगे, लेकिन पूरे जोड़ में कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। और उचित यही है कि तुम्हारी पूरी जीवन-ऊर्जा अंतःप्रवेश करे, तो तुम व्यर्थ के संघर्ष में न पड़ो। तुम छोटी बातों में मत उलझो।

समाज से अकलह की स्थिति रहे इसलिए पतंजलि का यम-नियमों पर जोर है। और जिस व्यक्ति को धार्मिक क्रांति करनी है, उसे सामाजिक क्रांति से जरा बचना चाहिए। क्योंकि इन दोनों क्रांतियों का मेल नहीं होता है। सामाजिक क्रांतिकारी से बाहर के जगत में भटक जाता है। वह अपने तक पहुंच ही नहीं पाता। उसका दीया अपरिचित ही रह जाता है।

इसलिए शील को मानकर चलना, आचरण को मानकर चलना। और जिस समाज में जाओ, उसके शील और आचरण को मान लेना; ताकि तुम्हारी ऊर्जा व्यर्थ संघर्ष में व्यय न हो और तुम्हारी पूरी ऊर्जा अंतर्मुखी हो सके। संघर्ष बहिर्मुखता है, साधना अंतर्मुखी है।

**-ओशो, बिन बाती बिन तेल, प्रवचन-2**

# गालियां या गीत

**प्रश्नः अतीत में घटी घटनाओं के प्रति मेरे मन में बहुत आक्रोश छिपा है। जिन व्यक्तियों ने मुझे अपशब्द कहे, अभद्र व्यवहार कर कष्ट पहुंचाया; उनमें से कुछ की मृत्यु भी हो चुकी है किंतु मेरा क्रोध नहीं मरा। मैं क्या करूं?**

उत्तरः देखो वाणी का कमाल। जरा से कठोर शब्द, आज तक कांटों की तरह चुभे हैं। भाषा में वर्णाक्षर वही बावन हैं, चाहो तो उनसे गीत बना लो, चाहो तो गालियां बना लो। कितना गहरा प्रभाव पड़ता है शब्दों का हमारे ऊपर। अचेतन मन में उतर जाता है। जिंदगी बीत जाती है, घाव नहीं मिटते। ओशो ने इन अतीत के संचित घावों से मुक्ति की अनूठी विधि दी है–रेचन, कैथार्सिस।

आप 15 दिन तक रोज 15 मिनट गुस्से का रेचन करें। कमरे के खिड़की दरवाजे बंद करके एक तकिया उठा लें, और जिस व्यक्ति पर नाराजगी है उसकी कल्पना कर, तकिए पर अपना गुस्सा निकाल लें। चीखें–चिल्लाएं, मुक्के मारें। लातें फटकारें, घूसे चलाएं, गालियां बक दें, तकिए को पैरों से कुचलकर अपमानित कर दें। उठा–उठाकर पटक दें। जो मन में आता हो वह कह दें। 15 मिनट में चित्त निर्भार हो जाएगा। कई वर्षों से जो बोझ आप ढोते आ रहे हैं, वह सिर से उतर जाएगा। ओशो ने अतीत के भार से मुक्त होने की अनेक ध्यान–विधियां निर्मित की हैं, जैसे सक्रिय ध्यान, देववाणी ध्यान, जिबरिश, नो–माइंड, बॉर्न–अगेन... इनमें से कोई एक विधि चुन लें।

रेचन वाली ओशो की नई ध्यान पद्धतियां बहुत उपयोगी हैं। जैसे झाड़ू–बुहारी लगााकर हम घर को रोज साफ सुथरा कर लेते हैं, या स्नान करके अपने तन को स्वच्छ कर लेते हैं, ठीक वैसे ही समय–समय पर अपने मन को निर्मल कर लेना भी आवश्यक है। मन पर अतीत की धूल, कर्ममल जम जाती है। नकारात्मक भावनाएं संगृहीत हो जाती हैं। उनकी निर्जरा आवश्यक है। आत्मा का स्नान उसे समझें।

कैथार्सिस करके 15 मिनट शवासन में शांत लेट जाएं, और स्वयं के होने के बोध से भरें। 8–10 दिनों में, या जब भी मन बोझिल महसूस हो, भावावेग विसर्जन की इस प्रक्रिया को दोहरा लेना चाहिए। एक बात स्मरण रखें, केवल कैथार्सिस या रेचन पर्याप्त नहीं है। इससे पुराने घाव तो भरेंगे किंतु नए घावों का निर्माण न रुकेगा। नई कर्ममल न जम पाए इसके लिए अनिवार्य है कि हम वर्तमान में होशपूर्वक जीना सीखें।

दो उपाय सहयोगी होंगे। पहला, अपने अहंकार के भूत के प्रति जागें। चौदह प्रकार के भूतों में से कोई एक प्रत्येक व्यक्ति पर हावी रहता है। (टिप्पणी–चौदह प्रकार के भूतों पर पूर्व पृष्ठों पर एक अध्याय में विस्तार पूर्वक चर्चा है) उसे पहचानें, अपने अहंकार के प्रति सचेत रहें। और दूसरा, क्रोध के वशीभूत होकर न कुछ सोचें, न कुछ बोलें, न हीं कुछ करें। यदि आप थोड़ा सा टालने में, स्थगित करने में कुशल हो जाएं तो चमत्कार घट जाएगा।

सोवियत रूस के अद्भुत संत जॉर्ज गुर्जिएफ ने अपनी जीवन कथा में लिखा है कि जब वह नौ साल का था, तब उसके पिता की मृत्यु हो गई। मरने के पूर्व पिता ने गुर्जिएफ को बुलाकर कहा कि बेटा, वसीयत में तुझे देने के लिए मेरे पास कोई संपत्ति तो है नहीं। सिर्फ एक छोटी सी शिक्षा तुझे देकर जा रहा हूं–गुस्से के वशीभूत बेहोश होकर कभी कुछ मत कहना या करना। जरा ठहर जाना। 24 घंटे बाद जो करना हो, करना। आक्रोश का जोश उतर जाएगा, 24 घंटे में होश आ जाएगा।

जॉर्ज गुर्जिएफ ने लिखा है कि मरणासन्न पिता को दिए वचन को मैंने निभाया, और जिंदगी भर मैं कभी क्रोध कर ही न सका। 24 घंटे में या तो स्वयं की भूल समझ में आ गई, तब जाकर मैंने क्षमा मांग ली। अथवा, पता चला कि दूसरा व्यक्ति किसी गलतफहमी में है, तब जाकर उसे प्रेम से समझाया। बातचीत से मामला हल हो गया। दोनों ही स्थितियों में झगड़ा समाप्त हो गया और गहरी मित्रता बन गई। अपने अहंकार के प्रति होश साधें, और अशुभ को यथासंभव पोस्टपोन करें–ये दो विधियां वर्तमान क्रोध से छुटकारा दिलाएंगी। रेचन की विधि विगत क्रोध की ग्रंथियों से मुक्त करेगी।

# विकल्प नहीं, संकल्प

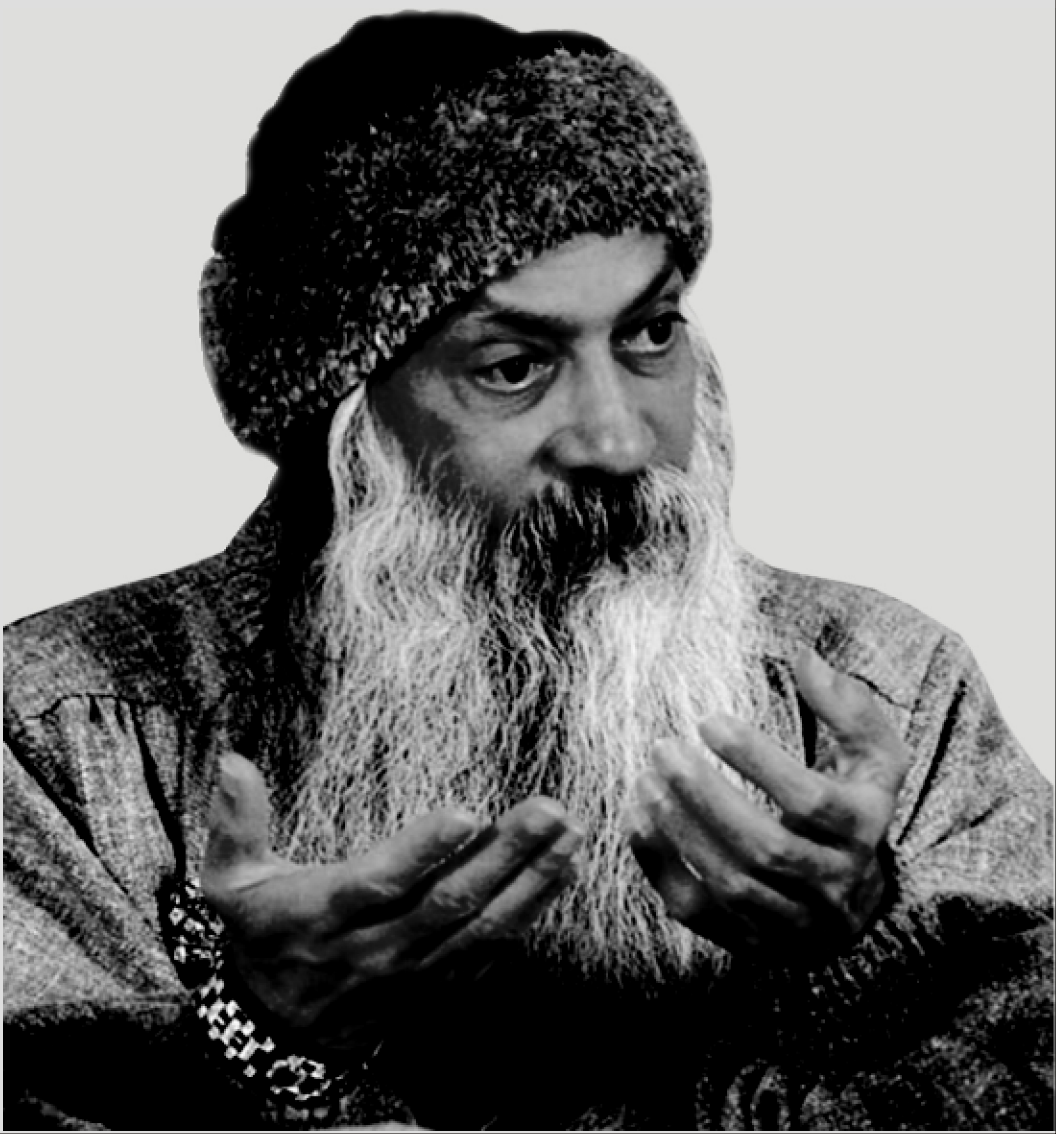

- विकल्प नहीं, सम्यक संकल्प
- संकल्प का केन्द्र
- चुनौतियों में विकास
- संशयात्मा विनश्यति
- अखंड चित्त: दिशा, लक्ष्य, साहस व श्रम
- शक्ति वर्धन की विधियां
- बहिर्कुम्भक में आत्म-सुझाव
- सम्यक संकल्प की सात कसौटियां
- सौभाग्य का अवसर

# विकल्प नहीं, सम्यक संकल्प

## प्रश्न– कृपया समझाएं कि संकल्प क्या है?

उत्तर– हमारी चेतना में बहुत से गुण हैं, उनमें से एक है संकल्प शक्ति–'विल पावर'–इच्छा शक्ति। जो हम होना चाहते हैं हम उस होने की दिशा में आगे बढ़ने लगते हैं। आज हम जो भी हैं हमारे अतीत के संकल्पों का परिणाम है। और कल हम भविष्य में जो भी होंगे, वह हमारे आज के संकल्पों का फल होगा। ऐसा समझें कि संकल्प की शक्ति हमारी चेतना के भीतर एक बीज के समान है। वही अन्ततः एक दिन फल बनती है।

ओशो एक प्रवचन की शुरुआत बड़ी ही प्यारी उपमा से करते हैं–

''मेरे प्रिय आत्मन्! एक बगीचे में मैं गया था। एक ही जमीन थी उस बगीचे की। एक आसमान था उस बगीचे के ऊपर एक ही सूरज की किरणें बरसती थीं। एक सी हवाएं बहती थीं। एक ही माली था। एक सा पानी गिरता था। लेकिन उस बगीचे में फूल सब अलग–अलग खिले हुए थे। मैं बहुत सोच में पड़ गया। हो सकता है, कभी किसी बगीचे में जाकर आपको भी यह सोच पैदा हुई हो।

जमीन एक है, आकाश एक है, सूरज की किरणें एक हैं, हवाएं एक हैं, पानी एक है, माली एक है। लेकिन गुलाब पर गुलाबी फूल हैं, चमेली पर सफेद फूल हैं। सुगंध अलग है। एक ही जमीन और एक ही आकाश से और एक ही सूरज की किरणों से ये अलग–अलग फूल, अलग–अलग रंग, अलग–अलग सुगंध, अलग–अलग ढंग कैसे खींच लेते हैं?

मैं उस माली को पूछने लगा। उसने कहा, सब एक है, लेकिन खींचने वाले बीज अलग–अलग हैं।

छोटा सा बीज लेकिन क्या खींच लेता होगा? जरा सा बीज, इतने बड़े आकाश और इतनी बड़ी जमीन और इतने बड़े सूरज और इतनी हवाओं को, इन सबको एक तरफ फेंक कर अपनी ही इच्छा का रंग खींच लेता है। इतनी बड़ी दुनिया को एक तरफ हटा कर एक छोटा सा बीज अपनी ही इच्छा की सुगंध खींच लेता है। एक छोटे से बीज का संकल्प इतना बड़ा है, जितना आकाश नहीं, जितनी पृथ्वी नहीं, और एक बीज वही हो जाता है जो होना चाहता है। एक छोटे से बीज के भीतर ऐसा क्या हो सकता है?

हर बीज की अपनी इच्छा है, अपना 'विल', अपना संकल्प है। वह छोटा सा बीज वही खींचता है जो खींचना चाहता है, और सब पड़ा रहे, वह उसे छूता भी नहीं। गुलाब गुलाब बन जाता है, चमेली चमेली बन जाती है। पास में ही चमेली बन गई है चमेली,

पास में ही गुलाब गुलाब बन गया है। एक ही मिट्टी से दोनों ने ताकत खींची है। गुलाब की सुगंध अलग है, चमेली की सुगंध अलग है, रंग–ढंग सब कुछ अलग है।

जिंदगी में अनंत संभावनाएं हैं। लेकिन हम वही बन जाते हैं, जो हम उन संभावनाओं में से अपने भीतर खींच लेते हैं। अनंत विचारों का विस्तार है, अनंत विचारों की तरंगें हैं चारों तरफ। लेकिन हम उन्हीं विचारों को अपने पास खींच लेते हैं, जिन विचारों को खींचने की क्षमता, मैगनेट, जिन विचारों को खींचने की रिसेप्टिविटी हमारे भीतर होती है।

इसी दुनिया में एक आदमी बुद्ध हो जाता है। इसी दुनिया में एक आदमी जीसस हो जाता है। इसी दुनिया में एक आदमी कृष्ण हो जाता है। और इसी दुनिया में हम कुछ भी नहीं होते और ना–कुछ होकर मिट जाते हैं और खत्म हो जाते हैं। और जिस दुनिया से खींची जाती हैं सारी चीजें, वह बिल्कुल एक है–वह आकाश एक, वह जमीन एक, चारों तरफ की हवाएं एक, वे सूरज–चांद–तारे एक–वह सब एक, और हर आदमी अलग–अलग कैसे हो जाता है? और हमारी शक्ल–सूरत भी एक–सी मालूम पड़ती है, हमारे शरीर भी एक से मालूम पड़ते हैं, हमारी हड्डी–मांस–मज़्जा भी एक सी मालूम पड़ती है। फर्क कहां पड़ जाता है? आदमी के व्यक्तित्व अलग–अलग कहां हो जाते हैं? कोई आदमी बुद्ध कैसे हो जाता है? कोई आदमी अंधकार में कैसे खड़ा रह जाता है? कोई आदमी प्रकाश में कैसे उठ जाता है?

मनुष्य के व्यक्तित्व में सात केंद्र हैं, सात चक्र हैं। और जो केंद्र सक्रिय होता है वह अपने अनुकूल चारों तरफ से सब कुछ खींच लेता है। केंद्र एक रिसेप्टिविटी बन जाता है, एक ग्राहकता बन जाता है। अगर क्रोध का केंद्र सक्रिय है, तो वह आदमी अपने चारों तरफ से क्रोध की सारी लहरों को समाविष्ट कर लेगा। अगर प्रेम का केंद्र सक्रिय है, तो चारों तरफ से प्रेम की धाराएं उस आदमी की तरफ दौड़ने लगेंगी। अगर काम का केंद्र सक्रिय है, तो चारों तरफ से कामवासना उसकी तरफ दौड़ने लगेगी। वह एक खड्डे की तरह बन जाएगा और चारों तरफ की धाराएं, जो उसने मांगा है, उसकी तरफ आनी शुरु हो जाएंगी।

परमात्मा प्रत्येक को वही दे देता है जो हम चाहते हैं। और कभी भूल कर परमात्मा को यह मत कहना कि यह तूने हमें कैसे दे दिया जो हमने नहीं चाहा था। आज तक किसी आदमी को वह नहीं मिला है जो उसने न चाहा हो।

जो हमने कभी चाहा था, वही हमें मिल गया है। जो आज हम होना चाह रहे हैं, शीघ्र ही हम वही हो जाएंगे। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में, हम अन्ततः वही हो जाते हैं जो हम चाहते हैं, जो चाहत हमारे प्राणों में बसी थी। उसी चाहत की शक्ति, अभीप्सा की ताकत का नाम संकल्प शक्ति या विल पावर है।

# संकल्प का केन्द्र

संकल्प शक्ति अथवा विल पावर किस केन्द्र से सम्बन्धित हैं? 'अन्तर्यात्रा' नामक पुस्तक में ओशो ने नाभि को संकल्प का केन्द्र बताया तथा 'शान्ति की खोज' नामक पुस्तक में भृकुटि के मध्य में आज्ञा चव्रफ को संकल्प का केन्द्र बताया। यह विरोधाभास क्यों?

यह विरोधाभास नहीं हैं। वस्तुतः संकल्प में दो चीजों की जरूरत है; पहला निर्णय की क्षमता, और दूसरा साहस। प्रथम–'डिसीज़न', हम तय करें क्या हमें होना है? कहां हमें जाना है? हमारा लक्ष्य क्या है? और द्वितीय–'करेज', हम श्रम करने की हिम्मत करें, हम अपनी सारी शक्ति और ऊर्जा उस दिशा में उड़ेल सकें। तो संकल्प में दो चीजें जरूरी हैं–निर्णय और साहस। निर्णय का केन्द्र आज्ञा चक्र है और साहस का केन्द्र, हमारे प्राणों का केन्द्र, वह मणिपुर चव्रफ या नाभि चव्रफ है। इसलिए दोनों केन्द्रों को ही संकल्प का केन्द्र कहा जा सकता है। इसमें कोई विरोधाभास नहीं हैं। आज्ञा चव्रफ से निर्णय आते हैं, नाभि से वह शक्ति पैदा होती है जो उस निर्णय को पूरा करती है। इन दोनों केन्द्रों का सम्मिलित रूप ही संकल्प हैं। संकल्प यानी साहस धन निर्णय, आज्ञा चव्रफ मणिपुर चक्र, दोनों एक साथ।

हमारा जो केन्द्र सक्रिय हो जाता है, उसी के अनुरूप हमारी दृष्टि बदल जाती है। और दृष्टि के साथ ही सृष्टि भी बदल जाती है। ओशो कहते हैं–''एक आदमी क्रोध में जीता है, अशांति में जीता है, लोभ में जीता है, भय में, वासना में, और फिर वह पूछता है–कहां है ईश्वर? कहां है परमात्मा? कहीं दिखाई नहीं पड़ता? कोई आंख के पास आकर कितना ही सितार बजाए, आंख सितार बजाने को नहीं सुन पाएगी। और कान के पास कोई कितने ही दीये जलाए, कान को कुछ भी पता न चलेगा कि बाहर रोशनी है और दीये जल गए हैं। और कान कहता रहेगा– कहां है रोशनी? कहीं सुनाई नहीं पड़ती। अब रोशनी सुनी जाती है कहीं। और आंख कहेगी– कहां बजती है वीणा? कुछ दिखाई नहीं पड़ता; कहां है संगीत? संगीत देखा नहीं जाता।

हम जिस यंत्र से, जिस उपकरण से जीवन को पहचानने और देखने जाते हैं, वही हमें उपलब्ध होना शुरु हो जाता है। यह दुनिया वही बन जाती है जो हम हैं।''

# चुनौतियों में विकास

## प्रश्नकर्ता–संकल्प की कुंजी कैसे उपलब्ध करें?

चुनौतियों में ही संकल्प की शक्ति उत्पन्न होती है। तिब्बत के दलाईलामा ने अपनी जीवनकथा में उल्लेख किया है कि जब वह 5 वर्ष का हुआ, उसके पिता ने उससे कहा कि बेटे कल सुबह तुम्हें पाठशाला जाना होगा। घर का बूढ़ा नौकर घोड़े पर तुम्हें बिठाकर स्कूल ले जाएगा। दो–तीन बातें तुमसे कह दूं। एक बार घोड़े पर बैठ जाओ तो पीछे मुड़कर न देखना। दूसरी बात, तुम्हारी आंखों में आंसू नहीं आने चाहिए, तीसरी बात स्कूल में जो प्रवेश की परीक्षा होगी उसमें असफल मत होना। यदि असफल हो गये तो लौट के फिर इस घर में मत आना, हमारे घर में असफल लोगों का स्वागत नहीं है। हमारे कुल में ऐसे लोग पैदा नहीं हुए जो पीछे मुड़कर देखते हों। जहां जाना है वहां देखो। सोचो, उस 5 साल के बच्चे पर क्या बीती होगी, शायद रात को ठीक से सो भी नहीं पाया होगा। सुबह हुई, घर के बूढ़े नौकर ने उसका सामान घोड़े पर लादा, उसको बिठाया और फिर से तीनों बातें उसको याद दिला दीं कि तुम्हारे पिता और माता खिड़की पर खड़े होकर देख रहे हैं। यदि तुमने पलट कर देखा तो वे तुम्हें हमेशा–हमेशा के लिये त्याग देंगे। यह जीवन–मरण का प्रश्न है, कोई छोटा–मोटा सवाल नहीं है। यदि चेहरे पर मक्खी बैठ गयी, और उसे उड़ाने के लिये तुमने गर्दन हिला दी पीछे, फिर वे सुनेंगे नहीं कि तुमने तो मक्खी उड़ाने के लिये सिर हिलाया था। फिर वे तुम्हें घर से निष्कासित ही कर देंगे। इस कुल की मर्यादा का ख्याल रखना।

दलाईलामा ने लिखा है अपने संस्मरण में कि बहुत मन हुआ कि पीछे मुड़कर एक बार उस घर को देख लूं जिसमें इतने समय रहा लेकिन भीतर से उतना ही एक प्रगाढ़ संकल्प आया कि नहीं, नहीं मुड़ना है, तो नहीं ही गर्दन मुड़ी। आंखों में आंसू बस पलकों पर ही थे, आने आने को थे लेकिन सूख गये।

स्कूल पहुंचा, वहां के प्राचार्य ने कहा तुम्हारी परीक्षा होगी। बैठ जाओ यहीं द्वार पर और जब तक मैं न आऊं तब तक यहां से हिलना–डुलना नहीं, आंख नहीं खोलना, आंख बन्द करके बैठो। न बोलना है कुछ, न हिलना–डुलना है। यही तुम्हारी परीक्षा है। हो सकता है मैं आधे घंटे बाद आऊं, घंटे बाद आऊं या दो घंटे बाद आऊं। वह बेचारा बच्चा वहां बैठ गया आंख बंद करके। जो नौकर उसे छोड़ने आया था उसने कहा कि मैं तो वापस घर जा रहा हूं। क्योंकि मेरे रुकने का कोई सवाल नहीं। या तो तुम स्कूल की परीक्षा में पास हो जाओगे तो तुम यहीं हॉस्टल में रहोगे या तुम फेल हो जाओगे तब

तुम्हें जहां जाना है, चले जाना... क्योंकि घर लौटने का तो कोई सवाल ही नहीं। इसलिये मैं तो चला। अब जरा सोचो वह 5 साल का बच्चा वहां बैठा है, घर का नौकर वापिस चला गया है। उसका जीवन दांव पर लगा है, आंख नहीं खोलनी है।

थोड़ी देर में वहां से एक खिलौने बेचने वाला निकलता है। इस बच्चे का बड़ा मन होता है कि कम से कम एक बार तो आंख खोलकर देख लूं। यह बच्चा पहली बार शहर में आया, शहर में कैसे खिलौने बिकते हैं? बड़ी उत्सुकता जागी, लेकिन आंख नहीं खोली; भीतर एक मजबूत निर्णय कि आंख नहीं खोलनी है। क्योंकि आंख खुलने का मतलब स्कूल की परीक्षा में असफल और घर में प्रवेश से भी इंकार। कुछ समय बाद मिठाई बेचने वाला निकला, बच्चे का मन बहुत ललचाया लेकिन आंख नहीं खोली। फिर स्कूल के बच्चों की छुट्टी हो गयी, वे वहां से गुजरे तो इस बच्चे को तंग करने लगे। कोई उसका पीछे से कुर्ता खींच रहा है, किसी ने उसको कंकड़ मार दिया, किसी ने उसके बाल खींच दिये। वे बच्चे उसका मज़ाक उड़ा रहे हैं, व्यंग्य कर रहे हैं। इसका मन तो हुआ कि आंख खोलकर देखूं कि कौन मेरे बाल खींचता है? जवाब दूं उसको जिसने मुझे कंकड़ मारा।

... लेकिन उसके भीतर एक प्रगाढ़ संकल्प पैदा हो रहा था कि आंख नहीं खोलनी है, जवाब नहीं देना है, चाहे जो भी हो जाए। घंटे भर बाद वह प्राचार्य आया। उसने उठाकर इस बच्चे को गले लगाया और कहा कि बेटे तुम परीक्षा में पास हुए। आओ, तुम्हारा स्वागत है। तुम हो संकल्पवान, तुमसे उम्मीद की जा सकती है कि तुम जिंदगी में कुछ करके दिखाओगे। जो बच्चा एक घंटा आंख बंद न कर सके वह जिंदगी में क्या खाक कर पाएगा।

मैं देखता हूं जब नये–नये साधक ध्यान करने आते हैं, बार–बार मैं कहता हूं आंख बंद कर लें... आंख बंद कर लें... मगर उनकी आंख ही बंद नहीं होती। आंखें खोल–खोलकर देखते रहते हैं कि क्या हो रहा है? डूबना है अपने भीतर, देखना है अपने भीतर, लेकिन वे बाहर देख रहे हैं। एक संकल्पहीन आदमी–जो आंख बंद नहीं कर पा रहा, वह विचार कैसे बंद कर पायेगा? इतना स्थूल काम नहीं कर पा रहा है, विचार तो बहुत सूक्ष्म हैं। क्या यह क्रोध को जीत पायेगा? या काम को जीत पायेगा? वे तो बहुत गहरे, बहुत सूक्ष्म, अचेतन में घुसे हुए हैं। यह व्यक्ति तो बहुत छोटा–सा काम–आंख बंद करने को भी नहीं कर पा रहा है।

दलाईलामा ने लिखा है कि उस दिन जो मुझे लगा था कि मेरे शिक्षक, मेरे माता–पिता कितने क्रूर हैं, कितनी कठिन मेरी परीक्षा ले रहे हैं। लेकिन मैं आज जानता हूं वे लोग कठोर नहीं थे, वे बड़े करुणावान थे। उन्होंने मेरे भीतर संकल्प को जगाया।

तो मैं आपसे कहना चाहूंगा कि छोटी–मोटी चुनौतियां, छोटे–मोटे 'रिस्क', कुछ खतरे के काम, कुछ ऐसे कार्य जिनमें आपको कठिनाई जान पड़ती है, उनको करने की कोशिश करें। और तब आप पाएंगे कि आपके भीतर संकल्प शक्ति मजबूत होने लगी।

ओशो ने एक उद्धरण दिया है–''पॉम्पेई में विस्फोट हुआ ज्वालामुखी का और पाम्पेई का पूरा नगर जल गया। एक सिपाही जो चौरस्ते पर खड़ा था रात पहरा देने को, सुबह छह बजे उसकी ड्यूटी बदलेगी, दूसरा सिपाही सुबह छह बजे आकर उसकी जगह खड़ा होगा। सारा पॉम्पेई भाग रहा है, रात के दो बजे ज्वालामुखी फूट गया, सारा पॉम्पेई कंप रहा है। आग उगल रही है, सारा नगर जल रहा है, सारे गांव के लोग भाग रहे हैं। भागते लोग उस सिपाही को कहते हैं, यहां किसलिए खड़े हो? वह कहता है कि सुबह छह बजे ड्यूटी बदलने का वक्त है। उसके पहले कैसे हट सकता हूं? अरे! लोग कहते हैं, पागल हो गए हो? अब ड्यूटी वगैरह का कोई सवाल नहीं है, मर जाओगे! सुबह छह कभी नहीं बजेंगे, आग लग रही है पूरे गांव में।

उसने कहा, वह तो ठीक है। यही तो मौका है, जब पता चलेगा कि मैं सिपाही हूं या नहीं? छह बजे के पहले कैसे हट सकता हूं? छह बजे तक जिंदा रहा तो ड्यूटी सम्हाल दूंगा, छह बजे तक जिंदा नहीं रहा तो भगवान जाने। फिर मेरा कोई कसूर नहीं है।

कहते हैं वह सिपाही उसी जगह खड़ा हुआ जल गया। पॉम्पेई का पूरा नगर भाग गया। उन भागे लोगों की स्मृति में कोई मूर्ति नहीं है। उस सिपाही की मूर्ति बनानी पड़ी उस जगह। उस नगर में एक ही आदमी था जिसको आदमी कहें, जिसके भीतर कुछ बल था, जिसके भीतर कोई मन था जो खड़ा रह सकता है। लेकिन हम! कहां पॉम्पेई, कोई पड़ोस में सिगरेट जला ले, और आंखें खुल जाएंगी। कोई पड़ोस में जरा सा खांस दे, और आंखें खुल जाएंगी। कैसा यह व्यक्तित्व है? इस व्यक्तित्व को लेकर किस मंदिर में प्रवेश की इच्छा है?

नहीं, किसी मंदिर में कहीं प्रवेश नहीं हो सकेगा। हो सकता है, कोई रुकावट नहीं है सिवाय हमारे। थोड़ा संकल्प, थोड़ा बल, थोड़ी हिम्मत, थोड़ी इस बात की कोशिश कि मैं जो कर रहा हूं, कुछ करूं तो... हमारे व्यक्तित्व में जिसको कहें पुकार, जिसको कहें आवाज, वह है ही नहीं। और नहीं है, तो धर्म के रास्ते पर कोई गति नहीं हो सकती।''

# संशयात्मा विनश्यति

**प्रश्नकर्ता–श्रीमद्भागवत गीता में कृष्ण कहते हैं कि 'आत्मा को नष्ट नहीं किया जा सकता न शस्त्रों के द्वारा, न अग्नि के द्वारा' और गीता में ही कृष्ण यह भी कहते हैं कि 'संशयात्मा विनश्यति' इस विरोधाभास का क्या अभिप्राय है?**

संशय का अर्थ है–विकल्पों में डोलना। संकल्प की ठीक उलटी स्थिति का नाम है विकल्प। चित्त डांवाडोल हो रहा है; यह करूं कि वह करूं, ऐसा करूं कि वैसा करूं, यह हो जाऊं या वह हो जाऊं। याद रखना संशय का अर्थ संदेह नहीं होता है जैसा कि सामान्यतः समझा जाता है। संशय का अर्थ है–डांवाडोलपन, अनिर्णय की स्थिति। संदेह का अर्थ बिल्कुल अलग हैं। संदेह का अर्थ है कि हमारे भीतर एक प्रश्न है, तो प्रश्न का तो स्वागत होता है। कृष्ण अर्जुन के हजारों प्रश्नों का उत्तर देते हैं, उसी से गीता निर्मित होती है। संदेह एक अलग चीज है। संदेह का अर्थ है कि मैं जानना चाहता हूं। वैज्ञानिक भी संदेह करता है, वह खोजबीन करता है। वह तो अन्वेषण का

आधार है। ज्ञान का आधार संदेह है, किन्तु संशय आत्मा को नष्ट करने वाला है। जिस आत्मा को आग नहीं जला सकतीं, शस्त्र नहीं छेद सकते, उसे संशय नष्ट कर देता है। यह बात बड़ी ही महत्वपूर्ण है 'संशयात्मा विनश्यति।' तो पहले तो संशय और संदेह में भेद को समझें और फिर इस बात को समझें कि जब भी हम डांवाडोल होते हैं हम आत्महीन हो जाते हैं। जब हम संकल्पवान होते हैं तब ही हम आत्मवान होते हैं।

पश्चिम में एक बहुत अद्‌भुत दार्शनिक हुआ पिछली सदी में, जॉर्ज गुर्जिएफ उसका नाम था। बड़ी विचित्र बातें उसने कही हैं। कोई पूछता कि आत्मा का जन्म होता है कि नहीं होता, आत्मा होती है कि नहीं होती? वह इस प्रश्न का उत्तर बहुत अजीब देता था। सामान्यतः आस्तिक कहते हैं कि हां, आत्मा होती है, आत्मा का जन्म होता है। नास्तिक कहते हैं कि नहीं, कोई आत्मा नहीं होती। गुर्जिएफ का उत्तर बड़ा विचित्र था। वह कहता था कि कुछ लोगों में आत्मा होती है, सब लोगों में आत्मा नहीं होती। वह एक तीसरी ही बात कहता था। गुर्जिएफ का आत्मा से अर्थ था संकल्प–शक्ति। जो व्यक्ति संकल्पवान है, दृढ़ निश्चयी है वही आत्मवान है। वह कहता था कि आत्मा का जन्म नहीं होता, आत्मा को जन्माना पड़ता है। तुम श्रम करोगे, तुम अपने जीवन में

निर्णय लेने की कला सीखोगे और उसे पूरा करने के लिए निष्ठापूर्वक मेहनत करोगे, उससे धीरे–धीरे आत्मा का जन्म होगा। माता–पिता से जो जन्म हुआ है वह केवल शरीर का जन्म है, आत्मा का जन्म तुम्हें स्वयं ही देना होता है। हिन्दुओं में ब्राह्मण के लिए एक शब्द है द्विज, दुबारा जन्म, 'ट्वाइस बॉर्न'। गुर्जिएफ ठीक उसी तरफ इशारा कर रहा था कि एक जन्म तो माता–पिता से मिला, वह देह का जन्म था, एक जन्म तुम्हें स्वयं को स्वयं ही देना होगा। तब तुम द्विज बनोगे, तब तुम आत्मवान बनोगे। उसके पहले कोई आत्मा नहीं है।

गुर्जिएफ कहता था इसलिए बहुत लोग ध्यान करने की कोशिश में प्रयास करते हैं कि आत्मा को खोजें, बिना आत्मा को पैदा किए अगर आत्मा को ढूंढ़ने चले; यह खोज कभी भी सफल न होगी। पहले आत्मा को पैदा तो करो फिर खोजना आत्मा को। तब आत्मा मिलेगी। एक संशय में डोलते हुए अनिर्णय में जीने वाले व्यक्ति के भीतर कोई आत्मा नहीं है। गुर्जिएफ ने इसके लिए एक बहुत अच्छा शब्द उपयोग किया है–'क्रिस्टलाइज़ेशन'। हमारे भीतर के जो खंड–खंड हैं वे आपस में जुड़ जाएं, एक हो जाएं, तब आत्मा पैदा होती है।

अभी हमारी स्थिति विकल्पों में टूटी हुई है। हमारा एक खंड कुछ चाहता है, दूसरा खंड कुछ और चाहता है, तीसरा खंड कुछ और, चौथा कुछ और हम बहु–चित्तवान हैं, 'मल्टी–साइकिक', 'पॉली–साइकिक' हैं। हमारे भीतर अलग–अलग टुकड़े हैं। हमारी स्थिति ऐसी है जैसे एक बैलगाड़ी में चारों दिशाओं में बैल जोत दिए गए हों; कोई बांए खींच रहा है, कोई दाएं, कोई उत्तर, कोई पूरब, कोई पश्चिम, कोई दक्षिण। ये बैलगाड़ी कहीं भी नहीं पहुंच पाएगी, वह केवल नष्ट हो जाएगी। वही अर्थ है 'संशयात्मा विनश्यति' का।

एक मेरे परिचित हैं, कई प्रेमिकाएं हैं उनकी। और अक्सर दो–तीन फिल्मी गीत गाते रहते हैं। उनको सुन कर मुझे ख्याल में आया कि इस आदमी की स्थिति कैसी होगी भीतर... ठीक उसी बैलगाड़ी जैसी। अनेक से जो प्रेम करता है, चाहे वह स्त्री–पुरुष की बात हो चाहे जीवन के अन्य लक्ष्यों के बारे में हो, जो व्यक्ति भी अनेक से प्रेम करेगा वह भीतर टूटना शुरु हो जाएगा। अक्सर मैं उन सज्जन के मुंह से ये गीत सुनता हूं... 'मैं इधर जाऊं या उधर जाऊं, बड़ी मुश्किल में हूं मैं किधर जाऊं?' 'किसको प्यार करूं, कैसे प्यार करूं, तू भी है, वो भी है, ये भी है!' एक गीत और अक्सर उनसे सुनता हूं जब वह उदास होते हैं। प्रेमिकाओं से झगड़ा होने पर वे गाते हैं कि 'इस दिल के टुकड़े हजार हुए, कोई इधर गिरा कोई उधर गिरा।' वे संशय वाले आदमी हैं। और इसलिए कृष्ण जब कह रहे हैं 'संशयात्मा विनश्यति' तो उनका ठीक वही अर्थ है जो गुर्जिएफ कह रहा है कि संशय तुम्हारी आत्मा को नष्ट कर देगा, 'क्रिस्टलाइज़्ड' हो जाओ।

इसलिए जो व्यक्ति बहुतों के प्रेम में होता है; विपरीत दिशाएं एक साथ चुन लेता है, उस व्यक्ति की बड़ी प़फजीहत हो जाती है। भीतर वह टूटना शुरु हो जाता है, टुकड़े–टुकड़े हो जाता है। अन्ततः वह पाता है कि उसके भीतर आत्मा जैसी कोई चीज नहीं बची। बड़ा तनाव है, बड़ा खिंचाव है और सब नष्ट हो गया। यह बात बिल्कुल ठीक है कि जिस आत्मा को शस्त्र छेद नहीं पाते, अग्नि जला नहीं पाती, उसे संशय, डांवाडोलपन, अर्थात बहुत दिशाओं में खिंचाव वाली स्थिति, नष्ट कर देती है।

# अखंड चित्तः दिशा, लक्ष्य, साहस व श्रम

## प्रश्नकर्ता–यह आज्ञा चक्र कैसे विकसित होता है?

जिस केन्द्र पर ध्यान दिया जाता है वह विकसित होना शुरु हो जाता है।

ओशो समझाते हैं–'हमारे सात केंद्र हैं। पहला और अंतिम केंद्र, पहला और सातवां केंद्र शक्ति के संग्रह हैं। वे कुछ करते नहीं, वे केवल शक्ति के आलय हैं, वे शक्ति के संग्रहालय हैं। वहां शक्ति संगृहीत है, पहले और सातवें केंद्र पर। दूसरा केंद्र शक्ति को बाहर फेंकने का केंद्र है। सेक्स का केंद्र शक्ति को बाहर पेंफकने का केंद्र है। वह एक्जिट है, वहां से शक्तियां बाहर फिंक जाती हैं। इसलिए उस केंद्र पर ही जो जीवन भर जीता है, वह निरंतर अशक्त, होता चला जाता है। धीरे–धीरे उसकी सारी ऊर्जा बह जाती है और वह ऊर्जाहीन और शक्तिहीन हो जाता है।

इसलिए जो आदमी वासना के जितना निकट जीएगा, उस आदमी के पास संकल्प शक्ति उतनी ही कम होगी, क्योंकि वह आज्ञा के केंद्र से सर्वाधिक दूर होगा। जो आदमी आज्ञा के केंद्र के पास ज्यादा जीएगा, जिसका ध्यान वहां होगा, उस आदमी को पता भी नहीं चलेगा कि वासना उसके चित्त से धीरे–धीरे क्षीण हो गई है और वासना धीरे–धीरे विलीन हो गई है। क्योंकि आज्ञा का केंद्र शक्तियों का निमंत्रक है, बुलाने वाला है, अपशोषित करने वाला है, उनको पी जाने वाला है। और जितनी शक्ति आज्ञा के केंद्र पर पी ली जाती है, उतना ही व्यक्तित्व मजबूत, शक्तिशाली, ऊर्जस्वी और प्रबल और संकल्पवान होता चला जाता है।

ये दो केंद्र– सेक्स का केंद्र शक्ति के निष्कासन का, आज्ञा का केंद्र शक्ति के आमंत्रण का केंद्र है। इन दोनों के बीच के तीन केंद्र नाभि से लेकर कंठ तक–नाभि, हृदय और कंठ– वे तीनों केंद्र अंतर्–क्रिया के केंद्र हैं, जो शरीर की भीतरी क्रियाओं को गतिमान रखते हैं।

इन सातों केंद्रों की ठीक–ठीक समझ साधक के लिए बहुत अनिवार्य है। लोग कहते हैं : ईश्वर नहीं दिखाई पड़ता, आत्मा नहीं दिखाई पड़ती। जिस केंद्र से परमात्मा का संबंध जुड़ सकता है, वह सातवां केंद्र है। उस केंद्र के सक्रिय होते ही जगत विलीन होने लगता है और परमात्मा दिखाई पड़ने लगता है। ऐसा नहीं कि जगत नहीं रह जाता, बल्कि ऐसा कि जगत तो रह जाता है, लेकिन जगत की भांति नहीं, जगत परमात्मा की भांति ही रह जाता है। वह जो सातवें चक्र की मैंने बात कही, वहीं, वहीं मंदिर है, जहां प्रवेश करना है। उसका द्वार, उस मंदिर का द्वार आज्ञा चक्र है, जहां से प्रवेश होगा।'

## तीसरे नेत्र की साधना

इस आज्ञा चक्र पर कैसे श्रम किया जाए? क्या किया जाए? किस भांति इस चक्र को हम जीवंत, सक्रिय और परिपूर्ण खिला हुआ कर दें, इसकी पूरी 'फ्लावरिंग' हो जाए? जीवन में जितना संकल्प होगा, उतना ज्यादा यह द्वार खुलेगा। संकल्प का अर्थ क्या है? संकल्प का अर्थ है कि कुछ भी करना हो तो समग्र शक्ति उसमें समायोजित हो जानी चाहिए भीतर खंड–खंड नहीं होने चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि आधा मन कहता है करो, आधा कहता है मत करो। अगर मन टुकड़ों में बंटा है, 'डिसइंटिग्रेटेड' है, खंड–खंड है, तो आपस में टुकड़े लड़ जाएंगे और संकल्प नष्ट हो जाएगा। और हम सबके मन टुकड़ों में बंटे हुए हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। न तो हमारे भीतर सीधा हां है, न हमारे भीतर सीधा न है। हमारे भीतर दोनों एक साथ है। न हम बाएं जाना चाहते हैं, न दाएं। हम दोनों तरफ एक साथ जाना चाहते हैं। तब धीरे–धीरे पूरा संकल्प क्षीण हो जाता है।

हमारा मन ऐसा है जैसे बैलगाड़ी में हमने चारों तरफ बैल जोत दिए हों। वे चारों तरफ बैलगाड़ी को खींचते हैं। बैलगाड़ी कहीं जाती नहीं, सिर्फ उसके अस्थि–पंजर ढीले होते हैं। और इतना घमासान युद्ध मचता है कि बैल भी धीरे–धीरे थक जाते हैं और घबड़ा जाते हैं कि यह क्या हो रहा है।

अगर आप अपनी जिंदगी पर ख्याल करेंगे, तो आप पाएंगे कि आपकी गाड़ी में भी चारों तरफ बैल जुते हुए हैं। कोई संकल्प नहीं है भीतर। पच्चीस संकल्प एक साथ हैं। कभी आपने ख्याल भी न किया होगा कि एकदम विरोधी संकल्प एक साथ हैं। जिसको आप प्रेम करते हैं, उसी को आप घृणा करते हैं।

एकदम से चौंकाने वाली बात लगेगी। लेकिन आपने कभी ख्याल नहीं किया होगा कि जो अभी मित्र है, वह एक क्षण में शत्रु हो सकता है। अभी इससे इतना प्रेम था, एक क्षण में इतनी घृणा कैसे आ गई? उस प्रेम के ठीक नीचे घृणा बैठी थी, वह घृणा प्रतीक्षा करती थी–कब प्रेम हट जाए और मैं मौजूद हो जाऊं।

इसलिए दुश्मन से उतना खतरा नहीं होता जितना मित्रों से खतरा होता है क्योंकि दुश्मन अगर अब आगे कुछ भी बन सकता है तो मित्र बन सकता है, उसके भीतर मित्र छिपा रहता है। और मित्र अगर अब कुछ भी बन सकता है तो एक ही 'पॉसिबिलिटी' है कि दुश्मन बन सकता है, उसके भीतर दुश्मन छिपा रहता है। इसलिए दुश्मन से तो एक आशा होती है, मित्र से कोई आशा नहीं होती।

जिस पर आप श्रद्धा करते हैं, उसके ही लिए आपके मन में पूरी अश्रद्धा भीतर मौजूद होती है। अश्रद्धा मौके की तलाश में होती है कि कुछ पता चल जाए तो प्रकट हो जाऊं। श्रद्धा एक तरफ खिसक जाए, तो अश्रद्धा ऊपर आ जाए।

इसलिए श्रद्धा करने वाले से बहुत सावधान रहना चाहिए। वह तैयारी कर रहा होगा भीतर कि कब अश्रद्धा करूं।

हमारे मन की पूरी स्थिति एक आंतरिक कलह से भरी हुई है। हम ऊपर कुछ हैं, भीतर कुछ हैं, जो हैं उसी वक्त कुछ और हैं। जब आप किसी का हाथ–हाथ में लेकर कहते हैं कि मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूं। थोड़ा भीतर झांक कर देखना कि मन उसी वक्त क्या कह रहा है? मन उसी वक्त कह रहा होगा–क्या झूठी बातें बोल रहे हो। क्यों ऐसी बातें बोल रहे हो? मन उसी वक्त कह रहा होगा।

एक फकीर था नसरुद्दीन। उसके गांव का जो राजा था उसकी पत्नी से उसका प्रेम था। वह एक रात उस राजा की पत्नी से विदा ले रहा है। विदा लेते वक्त उसने उस स्त्री को कहा कि तुझसे ज्यादा सुंदर कोई स्त्री ही नहीं है। और तुझे मैंने जितना प्रेम किया है–आह, ऐसा प्रेम न मैंने कभी किसी को किया है, न मैं कभी कर सकता हूं। तू अद्‌भुत है! जैसा कि पुरुष स्त्रियों से कहते हैं और स्त्रियां खुश होती हैं। वह स्त्री खुश हो गई, बहुत खुश हो गई। उसने कहा– सच!

उसको इतना खुश देख कर वह जो नसरुद्दीन था–वह बड़ा सच्चा आदमी था–उसने कहा, ठहर! क्योंकि मेरे भीतर जो चल रहा है, वह भी मैं तुझे बता दूं। जब मैंने यह कहा कि तुझसे ज्यादा सुंदर स्त्री कोई भी नहीं है–तब मैंने कहा, अरे कहां की साधारण स्त्री को क्या कह रहे हो, बहुत स्त्रियां हैं। मेरा मन भीतर यह कह रहा था। और जब मैंने तुझसे कहा कि तुझे मैं बहुत प्रेम करता हूं, तुझसे ज्यादा प्रेम मैंने कभी किसी को नहीं किया। तब मेरा मन भीतर हंस रहा था, वह कह रहा था, यह तो मैंने और स्त्रियों से पहले भी कहा है। बिल्कुल यही कहा है।

आदमी का मन पूरे वक्त 'इनर कंट्राडिक्शंस' से भरा हुआ है, भीतरी द्वंद्व से भरा हुआ है। भीतर द्वंद्व है तो संकल्प कभी पैदा नहीं होगा। क्योंकि संकल्प का अर्थ है : एक मन। संकल्प का अर्थ है– एक मन, 'इंटीग्रेशन'। संकल्प का अर्थ है– एक आवाज। संकल्प का अर्थ है– एक स्वर। और हम चौबीस घंटे विरोधी स्वरों से भरे हैं। इसकी समझ चाहिए कि धीरे–धीरे हमारे विरोधी स्वर समाप्त हों। जब हम कहते हैं कि मैं बहुत दृढ़ विश्वास करता हूं, तभी पक्का हमारे भीतर संदेह मौजूद होता है। अजीब बात है, हम जो कहते हैं, ठीक उससे उलटा हमारे भीतर मौजूद होता है। यह ठीक उलटा भीतर मौजूद है, यह निगेट कर देता है, जो हम कहते हैं उसे काट डालता है। तब हमारा पूरा व्यक्तित्व इन विरोधों में उलझ कर समाप्त हो जाता है।'

# शक्ति वर्धन की विधियां

## प्रश्न–कृपया संकल्प शक्ति को बढ़ाने की विधियों पर प्रकाश डालें?

उत्तर–मैं चाहूंगा ओशो के इन दो–प्रवचनों को आप पढ़िए। 'अन्तर्यात्रा' नामक किताब में ओशो ने संकल्प शक्ति को बढ़ाने के लिए नाभि केन्द्र पर ध्यान रखने की बात कही है। यह प्रयोग साहस को, प्राण ऊर्जा को बढ़ाने में, मणिपुर चक्र को सक्रिय करने में बहुत उपयोगी है, विशेषकर उन लोगों के लिए जो भयभीत हैं, डरते हैं, कायर हैं। वे लोग अपने भय के पार जा सकते हैं अगर वे गहरी श्वास का प्रयोग शुरु करें।

दूसरी प्रक्रिया ओशो ने 'ध्यानसूत्र' नामक प्रवचन माला में समझायी है कि श्वास को बाहर रोक कर कुम्भक की अवस्था में अपने भीतर के निर्णय को दोहरायें, जो भी संकल्प आपने लिया है कि मैंने यह तय किया है कि मैं अपनी सारी ऊर्जा इसमें लगाऊंगा। समझो आपने तय किया है कि मैं ध्यान करूंगा। तो भीतर अपने दोहराएं कि मैं ध्यान करूंगा, मैं ध्यान में सफल होकर रहूंगा और श्वास रुकी हुई है। रात को सोने से पहले कम से कम दस बार इसको करें। तब तक श्वास न लें जब तक कि वह अपने आप ही न आ जाये। अपनी तरफ से आप रोकने का पूरा प्रयास करें। इससे क्या होगा? इससे आपके भीतर वह जो बहुचित्तवान मन है, वह एकजुट हो जाएगा।

क्योंकि जब श्वास रुक गयी तो अचानक एक आपातकालीन स्थिति निर्मित हो गयी, एक इमरजेन्सी 'सिचुएशन' पैदा हो गयी; प्राण संकट में हैं, इस समय मन खंड-खंड नहीं रह सकता, वह एकजुट हो जाता है। 'ध्यान सूत्र' नामक प्रवचनमाला के आरंभ में, शिविर का उद्घाटन करते हुए ओशो ने विल पावर मजबूत करने की यह बहुत सरल सी तरकीब इस प्रकार समझाई है-

'इन तीन दिनों में हम निरंतर प्रयास करेंगे अंतस प्रवेश का, ध्यान का, समाधि का। उस प्रवेश के लिए एक बहुत प्रगाढ़ संकल्प की जरूरत है। प्रगाढ़ संकल्प का यह अर्थ है... सामान्यतः हमारा जो मन है, उसका एक बहुत छोटा-सा हिस्सा, जिसको हम चेतन मन कहते हैं, उसी में सब विचार चलते हैं। उससे बहुत ज्यादा गहराइयों में हमारा नौ हिस्सा मन और है। अगर हम मन के दस खंड करें, तो एक खंड हमारा कांशस है, चेतन है। नौ खंड हमारे अचेतन और अनकॉन्शस हैं। इस एक खंड में ही हम सोचते-विचारते हैं। नौ खंडों में उसकी कोई खबर नहीं होती, नौ खंडों में उसकी कोई सूचना नहीं पहुंचती।

हम यहां सोच लेते हैं कि ध्यान करना है, समाधि में उतरना है, लेकिन हमारे मन का बहुत-सा हिस्सा अपरिचित रह जाता है। वह अपरिचित हिस्सा हमारा साथ नहीं देता। और अगर उसका साथ हमें नहीं मिला, तो सफलता बहुत मुश्किल है। उसका साथ मिल सके, इसके लिए संकल्प करने की जरूरत है। और मैं आपको समझा दूं, कैसे हम संकल्प करेंगे। अभी यहां संकल्प करके उठेंगे। और फिर जब रात्रि में आप अपने बिस्तरों पर जाएं, तो पांच मिनट के लिए उस संकल्प को पुनः दोहराते-दोहराते ही नींद में सो जाएं।

संकल्प को पैदा करने का जो प्रयोग है, वह मैं आपको समझा दूं, उसे हम यहां भी करेंगे और रोज नियमित करेंगे। संकल्प से मैंने आपको समझाया कि आपका पूरा मन-चेतन और अचेतन, इकट्ठे रूप से यह भाव कर लें कि मुझे शांत होना है, मुझे ध्यान को उपलब्ध होना है।

जिस रात्रि गौतम बुद्ध को समाधि उपलब्ध हुई, उस रात वे अपने बोधिवृक्ष के नीचे बैठे और उन्होंने कहा, 'अब जब तक मैं परम सत्य को न उपलब्ध हो जाऊँ, तब तक यहां से उठूंगा नहीं।' हमें लगेगा, इससे क्या मतलब है? आपके नहीं उठने से परम सत्य कैसे उपलब्ध हो जाएगा? लेकिन यह ख्याल कि जब तक मुझे परम सत्य उपलब्ध न हो जाए, मैं यहां से उठूंगा नहीं, यह सारे प्राणों में गूंज गया। वे नहीं उठे, जब तक परम सत्य उपलब्ध नहीं हुआ। और आश्चर्य है कि परम सत्य उसी रात्रि उन्हें उपलब्ध हुआ। वे छः वर्ष से चेष्टा कर रहे थे, लेकिन इतना प्रगाढ़ संकल्प किसी दिन नहीं हुआ था।

संकल्प की प्रगाढ़ता कैसे पैदा हो, उसके लिए एक छोटा-सा प्रयोग मैं आपसे कहता हूं। वह हम अभी यहां करेंगे और फिर रात्रि में नियमित करके सोएंगे।

अगर आप अपनी सारी श्वास को बाहर फेंक दें और फिर अंदर श्वास को लाने से रुक जाएं तो क्या होगा? अगर मैं अपनी सारी श्वास को बाहर फेंक दूं और नाक को बंद कर लूं, श्वास को भीतर न जाने दूं तो क्या होगा? क्या थोड़ी देर में मेरे प्राण श्वास लेने को तड़फने नहीं लगेंगे? क्या मेरा रोआं-रोआं और मेरे शरीर के जो लाखों कोश हैं वे मांग नहीं करने लगेंगे कि हवा चाहिए... हवा चाहिए!

जितनी देर मैं रुकूंगा, उतना ही मेरे गहरे अचेतन का हिस्सा पुकारने लगेगा... हवा चाहिए! जितनी देर मैं रोके रहूंगा, उतने ही मेरे प्राण के गहरे हिस्से भी चिल्लाने लगेंगे... हवा चाहिए! यदि मैं आखिरी सीमा तक, जहां तक संभव है रोके रहूं तो मेरा पूरा प्राण पुकारने लगेगा... हवा चाहिए! यह आसान सवाल नहीं कि सिर्फ ऊपरी पर्त ही कहे। अब यह जीवन और मृत्यु का सवाल हो गया, मन के गहरे अचेतन हिस्से भी जाग उठेंगे कि हवा चाहिए! उस क्षण की आपात स्थिति में जब कि पूरे प्राण हवा को मांगते हों, तब आप अपने मन में यह संकल्प सतत दोहराएं कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा।

उन क्षणों में जब आपके पूरे प्राण श्वास मांगते हों, तब आप अपने मन में यह भाव दोहराते रहें कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। उस वक्त आपका मन यह दोहराता रहे। उस वक्त आपके प्राण श्वास मांग रहे होंगे और आपका मन यह दोहराएगा। जितनी गहराई तक प्राण कंपित होंगे, उतनी गहराई तक आपका यह संकल्प प्रविष्ट हो जाएगा कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। अगर आपने पूरे प्राण-कंपित हालत में इस वाक्य को दोहराया तो यह संकल्प बहुत प्रगाढ़ हो जाएगा। प्रगाढ़ का मतलब है कि वह आपके अचेतन मन, अनकॉन्शस माइंड तक प्रविष्ट हो जाएगा।

इस प्रयोग को हम रोज ध्यान के पहले करेंगे, और रात्रि में सोते समय भी आप इसे करके सोएंगे। इसे करेंगे, फिर सो जाएंगे। जब आप सोने लगेंगे, तब भी आपके मन में यह सतत ध्वनि बनी रहे कि मैं ध्यान में प्रविष्ट होकर रहूंगा। यह मेरा संकल्प है कि मुझे ध्यान में प्रवेश करना है। यह वचन आपके मन में गूंजता रहे... गूंजता ही रहे और आप कब सो जाएं, आपको पता न पड़े। सोते समय चेतन मन तो बेहोश हो जाता है और अचेतन मन के द्वार खुलते हैं। अगर उस वक्त आपके मन में यह बात गूंजती रही--गूंजती रही, तो यह अचेतन पर्तों में प्रविष्ट हो जाएगी। और आप शीघ्र ही परिणाम देखेंगे। इन तीन दिनों में ही परिणाम देखेंगे।

# बहिर्कुम्भक में आत्म–सुझाव

संकल्प को प्रगाढ़ करने का यह उपाय ठीक से समझ लें। उपाय सरल है–सबसे पहले धीमे–धीमे पूरी श्वास भर लेना, पूरे प्राणों में। झटके से नहीं, आहिस्ता–आहिस्ता पूरे पेंफफड़ों में श्वास भर जाए, जितनी भर सके। जब श्वास पूरी भर जाए आखिरी सीमा तक, तब भीतर वायु को रोक लें। मन में यह भाव गूंज़ता रहे कि मैं संकल्प करता हूं कि ध्यान में प्रविष्ट होकर रहूंगा। यह वाक्य गूंज़ता ही रहे। घबराहट बढ़ेगी। मन होगा, श्वास छोड़ने का, थोड़ा–सा रुकें। संकल्प को दोहराते रहें।

फिर श्वास बाहर फेंकी जाए, तब भी यह वाक्य गूंज़ता रहे कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। यह वाक्य दोहरता रहे। फिर श्वास फेंकते जाएं बाहर... एक घड़ी आएगी जब आपको लगेगा कि भीतर अब बिल्कुल हवा नहीं बची, तब भी थोड़ी है... उसे भी पेंफकें और वाक्य को दोहराते रहें। आपको लगेगा, अब तो बिल्कुल शेष नहीं है, तब भी है, आप उसे भी उलीच दें। घबराएं भी नहीं। आप पूरी श्वास कभी पेंफक ही नहीं सकते... यानी इसमें घबराने का कोई कारण नहीं है। आप पूरी श्वास कभी फेंक ही नहीं सकते हैं। इसलिए जब आपको लगे कि अब जरा भी नहीं बची, उस वक्त भी थोड़ी है, उसको भी पेंफकें। जब तक आपसे बने श्वास को छोड़ते जाएं और मन में यह संकल्प गूंज़ता रहे कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। फिर श्वास को बाहर रुक जाने दें और संकल्प को दोहराते जाएं। यह अद्‌भुत प्रक्रिया है। इसके माध्यम से आपके मन की अचेतन पर्तों में यह विचार, यह संकल्प प्रविष्ट होगा और उसके परिणाम आप कल सुबह से ही देखने लगेंगे। ...

इस प्रयोग को पांच बार करना है, यानी पांच बार श्वास को पूरी लेकर, रोककर, फिर पेंफककर और रोककर उस भाव को अपने भीतर दोहराते जाना है। (एक बार का अर्थ हुआ एक बार बाहर रोकना और एक बार भीतर रोकना। ) जिनको हृदय की कोई बीमारी हो, या अन्य कोई तकलीफ हो, वे इस प्रयोग को बहुत तेजी से और ज्यादा ताकत लगाकर नहीं करेंगे। वे लोग बहुत आहिस्ता से करेंगे, जितना सरल लगे और जितने में उनको तकलीफ न मालूम पड़े। सोते वक्त जब आप बिस्तर पर लेट जाएं, इसी भाव को करते–करते क्रमश : नींद में विलीन हो जाना है। यह संकल्प की स्थिति अगर हमने ठीक से पकड़ी और अपने प्राणों में उस आवाज को पहुंचाया, तो परिणाम होना बहुत सरल है और बहुत–बहुत आसान है।'' यह प्रयोग बहुत कारगर है संकल्प शक्ति को बढ़ाने के लिये।

## अन्य प्रयोग

आज्ञाचक्र के प्रयोग, राजयोग के प्रयोग भी बहुत उपयोगी हैं। कुछ विधियों का मैं नाम लेता हूं जैसे त्राटक ध्यान की बहुत सी विधियां, शिवनेत्र ध्यान, मंडल ध्यान, गौरीशंकर ध्यान, 'सडन स्टॉप एक्सरसाइज़ेस'। गुर्जिएफ ने अचानक रुकने के प्रयोग पर बहुत बल दिया। ओशो ने भी सक्रिय ध्यान के अंतिम चरण में सडन स्टॉप विधि का प्रयोग किया। क्योंकि जब आप अचानक कुछ करते–करते रुक जाते हैं, मूर्तिवत, पत्थर की प्रतिमा हो जाते हैं और एक निर्णय लेते हैं कि 'तीन मिनट के लिये मैं इसी अवस्था में रहूंगा, हिलूंगा–डुलूंगा नहीं।' तब आपके भीतर से एक निर्णय आया और आपने उसे पूरा किया।

ऐसे छोटे–छोटे संकल्प लेना शुरु करें। समझें कि आपने तय किया कि आज जब मैं बाजार में से गुजरूंगा, ऑफिस से अपने घर जाऊंगा, दुकानों के 'साइनबोर्ड' नहीं पढूंगा। बहुत छोटी सी बात है, लेकिन अगर आप इसको पूरा कर पाये, तो आपकी अंतर्शक्ति बढ़ेगी। पुरानी आदतवश 'साइनबोर्ड' पर फिजूल ही नजर पड़ती है और हम पढ़ते चले जाते हैं, रास्ते में जो भी 'बोर्ड' पड़ता है उसी को पढ़ लेते हैं। आज आपने तय किया कि ऑफिस से अपने घर तक जाते समय 'साइनबोर्ड्स' पर मेरी नजर नहीं जाएगी। यह संकल्प आप पूरा कर पायेंगे क्योंकि ये सिगरेट छोड़ने जैसा कठिन नहीं है। सिगरेट में एक रासायनिक आदत बन चुकी है शरीर की, उसको छोड़ना बहुत कठिन है। लेकिन इसमें तो कोई ऐसी बात नहीं थी। सिर्फ एक पुरानी आदत है कि हम चलते हुए कुछ भी पढ़ते जाते हैं जो रास्ते में मिलता है। आज हमने तय किया कि हम नहीं पढ़ेंगे; ये कोई सिगरेट जैसा एडिक्शन नहीं, इसको करना आसान होगा। लेकिन एक छोटा सा संकल्प आपने पूरा किया, आपके भीतर आत्मा का विकास हुआ, आप ज्यादा निर्णयात्मक बने। इस प्रकार छोटे–मोटे प्रयोग करते रहें।

गुर्जिएफ ने 'सडन स्टॉप एक्सरसाइज़ेस' पर बहुत बल दिया। गुर्जिएफ के जो नृत्य होते हैं उनमें अचानक रुकने का आदेश दिया जाता है। अब किसी का एक पैर ऊंचा उठा हुआ है, एक विचित्र अवस्था में शरीर है और स्टॉप की आज्ञा आ गई। हो सकता है उस अवस्था में वह रुक भी न पाये, सम्भल भी न पाये और गिर जाए। कोई हर्ज नहीं। वह गिरने के बाद भी वैसा ही पड़ा रहेगा जैसा गिरा था। गुर्जिएफ ने बहुत लोगों को आत्मवान बनाया। उसने संकल्प को जगाने की कई विधियां ढूंढी। तिलक और टीका लगाने का प्रयोग भी आज्ञाचक्र को जगाता है। उससे भी व्यक्ति संकल्पवान बनता है। सालिग्राम का प्रयोग जो हम अमृत समाधि में सिखाते हैं वह नाभि केन्द्र को मजबूत करता है और भीतर साहस को पैदा करता है। जीवन में छोटे मोटे जोखिम और कठिनाई वाले काम करने की कोशिश करें। छोटी–मोटी चुनौतियों को स्वीकारें। हमने

अपने जीवन की व्यवस्था कुछ ऐसी बना ली है कि हम बिल्कुल ही संकल्पहीन हो गये हैं। और खासकर प्रेम के नाम पर, सुरक्षा के नाम पर हम अपने बच्चों को संकल्पहीन बनाते हैं।

## सम्यक संकल्प की सात कसौटियां–

1. विधायक दृष्टिकोण–उपलब्धि का प्रयास, सिर्फ छोड़ने की बात नहीं;
2. सत्य पर आधारित–शांति, सौंदर्य व शुभ की दिशा में अग्रसर;
3. संवेदनशीलता, प्रेम, करुणा व स्वभाव से जन्मे, अनुकरण से नहीं;
4. प्रफुल्लता व आनंद भाव से ओतप्रोत– मार्ग भी, मंजिल भी मस्ती से भरी;
5. स्वांतः सुखाय एवं सृजनात्मक, अभिव्यक्ति–कला व आत्म–विकास में सहयोगी;
6. बहुजन हिताय व अहिंसात्मक, जीवन के विकास–क्रम के विपरीत नहीं;
7. अंतर्यात्रा में सहयोगी–परम लक्ष्य अर्थात अध्यात्म के विपरीत नहीं।

## सम्यक संकल्प के सात सोपान–

1. स्वधर्म की समझ–हृदय व बुद्धि का संतुलन– सत्यं, शिवं, सुन्दरं; न अति–विचार, न अति–भावावेश;
2. साहस–अतीत से मुक्ति, भविष्य की पुकार, वर्तमान की चुनौती का स्वीकार;
3. स्पष्ट निर्णय–संभावनाओं का चयन, दिशा बोध, संयम, योजना निर्माण, सोपानों में बांटना; वर्तमान में जीना, आगामी कदम के लिए तत्पर;
4. 'शेयरिंग'–घोषणा, परस्पर–तंत्रता, उपयोगी सूचनाओं का संग्रह;
5. सहयोग प्राप्ति–समर्थकों के साथ 'टीम' गठन, संघ, सुझाव, सूचना संग्रह, एक रस्सी से बंधे पर्वतारोही दल वेफ समान;
6. संकल्पना एवं श्रम–साधना, समग्रता, लक्ष्य के प्रति समर्पण, जागरूकता, अवरोधों को सीढ़ी बनाना, आत्मश्रद्धा;
7. सफलता–धैर्य, प्रतीक्षा, ऋतु आने पर फल होना, लक्ष्यप्राप्ति पर अस्तित्व के प्रति अहोभाव, असफलताओं से नई समझ का जन्म, तथाता–भाव, पुनः प्रथम बिंदु से आरंभ।

## सौभाग्य का अवसर

हर पच्चीस सौ साल में ऐसी घड़ी आती है
जब पतवार बिना चलाए पार हुआ जा सकता है,
सिर्फ पाल खोल दो।
ऐसी ही शुभ घड़ी में तुम हो।
इसका उपयोग कर लो।
इसे चूके तो शायद पच्चीस सौ साल बाद
दुबारा फिर ऐसा मौका मिले।
पच्चीस सौ साल लंबा चूकना है।
और चूकने की आदत सघन हो जाए
तो फिर भी चूक सकते हो। जागो!
—ओशो

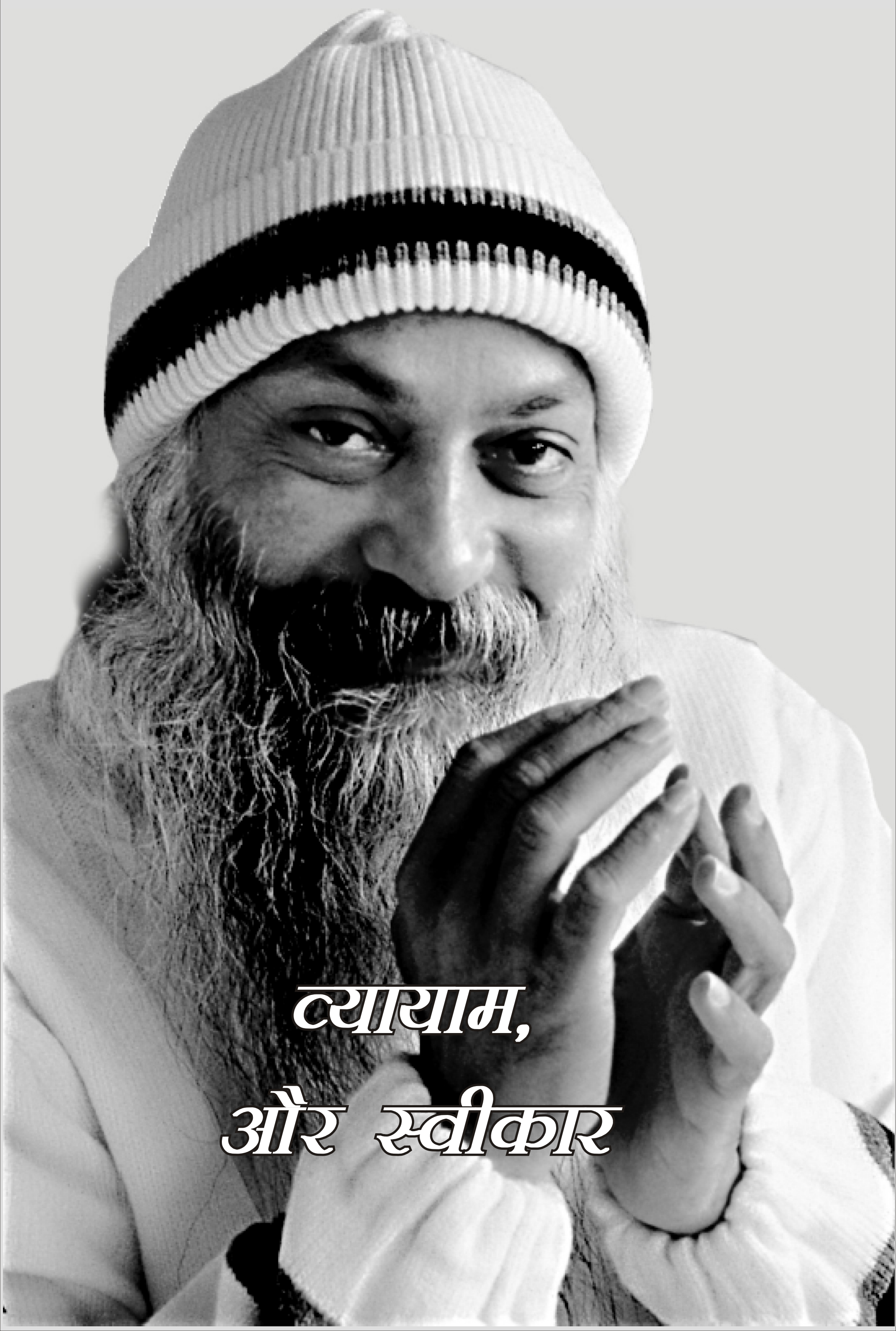

# व्यायाम, और स्वीकार

- सम्यक श्रम और व्यायाम
- फल का स्वीकार: भाग्यवाद और कर्मवाद का मध्यमार्ग
- निगेटिव विचारों से पीड़ा
- स्वीकार की विधि

# सम्यक श्रम और व्यायाम

**शरीर रूपी जीवन–वीणा से संगीत उठ सके इसका पहला सूत्र है, सम्यक आहार। दूसरा सूत्र है,सम्यक व्यायाम। और तीसरा सूत्र है, सम्यक निद्रा। जो व्यक्ति ठीक–ठीक श्रम से, ठीक–ठीक आहार से, और ठीक–ठीक निद्रा से वंचित हो जाता है, वह कभी भी नाभि–केंद्रित नहीं हो सकता है। और इन तीनों ही चीजों से मनुष्य–जाति वंचित हो गयी है!**

अंतर्यात्रा प्रवचनमाला में ओशो समझाते हैं––

सम्यक श्रम भी जीवन से विच्छिन्न हो गया है, वह भी अलग हो गया है। श्रम एक लज्जापूर्ण कृत्य हो गया है, वह एक शर्म की बात हो गयी है। एक––पश्चिम के एक विचारक आल्वेयर कामू ने अपने एक पत्र में मजाक में लिखा है कि एक जमाना ऐसा भी आयेगा कि लोग अपना प्रेम भी नौकर के द्वारा करवा लेंगे। अगर किसी को किसी से प्रेम हो जायेगा, तो एक नौकर लगा देगा बीच में कि तू मेरी तरफ से प्रेम कर आ। यह संभावना किसी दिन घट सकती है। क्योंकि और सब तो हम दूसरों से करवाना शुरू कर दिये हैं, सिर्फ प्रेम भर एक बात रह गयी है, जो हम खुद ही करते हैं।

प्रार्थना हम दूसरे से करवाते हैं। एक पुरोहित को रखवा लेते हैं। कहते हैं, हमारी तरफ से प्रार्थना कर दो, हमारी तरफ से यज्ञ कर दो। मंदिर में एक पुजारी पाल लेते हैं, उससे कहते हैं कि तुम हमारी तरफ से पूजा कर दो। प्रार्थना और पूजा भी हम नौकरों से करवा लेते हैं! तो कोई आश्चर्य नहीं है कि जब परमात्मा से प्रेम का कृत्य हम नौकरों से करवा लेते हैं, तो कोई बहुत कठिन नहीं है कि किसी दिन समझदार आदमी अपना प्रेम भी नौकरों से करवा लें। इसमें कौन–सी कठिनाई है? और जो नहीं नौकरों से करवा सकेंगे, वे लज्जित होंगे कि हम गरीब आदमी हैं, हमको खुद ही अपना प्रेम करना पड़ता है। ठीक भी है, यह संभव हो सकता है। क्योंकि जीवन में और बहुत कुछ महत्वपूर्ण है, जो हमने नौकरों से करवाना शुरू कर दिया है! और हमें इस बात का पता ही नहीं है कि उसको खोकर हमने क्या खो दिया है।

सारे जीवन की जो भी शक्ति है, वह सब खो गयी है! क्योंकि मनुष्य का शरीर, मनुष्य के प्राण किसी विशिष्ट श्रम के लिए निर्मित हैं और उस सारे श्रम से उसे खाली छोड़ दिया गया है। सम्यक श्रम भी मनुष्य की चेतना और ऊर्जा को जगाने के लिए अनिवार्य हिस्सा है।

अब्राहम लिंकन एक दिन सुबह–सुबह अपने घर बैठा अपने जूतों पर पालिश करता था। उसका एक मित्र आया और उस मित्र ने कहा, लिंकन यह क्या करते हो? तुम खुद ही अपने जूतों पर पालिश करते हो? तो लिंकन ने कहा, तुमने मुझे हैरानी में डाल दिया। तुम क्या दूसरों के जूतों पर पालिश करते हो? मैं अपने ही जूतों पर पालिश कर रहा हूं। तुम क्या दूसरों के जूतों पर पालिश करते हो? उसने कहा कि नहीं, नहीं मैं तो दूसरों से करवाता हूं। लिंकन ने कहा, दूसरों के जूतों पर पालिश करने से भी बुरी बात यह है कि तुम किसी आदमी से जूते पर पालिश करवाओ।

इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि जीवन से सीधे संबंध हम खो रहे हैं। जीवन के साथ हमारे सीधे संबंध श्रम के संबंध हैं। प्रकृति के साथ हमारे सीधे संबंध हमारे श्रम के संबंध हैं। कन्फ्यूशियस के जमाने में––कोई तीन हजार वर्ष पहले––कन्फ्यूशियस एक गांव में घूमने गया था। उसने एक बगीचे में एक माली को देखा। एक बूढ़ा माली कुएं से पानी खींच रहा है। बूढ़े माली का कुएं से पानी खींचना बड़ा कष्टपूर्ण है। वह बूढ़ा लगा हुआ है पानी को... जहां बैल लगाये जाते हैं, वहां बूढ़ा लगा हुआ है और उसका जवान लड़का लगा हुआ है। वे दोनों पानी खींच रहे हैं! वह बूढ़ा बहुत बूढ़ा है।

कन्फ्यूशियस को ख्याल हुआ कि क्या इस बूढ़े को अब तक पता नहीं है कि बैलों या घोड़ों से पानी खींचा जाने लगा है। यह खुद ही लगा हुआ खींच रहा है। यह कहां के पुराने ढंग को अख्तियार किये हुए है। तो वह बूढ़े आदमी के पास कन्फ्यूशियस गया और उससे बोला कि मेरे मित्र! क्या तुम्हें पता नहीं है, नयी ईजाद हो गयी है। लोग घोड़े और बैलों को जोतकर पानी खींचते हैं, तुम खुद लगे हुए हो?

उस बूढ़े ने कहा, धीरे बोलो, धीरे बोलो! क्योंकि मुझे तो कुछ खतरा नहीं है, लेकिन मेरा जवान लड़का न सुन ले। कन्फ्यूशियस ने कहा, तुम्हारा मतलब? 'मुझे सब ईजाद का पता है, लेकिन सब ईजाद आदमी को श्रम से दूर करने वाली है। और मैं नहीं चाहता कि मेरा लड़का श्रम से दूर हो जाये। क्योंकि जिस दिन वह श्रम से दूर होगा, उसी दिन जीवन से भी दूर हो जायेगा।'

जीवन और श्रम समानार्थक हैं। जीवन और श्रम एक ही अर्थ रखते हैं। लेकिन धीरे–धीरे हम उनको धन्यभागी कहने लगे हैं, जिनको श्रम नहीं करना पड़ता है और उनको अभागे कहने लगे हैं, जिनको श्रम करना पड़ता है! और यह हुआ भी। एक अर्थ में बहुत–से लोगों ने श्रम करना छोड़ दिया, तो कुछ लोगों पर बहुत श्रम पड़ गया। बहुत श्रम प्राण ले लेता है। कम श्रम भी प्राण ले लेता है। इसलिए मैंने कहा, सम्यक श्रम। श्रम का ठीक–ठीक विभाजन।

हर आदमी के हाथ में श्रम होना चाहिए। और जितनी तीव्रता से और जितने आनंद से और जितने अहोभाव से कोई आदमी श्रम के जीवन में प्रवृत्त होगा, उतना ही पायेगा कि उसकी जीवन–धारा मस्तिष्क से उतरकर नाभि के करीब आनी शुरू हो गयी है। क्योंकि श्रम के लिए मस्तिष्क की कोई जरूरत नहीं होती। श्रम के लिए हृदय की भी कोई जरूरत नहीं होती। श्रम तो सीधा नाभि से ही ऊर्जा को ग्रहण करता है और निकलता है।

थोड़ा श्रम, ठीक आहार के साथ–साथ थोड़ा श्रम अत्यंत आवश्यक है। और यह इसीलिए नहीं कि यह किसी और के हित में है कि आप गरीब की सेवा करें तो यह गरीब के हित में है, कि आप जाकर गांव में खेती–बाड़ी करें, तो यह किसानों के हित में है, कि आप कोई श्रम करेंगे, तो बहुत बड़ी समाज–सेवा कर रहे हैं। झूठी हैं ये बातें। यह आपके हित में है और किसी के हित में नहीं है। किसी और के हित का इससे कोई संबंध नहीं है। किसी और का हित इससे हो जाये, वह बिल्कुल दूसरी बात है, लेकिन यह आपके हित में है।

चर्चिल रिटायर हो गया था पीछे, तो मेरे एक मित्र उससे मिलने गये, और उसके घर गये। वह अपनी बगिया में उस बुढ़ापे में खोदकर कुछ पौधे लगा रहा था। तो मेरे मित्र ने उनसे कुछ राजनीति के प्रश्न पूछे। चर्चिल ने कहा, 'छोड़ो भी। वह बात खतम हो गयी। अगर अब मुझसे कुछ पूछना है, तो दो चीजों के बाबत पूछ सकते हो। अगर बाइबिल के बाबत कुछ पूछना है, तो घर में पढ़ता हूं और बागवानी के संबंध में पूछना है, तो इधर मैं बागवानी करता हूं। बाकी अब राजनीति के संबंध में मुझे कोई मतलब नहीं रहा। हो गयी वह दौड़ खतम। अब मैं श्रम कर रहा हूं और प्रार्थना कर रहा हूं।

तो लौटकर मुझसे कहने लगे कि मेरी कुछ समझ में नहीं आया कि चर्चिल कैसा आदमी है। मैं सोचता था, कुछ उत्तर देगा वह। उसने कहा, अब मैं श्रम कर रहा हूं और प्रार्थना कर रहा हूं।

मैंने उनसे कहा, उसने दो शब्द पुनरुक्त किये, रिपीटीशन किया। श्रम और प्रार्थना एक ही अर्थ रखते हैं, दोनों पर्यायवाची हैं। और जिस दिन श्रम प्रार्थना हो जाता है और जिस दिन प्रार्थना श्रम बन जाती है, उस दिन सम्यक श्रम उपलब्ध होता है।

थोड़ा श्रम अत्यंत आवश्यक है। लेकिन श्रम की तरफ ध्यान नहीं गया। नहीं गया भारत के संन्यासियों का भी ध्यान, क्योंकि उन्होंने श्रम से अपने हाथ अलग खींच लिये। श्रम करने का उन्हें सवाल नहीं था। वे दूर हट गये। धनपति इसलिए दूर हट गया कि उसके पास धन था, वह श्रम खरीद सकता था। संन्यासी इसलिए दूर हट गये कि उन्हें संसार से कुछ लेना–देना न था, उन्हें कुछ पैदा न करना था, पैसा न कमाना था,

उन्हें श्रम की जरूरत क्या थी। परिणाम यह हुआ कि समाज के दो आदरणीय वर्ग श्रम से दूर हट गये। तो श्रम जिनके हाथ में रह गया, वे धीरे–धीरे अनादरणीय हो गये।

श्रम का––साधक की दृष्टि से कह रहा हूं मैं––अत्यंत बहुमूल्य अर्थ और उपादेयता है। इसलिए नहीं कि उससे आप कुछ पैदा कर लेंगे, बल्कि इसलिए कि जितना आप श्रम में प्रवृत्त होंगे, आपकी चेतना–धारा केंद्रीय होने लगेगी, मस्तिष्क से नीचे उतरनी शुरू होगी। उत्पादक ही हो श्रम यह भी जरूरी नहीं है। अनुत्पादक भी हो सकता है। व्यायाम भी हो सकता है। लेकिन, कुछ श्रम शरीर की पूरी स्फूर्ति और प्राणों की पूरी सजगता के लिए और चित्त की पूरी जागृति के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह दूसरा हिस्सा है।

लेकिन इस हिस्से में भी भूल हो सकती है। जैसी भोजन के हिस्से में भूल होती है, या तो कोई कम भोजन करता है या कोई ज्यादा भोजन कर लेता है। वैसी भूल यहां भी हो सकती है। या तो कोई श्रम नहीं करता है या फिर ज्यादा श्रम कर सकता है। पहलवान ज्यादा श्रम कर लेते हैं। वह रुग्ण अवस्था है। पहलवान कोई स्वस्थ आदमी नहीं है। पहलवान शरीर पर अति भार डाल रहा है और शरीर के साथ बलात्कार कर रहा है। तो शरीर के साथ बलात्कार किया जाये, तो शरीर के कुछ अंग, कुछ मसल्स अधिक विकसित हो सकते हैं। लेकिन कोई पहलवान ज्यादा नहीं जीता! कोई पहलवान स्वस्थ नहीं मरता! यह आपको पता है?

चाहे गामा हो, चाहे सैंडो हो, चाहे दुनिया के कोई बड़े से बड़े शरीर के पहलवान हों, वे सभी अस्वस्थ मरते हैं, जल्दी मरते हैं और खतरनाक बीमारियों से मरते हैं। शरीर के साथ बलात्कार मसल्स को फुला सकता है, शरीर को दर्शनीय बना सकता है, एग्जीबीशन के योग्य बना सकता है, लेकिन एग्जीबीशन, प्रदर्शन और जिंदगी में बड़ा फर्क है। जीने में और स्वस्थ होने में और प्रदर्शन–योग्य होने में बड़ा फर्क है।

न तो कम और न ज्यादा––हर व्यक्ति को खोज लेना चाहिए अपने योग्य, अपने शरीर के योग्य कि वह कितना श्रम करे कि ज्यादा स्वस्थ और ताजा जी सके। जितनी ताजगी होगी, जितनी भीतर स्वस्थ हवा होगी, जितनी श्वास–श्वास आनंदपूर्ण होगी, उतना ही जीवन आंतरिक होने में सक्षम होता है।

सिमनबैल ने, एक फ्रेंच विचारिका ने एक बड़ी अदभुत बात अपनी आत्म–कथा में लिखी है। उसने लिखा है कि मैं तीस वर्ष की उम्र तक हमेशा बीमार थी। मेरे सिर में दर्द था, अस्वस्थ थी। लेकिन यह तो मुझे चालीस साल की उम्र में पता चला कि मैं तीस साल तक साथ–साथ नास्तिक भी थी। और जब मैं स्वस्थ हुई तो मुझे पता नहीं कि मैं कब आस्तिक हो गयी। और यह तो बाद में सोचने पर मुझे दिखायी पड़ा कि मेरे बीमार

और रुग्ण होने का संबंध भी मेरी नास्तिकता से था।

जो आदमी रुग्ण और बीमार है, वह परमात्मा के प्रति धन्यवाद से भरा हुआ नहीं हो सकता। उसके मन में थैंकफुलनेस नहीं हो सकती परमात्मा के प्रति। उसके मन में क्रोध ही होता है। और जिसके प्रति क्रोध हो, उसको स्वीकार करना असंभव है। और जिसके प्रति क्रोध हो, वह तो न हो, यही भावना होती है कि वह न हो।

अगर जीवन ठीक श्रम और ठीक व्यायाम पर एक विशिष्ट स्वास्थ्य के संतुलन को नहीं पाता है, तो आपके चित्त में जीवन के मूल्यों के प्रति एक निषेध का भाव, एक निगेटिव वैल्यु, एक विरोध का भाव, एक विद्रोह का भाव होना स्वाभाविक है।

सम्यक श्रम परम आस्तिकता की सीढ़ियों में एक अनिवार्य सीढ़ी है।

# फल का स्वीकारः भाग्यवाद और कर्मवाद का मध्यमार्ग

## प्रश्नकर्ता– भाग्य का कर्म से क्या रिश्ता है?

भाग्य का सिद्धान्त और कर्म का सिद्धान्त एक दूसरे के विपरीत नहीं हैं बल्कि एक दूसरे के परिपूरक हैं। सामान्यतः हम जिसे भाग्य कहते हैं वह मिश्रण है– चार प्रकार के कर्मों का।

पहला, हमारे व्यक्तिगत वर्तमान के कर्म। आज हम नीम के बीज बो रहे हैं तो कल नीम के फल आयेंगे। आज हम आम के बीज बो रहे हैं तो कल आम के फल आयेंगे। हम अपना भाग्य स्वयं निर्माण कर रहे हैं। हमारे वर्तमान के कर्म, हमारे भविष्य का भाग्य बन रहे हैं। दूसरा, हमारे स्वयं के पिछले कर्म। उनका परिणाम हमें या तो आज भोगना होगा या आगे भोगना होगा। पीछे हमने जो किया है उससे हमारी करने की एक आदत बनी है। उस आदत से मजबूर होकर हम आगे भी वैसे ही कर्म किए चले जाएंगे और एकशृंखला, एक सिलसिला चलता रहेगा। तो पिछले जो कर्म हैं, उनका भी परिणाम आ रहा है, अथवा आयेगा। तीसरा, सामूहिक कर्मों का परिणाम भी हमें भोगना होगा। यद्यपि वह हमारा व्यक्तिगत कर्म नहीं है किन्तु इस दुनिया में हम अकेले नहीं हैं। हम एक समाज में, भीड़ में रह रहे हैं। साढ़े छः अरब लोग और भी इस दुनिया में हैं। वे सब कुछ न कुछ कर रहे हैं। इन सब के कर्मों का जो संयुक्त परिणाम होगा, वह प्रत्येक व्यक्ति को

भोगना होगा। समझो कि पिछले कुछ सालों से वाहनों की गिनती निरंतर बढ़ती जा रही है, पेट्रोल जल रहा है, धुआं ही धुआं हवा में फैल रहा है, 'पॉल्यूशन' हो रहा है, हम जहरीली हवा में श्वास ले रहे हैं। अब इसका जो दुष्परिणाम होगा वह हमें भोगना होगा। यद्यपि न मैंने कार की ईजाद की, न मैं कार चलाता हूं, न मैं पेट्रोल जला रहा हूं। लेकिन इस दुनिया में अकेला मैं ही तो नहीं हूं... तो सामूहिक कर्मों का परिणाम भी हमें भुगतना होगा। अभी हम यहां बैठे हैं बुद्धा हॉल में समाधि करने के लिए, कोई आतंकवादी बम फोड़ दे, हम सब समाप्त हो जायेंगे। यद्यपि उस आतंकवाद में हमारा सीधा कोई हाथ नहीं है। उस बम का निर्माण हमने नहीं किया। हम तो ध्यान करने आए थे, हमारे कर्म कुछ और थे। किन्तु कोई और व्यक्ति भी कर्म कर रहा है उसके भी फल हमें भोगने होंगे क्योंकि हम 'परस्पर–निर्भर समाज' के हिस्से हैं।

तो तीन प्रकार के कर्म हुए; एक, हमारा स्वयं का व्यक्तिगत, वर्तमान का कर्म; दूसरा, हमारा व्यक्तिगत अतीत का कर्म और ज्ञानीजन कहते हैं न केवल इस जन्म के बल्कि पिछले जन्मों के कर्म भी; तीसरा, सामूहिक कर्म–वर्तमान के अथवा अतीत के। और चौथा व अन्तिम बिन्दु मैं कहना चाहूंगा कि यह अस्तित्व एक सुनिश्चित दिशा में धीरे–धीरे आगे बढ़ रहा है, घटनाएं घट रही हैं। उन घटनाओं का परिणाम भी हमारे जीवन को प्रभावित करेगा।

समझो... आज से 10 अरब साल पहले सूरज का निर्माण हुआ था। चार अरब साल पहले पृथ्वी सूरज से टूटकर बनी। आज भी पृथ्वी के गर्भ में लावा उबल रहा है। ज्वालामुखी फट सकता है कभी भी, भूकम्प आ सकता है। इन घटनाओं का हमसे सीधा सम्बन्ध नहीं है लेकिन हम इस पृथ्वी के निवासी हैं और पृथ्वी में जो कुछ घट रहा है, या जो पीछे घटा है, उन सब के परिणाम आगे आयेंगे। कुछ सालों पहले भूकम्प आया था, गुजरात में बहुत लोग प्रभावित हुए। खूब जन–धन की हानि हुई। यद्यपि उन लोगों का भूकम्प से कोई सीधा लेना–देना नहीं है लेकिन हम इस अस्तित्व के एक हिस्से हैं और इस अस्तित्व में जो भी हो रहा है उसका परिणाम भी हमारे जीवन को प्रभावित करेगा। हम उससे अप्रभावित नहीं रह सकते। तो इन सब घटनाओं का मिलाजुला जोड़ भाग्य कहलाता है। तो स्मरण रखें इसमें से कुछ बातें हमारे हाथ में हैं, कुछ बातें हमारे हाथ में नहीं हैं। पृथ्वी में क्या हो रहा है? सूरज में क्या हो रहा है? इस विराट ब्रह्माण्ड में क्या हो रहा है? वह हमारे हाथ में नहीं है।

यदि कोई एक बड़ी उल्का आकर पृथ्वी से टकरा जाए, तो सारी पृथ्वी नष्ट हो सकती है। अतीत में बहुत बड़ी–बड़ी उल्काएं गिरती थीं। धीरे–धीरे उनकी गिनती कम होती गई। पता नहीं भविष्य में क्या होगा... हम नहीं जानते! सूरज की गर्मी क्रमश : कम होती जा रही है। निश्चित रूप से एक समय आयेगा जब सूरज की ऊष्मा इतनी कम हो जाएगी कि पृथ्वी पर जीवन न संभल सकेगा। पृथ्वी का सारा जीवन नष्ट हो जाएगा।

... तो अस्तित्वगत घटनाएं, सामूहिक रूप से मनुष्य–जाति द्वारा किये गये कर्म, और हमारे स्वयं के व्यक्तिगत कर्म–वर्तमान के और पिछले; उन सबका मिलाजुला नाम भाग्य है। निश्चित रूप से हमारे कर्म इसमें एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा निभाते हैं। और वहीं केवल एक चीज है जिसे हम बदल सकते हैं बाकी चीजें तो हमारे वश में नहीं हैं। वर्तमान के कर्म जो हम कर रहे हैं केवल वे हमारे वश में हैं।

इस दृष्टि से देखने पर तुम पाओगे कि भाग्य के सिद्धान्त और कर्म के सिद्धान्त में कोई विरोध नहीं हैं। समस्त कर्मों का मिला–जुला असर ही भाग्य कहलाता है और भाग्य को अगर बदलना है, जितना थोड़ा–बहुत हम बदल सकते हैं, वह हमें स्वयं से ही शुरु करना होगा।

भाग्य का एक लघु अंश हमारे वर्तमान कर्म द्वारा निर्मित होता है। अतीत में दो प्रकार के लोग रहे–कुछ भाग्यवादी, कुछ कर्मवादी। कर्मवादी कहते थे कि सब कुछ हमारे हाथ में है, हमारे कर्मों पर निर्भर है और भाग्यवादी कहते थे कि सब कुछ विधाता की तरफ से सुनिश्चित है। वे दोनों आधी–आधी बात कहते थे। दोनों में अधूरी सच्चाई थी। मैं आपको पूरी बात कहना चाहता हूं। कुछ बातें हमारे हाथ में हैं, उन्हें हम बदल सकते हैं। कुछ बातें हमारे हाथ में नहीं हैं, उनमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिए कर्मवाद और भाग्यवाद–मैं इस प्रकार के दो अलग–अलग विपरीत सिद्धान्त नहीं देता हूं, दोनों जुड़ी हुई बातें हैं एक दूसरे से।

# निगेटिव विचारों से पीड़ा

## प्रश्नकर्ता– मैं कभी–कभी निगेटिव विचारों से पीड़ित रहता हूं। इन के कारण मुझे बहुत दुख भी होता है, क्या करूं?

उत्तरः–अगर तुमने विचारों से लड़ना चाहा वे कभी तुम्हारा पीछा न छोड़ेंगे। तुम जिससे दुश्मनी लोगे, वह सदा के लिए तुम्हारे साथ हो जाएगा। मन के इस रहस्य को समझना। जिससे तुमने दुश्मनी ली तुम उसी से बंध गए। मनोवैज्ञानिक इसे कहते हैं विपरीत परिणाम का नियम। जिससे हम बचना चाहेंगे हम उसी से टकराएंगे। बचपन में आपने साइकिल चलाना सीखा होगा। लंबी चौड़ी सड़क है, पचास फुट चौड़ी, मगर

छोटा बच्चा साइकिल चला रहा है। उसके मन में डर आ गया कि अरे ये बिजली का खम्भा किनारे लगा है इससे टकरा न जाऊं।

जैसे ही यह ख्याल आया, वह सम्मोहित हो गया। उसे बिजली का खम्भा ही दिखाई पड़ने लगा। बस, और कुछ नहीं सूझ रहा। और जब बिजली के खम्भे को देखने लगा तो स्वभावतः उसके हाथ भी मुड़ गए, हैंडिल भी घूम गया। साइकिल उसी तरफ जाने लगी, तब वह और घबराया कि अब खम्भे से टकराया, अब टकराया... शेष पचास फुट चौड़ी सड़क दिखाई पड़नी बंद हो गई। केवल बिजली का खम्भा ही उसकी आंखों का केन्द्र बन गया, साइकिल वहां गई और टकरा गई। ... जिससे डरते थे वही बात हो गई।

ऐसा ही हमारा मन है। जिससे बचना चाहेंगे हम उसी से टकरा जाएंगे। तुमने अगर विचारों से लड़ने की कोशिश की कि नकारात्मक विचार खत्म हो जाएं, तो तुम उन्हीं में बुरी तरह जकड़े जाओगे। लड़ना स्वयं ही नकारात्मक प्रक्रिया है। मैं आपसे कह रहा हूं कि नई दिशा में कुछ विधायक करना शुरु करो। विचार से मत लड़ो, भाव को पैदा करो। निगेटिविटी से मत लड़ो, पॉजीटिविटी पैदा करो। जहां कहीं कुछ विधायक हो सकता है वहां अपनी जीवन ऊर्जा को बहाओ। एक नई दिशा दो। नकारात्मक से लड़कर कभी विजय हासिल नहीं होती। जैसे एक कमरे में अंधेरा हो और मैं आपसे कहूं इस अंधेरे को बाहर कर दो। आप क्या करोगे? अंधेरे को घूसे मारोगे, कि जूते? तलवार चलाओगे, कि बंदूक? कि पोटली में बांधकर बाहर फेंकोगे। नहीं, अंधेरे के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि वस्तुतः अंधेरा है ही नहीं। अंधेरे का अर्थ है प्रकाश का न होना। उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है।

जिसकी सत्ता ही नहीं है उससे कैसे लड़ोगे। इसलिए अंधेरे के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। जब भी कुछ किया जाता है वो विधायक प्रकाश के साथ किया जाता है। हां, बल्ब जलाया जा सकता है, एक दीपक जलाया जा सकता है। प्रकाश का अस्तित्व है। उसे हम जला सकते हैं, बुझा सकते हैं। अंधेरे के साथ हम कुछ भी नहीं कर सकते। इसका यह मतलब नहीं कि अंधेरा बहुत बलशाली है। लेकिन अगर तुम अंधेरे से लड़ने लग,` तुमने धक्का मार-मार के उसको निकालने की कोशिश की, तब तुम पाओगे अंधेरा बड़ा शक्तिशाली है और तुम हार जाओगे। लेकिन इसमें बुनियादी रूप से एक भ्रान्ति है।

नकारात्मक से लड़ने में हम हमेशा हार जाएंगे। इसलिए मैं क्रोध से लड़ने की सलाह नहीं देता। निगेटिव विचारों से लड़ने की सलाह नहीं देता। मैं कहता हूं विधायक को पैदा करो उसकी तरफ अपना ध्यान ले जाओ। सृजनात्मक कर्मों की ओर ध्यान लगाओ। धीरे-धीरे दिशा बदलेगी। दीपक जलेगा, प्रकाश होगा और अंधेरा स्वयं मिट जाएगा।

# स्वीकार की विधि

'विज्ञान भैरव तंत्र' में भगवान शिव कहते हैं देवी पार्वती से–

'विषय और वासना जैसे दूसरों में हैं वैसे ही मुझमें हैं। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।'

यह विधि बहुत सहयोगी हो सकती है। जब तुम क्रोधित होते हो तो तुम सदा अपने क्रोध को उचित मानते हो; लेकिन जब कोई दूसरा क्रोधित होता है तो तुम उसकी सदा अलोचना करते हो। तुम्हारा पागलपन स्वाभाविक है; दूसरे का पागलपन विकृति है। तुम जो भी करते हो वह शुभ है–शुभ नहीं तो कम से कम उसे करना जरूरी था। तुम अपने कृत्य के लिए सदा कुछ औचित्य खोज लेते हो, उसे तर्कसम्मत बना लेते हो। और जब वही काम दूसरा करता है तो वही औचित्य, वही तर्क लागू नहीं होता है।

तुम क्रोध करते हो तो कहते हो कि दूसरे के हित के लिए यह जरूरी था; अगर मैं क्रोध न करता तो दूसरा बर्बाद ही हो जाता। वह किसी बुरी आदत का शिकार हो जाता, इसलिए उसे दंड देना जरूरी था; वह उसके भले के लिए था। लेकिन जब दूसरा तुम पर क्रोध करता है तो वही तर्कसरणी उस पर नहीं लागू की जाती। दूसरा पागल है, दूसरा दुष्ट है।

हमारे मापदंड सदा दोहरे हैं; अपने लिए एक मापदंड है और शेष सबके लिए दूसरा मापदंड है। यह दोहरे मापदंड वाला मन सदा दुख में रहेगा। यह मन ईमानदार नहीं है, सम्य्क नहीं है। और जब तक तुम्हारा मन, ईमानदार नहीं होता, तुम्हें सत्य की झलक नहीं मिल सकती है। और एक ईमानदार मन ही दोहरे मापदंड से मुक्त हो सकता है।

जीसस कहते है; दूसरों के साथ वह व्यवहार मत करो जो व्यवहार तुम न चाहोगे कि तुम्हारे साथ किया जाए।

यह विधि एक मापदंड की धारणा पर आधारित है।

'विषय और वासना जैसे दूसरों में हैं वैसे ही मुझमें भी हैं।'

तुम अपवाद नहीं हो; यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि मैं अपवाद हूं। अगर तुम सोचते हो कि मैं अपवाद हूं तो भलीभांति जान लो कि ऐसे ही हर सामान्य मन सोचता है। यह जानना कि मैं सामान्य हूं जगत में सबसे असामान्य घटना है।

किसी ने सुजुकी से पूछा कि तुम्हारे गुरु में असामान्य क्या था? सुजुकी स्वयं झेन गुरु था। सुजुकी ने कहा कि उनके संबंध में मैं एक चीज कभी न भूलूंगा कि मैंने कभी ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो अपने को इतना सामान्य समझता हो। वे बिल्कुल

सामान्य थे और वहीं उनकी सबसे बड़ी असामान्यता थी। अन्यथा साधारण से साधारण व्यक्ति भी सोचता है कि मैं असामान्य हूं, अपवाद हूं।

लेकिन कोई व्यक्ति असामान्य नहीं है। और तुम अगर यह जान लो तो तुम सामान्य हो जाते हो। हर आदमी ठीक दूसरे आदमी जैसा है। जो वासनाएं तुम्हारे भीतर चक्कर लगा रही हैं वे ही दूसरों के भीतर घूम रही हैं। लेकिन तुम अपनी कामवासना को प्रेम कहते हो और दूसरों के प्रेम को कामवासना कहते हो।

तुम खुद जो भी करते हो, उसका बचाव करते हो। तुम कहते हो कि

यह शुभ काम है, इसलिए करता हूं। और वही काम जब दूसरे करते हैं तो वे वही नहीं रहते, वे शुभ नहीं रहते। और यह बात व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है; जाति और राष्ट्र भी वही करते हैं। अगर भारत अपनी सेना बढ़ाता है तो वह सुरक्षा का प्रयत्न है और जब चीन अपनी सेना को मजबूत करता है तो वह आक्रमण की तैयारी है। दुनिया की हर सरकार अपने सैन्य संस्थान को सुरक्षा संस्थान कहती है। तो फिर आक्रमण कौन करता है? जब सभी सुरक्षा में लगे हैं तो आक्रामक कौन है? अगर तुम इतिहास देखोगे तो तुम्हें कोई आक्रामक नहीं मिलेगा। हां, जो हार जाते हैं वे आक्रामक करार दिए जाते हैं। पराजित लोग सदा आक्रामक माने गए हैं, क्योंकि वे इतिहास नहीं लिख सकते हैं। इतिहास तो विजेता लिखते हैं।

अगर हिटलर विजयी हुआ होता तो इतिहास दूसरा होता। तब वह आक्रामक नहीं, संसार का रक्षक माना जाता। तब चर्चिल, रूजवेल्ट और उनके मित्रगण आक्रामक माने जाते और कहा जाता कि उन्हें मिटा डालना अच्छा हुआ। लेकिन क्योंकि हिटलर नहीं जीत सका, वह आक्रामक हो गया, चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टैलिन मनुष्य–जाति के रक्षक बन गए। तो न सिर्फ व्यक्ति, बल्कि जाति और राष्ट्र भी यही तर्क पेश करते हैं; अपने को औरों से भिन्न बताते हैं।

कोई भी भिन्न नहीं है। धार्मिक चित्त वह है जो जानता है कि प्रत्येक व्यक्ति समान है। इसलिए तुम जो तर्क अपने लिए खोज लेते हो वही दूसरों के लिए भी उपयोग करो। अगर तुम दूसरों की आलोचना करते हो तो उसी आलोचना को अपने पर भी लागू करो। दोहरे मापदंड मत गढ़ो। एक मापदंड रखने से तुम पूरी तरह रूपांतरित हो जाओगे। एक मापदंड तुम्हें ईमानदार बनाएगा और पहली दफा तुम सत्य को सीधा देखोगे जैसा वह है।

'विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।'

तुम उन्हें स्वीकार कर लो और वे रूपांतरित हो जाएंगी। लेकिन हम क्या कर रहे हैं? हम स्वीकार करते हैं कि विषय–वासना दूसरों में है। जो–जो सही है वह तुम में है।

तब तुम रूपांतरित कैसे होगे? तुम तो रूपांतरित ही हो। तुम सोचते हो कि मैं तो अच्छा ही हूं; दूसरे सब लोग बुरे हैं। रूपांतरण की जरूरत संसार को है, तुम्हें नहीं।

इसी दृष्टिकोण के कारण नेता, क्रांतियां और पैगंबर पैदा होते हैं। वे घर की मुंडेरों पर चढ़कर चिल्लाते हैं कि दुनिया को बदलना है, कि इंकलाब लाना है। हम क्रांति पर क्रांति किए जाते हैं और कुछ भी नहीं बदलता है। मनुष्य वही का वही रहता है, दुनिया पुराने दुखों से ही ग्रस्त रहती है। चेहरे और नाम बदल जाते हैं, पर दुख बना रहता है।

दुनिया को बदलने की बात नहीं है। तुम गलत हो। प्रश्न है कि तुम कैसे बदलो। धार्मिक प्रश्न यह है कि मैं कैसे बदलूं? दूसरों को बदलने की बात राजनीति है? राजनीतिज्ञ सोचता है कि मैं तो बिल्कुल ठीक हूं, कि मैं तो आदर्श हूं, जैसा कि सारी दुनिया को होना चाहिए। वह अपने को आदर्श मानता है। वह आदर्श–पुरुष है और उसका काम दुनिया को बदलना है।

धार्मिक व्यक्ति जो कुछ भी दूसरों में देखता है उसे अपने भीतर भी देखता है। अगर हिंसा है तो वह सोचने लगता है कि यह हिंसा मुझमें है या नहीं। अगर लोभ है, अगर उसे कहीं लोभ दिखाई पड़ता है, तो उसका पहला ख्याल यह होता है कि यह लोभ मुझमें है या नहीं। और जितना ही खोजता है वह पाता है कि मैं ही सब बुराई का स्रोत हूं। तब फिर प्रश्न यह नहीं है कि संसार को कैसे बदला जाए; तब फिर प्रश्न यह है कि अपने को कैसे बदला जाए? और बदलाहट उसी क्षण होने लगती है जब तुम एक मापदंड अपनाते हो। उसे अपनाते ही तुम बदलने लगे।

दूसरों की निंदा मत करो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अपनी निंदा करो। नहीं, बस दूसरों की निंदा मत करो। और अगर तुम दूसरों की निंदा नहीं करते हो तो तुम्हें उनके प्रति गहन करुणा का भाव होगा। क्योंकि सब की समस्याएं समान हैं। अगर कोई पाप करता है–समाज की नजर में जो पाप है–तो तुम उसकी निंदा करने लगते हो। तुम यह नहीं सोचते कि तुम्हारे भीतर भी उस पाप के बीज पड़े हैं। अगर कोई हत्या करता है तो तुम उसकी निंदा करते हो।

लेकिन क्या तुमने कभी किसी की हत्या करने का विचार नहीं किया है? क्या उसका बीज, उसकी संभावना तुम्हारे भीतर भी नहीं छिपी है? जिस आदमी ने हत्या की है वह एक क्षण पूर्व हत्यारा नहीं था; लेकिन उसका बीज उसमें था। वह बीज तुममें भी है। एक क्षण बाद कौन जानता है, तुम भी हत्यारे हो सकते हो। उसकी निंदा मत करो; बल्कि स्वीकार करो। तब तुम्हें उसके प्रति गहन करुणा होगी, क्योंकि उसने जो कुछ किया है वह कोई भी कर सकता है, तुम भी कर सकते हो।

निंदा से मुक्त चित्त में करुणा होती है। निंदा-रहित चित्त में गहन स्वीकार होता है। वह जानता है कि मनुष्यता ऐसी ही है, कि मैं भी ऐसा ही हूं। तब सारा जगत तुम्हारा प्रतिबिंब बन जाएगा; वह तुम्हारे लिए दर्पण का काम देगा। तब प्रत्येक चेहरा तुम्हारे लिए आईना होगा; तुम प्रत्येक चेहरे में अपने को ही देखोगे।

'विषय और वासना जैसे दूसरों में है, वैसे ही मुझमें है। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।'

स्वीकार ही रूपांतरण बन जाता है। यह समझना कठिन है, क्योंकि हम सदा इनकार करते हैं और उसके बावजूद हम बिल्कुल नहीं बदल पाते हैं। तुममें लोभ है, लेकिन तुम उसे अस्वीकार करते हो। कोई भी अपने को लोभी मानने को राजी नहीं है। तुम कामुक हो, लेकिन तुम उसे अस्वीकार करते हो। कोई भी अपने को कामुक मानने को राजी नहीं है। तुम क्रोधी हो, तुममें क्रोध है; लेकिन तुम उसे इनकार कर देते हो। तुम एक मुखौटा ओढ़ लेते हो और उसे उचित बताने की चेष्टा करते हो। तुम कभी नहीं सोचते कि मैं क्रोधी हूं या मैं क्रोध ही हूं।

लेकिन अस्वीकार से कभी कोई रूपांतरण नहीं होता है। उससे चीजें दमित हो जाती हैं। लेकिन जो चीज दमित होती है वह और भी शक्तिशाली हो जाती है। वह तुम्हारी जड़ों तक पहुंच जाती है, तुम्हारे अचेतन में गहराई तक उतर जाती है और वहां से काम करने लगती है। और अचेतन के उस अंधेरे में वह वृत्ति और भी शक्तिशाली हो जाती है। और अब तुम उसे और भी नहीं स्वीकार कर सकते, क्योंकि तुम्हें उसका बोध भी नहीं है।

स्वीकृति सबको ऊपर ले आती है। दमन करने की जरूरत नहीं है। तुम जानते हो कि मैं लोभी हूं, तुम जानते हो कि मैं क्रोधी हूं, कि मैं कामुक हूं और तुम उन वृत्तियों को बिना किसी निंदा के स्वाभाविक तथ्य की तरह, स्वीकार कर लेते हो। उन्हें दमित करने की जरूरत नहीं है। वे वृत्तियां मन की सतह पर आ जाती हैं और वहां से उन्हें बहुत आसानी से विसर्जित किया जा सकता है। गहरे अचेतन से उनका विसर्जन संभव नहीं है। और जब वे सतह पर होती हैं तो तुम उनके प्रति होशपूर्ण होते हो; जब वे अचेतन में होती हैं, तो तुम उनके प्रति बेहोश बने रहते हो। और उस रोग से ही मुक्ति संभव है जिसके प्रति तुम होशपूर्ण हो; जिसके प्रति तुम बेहोश हो उस रोग से मुक्ति नहीं हो सकती।

प्रत्येक चीज को सतह पर ले आओ। अपनी मनुष्यता को स्वीकार करो; अपनी पशुता को स्वीकार करो। जो भी है उसे बिना किसी निंदा के स्वीकार करो। लोभ है; उसे अलोभ में बदलने की चेष्टा मत करो। तुम उसे नहीं बदल सकते हो। और अगर तुम

उसे अलोभ बनाने की चेष्टा करोगे तो तुम उसका दमन करोगे। तुम्हारा अलोभ और कुछ नहीं, केवल दूसरे ढंग का लोभ ही होगा। अगर तुम लोभ को बदलने की कोशिश करोगे तो क्या करोगे? लोभी मन अलोभ के आदर्श के प्रति तभी आकर्षित होता है जब उसका कोई और लोभ उससे सधने वाला हो।

अगर कोई तुम्हें कहता है कि यदि तुम अपने सारे धन का त्याग कर दो तो तुम्हें परमात्मा के राज्य में प्रवेश मिल जाएगा, तो तुम त्याग करने के लिए भी तैयार हो जाओगे। अब एक नया लोभ संभव हो गया। यह सौदा है। तो लोभ को अलोभ नहीं बनाना; लोभ का अतिक्रमण करना है। तुम उसे बदल नहीं सकते। हिंसक मन कैसे अहिंसक हो सकता है? अगर तुम अहिंसक होने के लिए अपने को मजबूर करोगे तो यह अपने प्रति हिंसा होगी। तुम एक चीज को दूसरी चीज में नहीं बदल सकते; तुम सिर्फ सजग हो सकते हो; तुम सिर्फ स्वीकार कर सकते हो। लोभ को लोभ की तरह स्वीकार करो।

स्वीकार का यह अर्थ नहीं है कि उसे रूपांतरित करने की जरूरत नहीं है। स्वीकार का इतना ही अर्थ है कि तुम तथ्य को, स्वाभाविक तथ्य को स्वीकार करते हो; जैसा वह है वैसा ही स्वीकार करते हो। तब जीवन में यह जानकर गति करो कि लोभ है। तुम जो भी करो यह स्मरण रखकर करो कि लोभ है। यह बोध तुम्हें रूपांतरित कर देगा। यह रूपांतरित करता है, क्योंकि बोधपूर्वक तुम लोभी नहीं हो सकते, बोधपूर्वक तुम क्रोधी नहीं हो सकते। क्रोध के लिए, लोभ के लिए, हिंसा के लिए, मूर्च्छा बुनियादी शर्त है। स्वीकार रूपांतरण है, क्योंकि स्वीकार से बोध संभव होता है।

–ओशो, तंत्र सूत्र

# ‘ध्यान’ एवं समाधि

- जीवन का सबसे बड़ा आनंद है- ‘ध्यान’
- ध्यान की कुंजी है- साक्षी-भाव
- ध्यान से समाधि की ओर
- समाधि: प्रभु-मंदिर का संगीत

# जीवन का सबसे बड़ा आनंद है– ‘ध्यान’

ध्यान चेतना की विशुद्ध अवस्था है–जहां कोई विचार नहीं होते, कोई विषय नहीं होता। साधारणतः हमारी चेतना विचारों से, विषयों से, कामनाओं से आच्छादित रहती है। जैसे कि कोई दर्पण धूल से ढका हो। हमारा मन एक सततप्रवाह है–विचार चल रहे हैं, कामनाएं चल रही हैं, पुरानी स्मृतियां सरक रही हैं–रात–दिन एक अनवरत सिलसिला है। नींद में भी हमारा मन चलता रहता है, स्वप्न चलते रहते हैं। यह गैर–ध्यान की अवस्था है। ठीक इससे उलटी अवस्था ध्यान की है। जब कोई विचार नहीं चलते और कोई कामनाएं सिर नहीं उठातीं, सारा ऊहापोह शांत हो जाता है और हम परिपूर्ण मौन में होते हैं– वह परिपूर्ण मौन ध्यान है। और उसी परिपूर्ण मौन में सत्य का साक्षात्कार होता है। जब मन नहीं होता, तब जो होता है वह ध्यान है।

इसलिए मन के माध्यम से कभी ध्यान तक नहीं पहुंचा जा सकता। ध्यान इस बात का बोध है कि मैं मन नहीं हूं। जैसे–जैसे हमारा बोध गहरा होता है, कुछ झलकें मिलनी शुरु होती हैं–मौन की, शांति की–जब सब थम सा जाता है और मन में कुछ भी चलता नहीं। उन मौन, शांत क्षणों में ही हमें स्वयं की सत्ता की अनुभूति होती है और इस अस्तित्व के रहस्य का स्पर्श होता है। धीरे–धीरे एक दिन आता है, एक बड़े सौभाग्य का दिन आता है, जब ध्यान हमारी सहज अवस्था हो जाता है।

मन असहज अवस्था है। यह हमारी सहज–स्वभाविक अवस्था कभी नहीं बन सकता। ध्यान हमारी सहज अवस्था है, लेकिन हमने उसे खो दिया है। हम उस स्वर्ग से बाहर आ गए हैं। लेकिन यह स्वर्ग पुनः पाया जा सकता है। किसी बच्चे की आंखों में झांकें और वहां आपको अद्‌भुत मौन दिखेगा, अद्‌भुत निर्दोषता दिखेगी। हर बच्चा ध्यान को लिए हुए ही पैदा होता है। लेकिन उसे समाज के रंग–ढंग सीखने ही होंगे। उसे विचार करना, तर्क करना, हिसाब–किताब, सब सीखना ही होगा। उसे शब्द, भाषा, व्याकरण सीखना ही होगा। और, धीरे–धीरे वह अपनी निर्दोषता, सरलता से दूर हटता जाएगा। उसकी कोरी स्लेट समाज की लिखावट से गंदी होती जाएगी। वह समाज के ढांचे में एक कुशल यंत्र हो जाएगा–एक जीवंत, सहज मनुष्य नहीं।

बस उस निर्दोष सहजता को पुनः उपलब्ध करने की जरूरत है। उसे हमने पहले जाना है। इसलिए जब हमें ध्यान की पहली झलक मिलती है तो एक बड़ा आश्चर्य होता है कि इसे तो हम जानते हैं। और यह प्रत्यभिज्ञा बिल्कुल सही है, हमने इसे पहले जाना है। लेकिन हम भूल गए हैं। हीरा कूड़े–कचरे में दब गया है। लेकिन अगर हम जरा खोदें तो हीरा पुनः हाथ आ सकता है–वह हमारा स्वभाव है। उसे हम खो नहीं सकते; उसे हम केवल भूल सकते हैं।

हम ध्यान में ही पैदा होते हैं। फिर हम मन के रंग–ढंग सीख लेते हैं। लेकिन हमारा वास्तविक स्वभाव अंतर्धारा की तरह भीतर गहरे में बना ही रहता है। किसी भी दिन, थोड़ी सी खुदाई, और हम पाएंगे कि वह धारा अभी भी बह रही है, जीवन–स्रोत के झरने ताजा जल अभी भी ला रहे हैं। और उसे पा लेना जीवन का सबसे बड़ा आनंद है।

## ध्यान की जगह कैसी हो?

अगर ध्यान के लिए एक नियत जगह चुन सकें–एक छोटा सा मंदिर, घर में एक छोटा सा कोना, एक ध्यान–कक्ष–तो सर्वोत्तम है। फिर उस जगह को किसी और काम के लिए उपयोग न करें। क्योंकि हर काम की अपनी तरंगें होती हैं। उस जगह का उपयोग सिर्फ ध्यान के लिए करें, और किसी काम के लिए उसका उपयोग न करें। तो वह जगह चार्ज्ड हो जाएगी और रोज हमारी प्रतीक्षा करेगी। वह जगह बहुत सहयोगी हो जाएगी, वहां एक वातावरण निर्मित हो जाएगा, एक तरंग निर्मित हो जाएगी, जिसमें हम बहुत सरलता से ध्यान में गहरे प्रवेश कर सकते हैं। इसी वजह से मंदिरों, मस्जिदों, चर्चों का निर्माण हुआ था–कोई ऐसी जगह हो जिसका उपयोग सिर्फ ध्यान और प्रार्थना के लिए हो।

अगर ध्यान के लिए एक नियत समय चुन सकें तो वह भी बहुत उपयोगी होगा, क्योंकि हमारा शरीर, हमारा मन एक यंत्र है। अगर हम रोज एक नियत समय पर भोजन करते हैं, तो हमारा शरीर उस समय भोजन की मांग करने लगता है।

कभी आप एक मजेदार प्रयोग कर सकते हैं। अगर आप रोज एक बजे भोजन करते हैं और आप घड़ी देखें और घड़ी में एक बजा हो, तो आपको भूख लग जाएगी; भले ही घड़ी गलत हो और अभी ग्यारह या बारह ही बजे हों। आप घड़ी देखते हैं, घड़ी में एक बजा है, आपको भूख लग जाती है। हमारा शरीर एक यंत्र है।

हमारा मन भी एक यंत्र है। अगर हम एक नियत जगह पर, एक नियत समय पर रोज ध्यान करें, तो हमारे शरीर और मन के लिए भी एक प्रकार की भूख निर्मित हो जाती है। रोज उस समय पर शरीर और मन ध्यान में जाने की मांग करेंगे। यह ध्यान में जाने में सहयोगी होगा। एक भावदशा निर्मित होगी जिसमें हम एक भूख बन जाएंगे, एक प्यास बन जाएंगे।

शुरु–शुरु में यह बहुत सहयोगी होगा, जब तक कि ध्यान हमारे लिए इतना सहज न हो जाए कि हम कहीं भी, किसी भी समय ध्यान में जा सकें। तब तक मन और शरीर की इन यांत्रिक व्यवस्थाओं का उपयोग करना चाहिए।

इनसे एक वातावरण निर्मित होता है : कमरे में अंधेरा हो, अगरबत्ती या धूपबत्ती की खुशबू हो, एक सी लंबाई के व एक प्रकार के कपड़े के वस्त्र पहने, एक से कालीन

या चटाई का उपयोग करें, एक से आसन का उपयोग करें। इससे ध्यान नहीं हो जाता, लेकिन इससे मदद मिलती है। अगर कोई और इसकी नकल करे तो उसे बाधा भी पड़ सकती है। प्रत्येक को अपनी व्यवस्था खोजनी है। व्यवस्था सिर्फ इतना करती है कि एक सुखद स्थिति निर्मित हो। और जब हम सुखद स्थिति में प्रतीक्षा करते हैं तो कुछ घटता है। जैसे नींद उतरती है, ऐसे ही परमात्मा उतरता है। जैसे प्रेम घटता है, ऐसे ही ध्यान घटता है। हम इसे प्रयास से नहीं ला सकते, हम इसे जबरदस्ती नहीं पा सकते।

## ध्यान की विधि कैसे चुनें?

हमेशा उस विधि से शुरु करें जो रुचिकर लगे। ध्यान को जबरदस्ती थोपना नहीं चाहिए। अगर जबरदस्ती ध्यान थोपा गया तो शुरुआत ही गलत हो गई। जबरदस्ती की गई कोई भी चीज सहज नहीं हो सकती। अनावश्यक कठिनाई पैदा करने की कोई जरूरत नहीं है। यह बात अच्छे से समझ लेनी है। क्योंकि जिस दिशा में मन की सहज रुचि हो, उस दिशा में ध्यान सरलता से घटता है।

जो लोग शरीर के तल पर ज्यादा संवेदनशील हैं, उनके लिए ऐसी विधियां हैं, जो शरीर के माध्यम से ही आत्यंतिक अनुभव पर पहुंचा सकती हैं। जो भाव–प्रवण हैं, भावुक प्रकृति के हैं, वे भक्ति–प्रार्थना के मार्ग पर चल सकते हैं। जो बुद्धि–प्रवण हैं, बुद्धिजीवी हैं, उनके लिए ध्यान, सजगता, साक्षीभाव उपयोगी हो सकते हैं।

लेकिन मेरी ध्यान की विधियां एक प्रकार से अलग हटकर हैं। मैंने ऐसी ध्यान–विधियों की संरचना की है जो तीनों प्रकार के लोगों द्वारा उपयोग में लाई जा सकती हैं। उनमें शरीर का भी पूरा उपयोग है, भाव का भी पूरा उपयोग है और होश का भी पूरा उपयोग है। तीनों का एक साथ उपयोग है और वे अलग–अलग लोगों पर अलग–अलग ढंग से काम करती हैं। शरीर, हृदय, मन–मेरी सभी ध्यान विधियां इसीश्रृंखला में काम करती हैं। वे शरीर पर शुरु होती हैं, वे हृदय से गुजरती हैं, वे मन पर पहुंचती हैं और फिर वे मनातीत में अतिक्रमण कर जाती हैं।

स्मरण रहे, जो हमें रुचिकर लगता है उसी में हम गहरे जा सकते हैं–केवल उसी में गहरे जा सकते हैं। रुचिकर लगने का मतलब ही यह है कि उसका हमसे तालमेल है। हमारा छंद उसकी लय से मेल खाता है। विधि के साथ हम एक 'हार्मनी' में हैं। तो जब कोई विधि रुचिकर लगे तो फिर और–और विधियों के लोभ में न पड़ें, फिर उसी विधि में और–और गहरे उतरें। उस विधि को प्रतिदिन, या अगर संभव हो तो दिन में दो बार अवश्य करें। जितना हम इसे करेंगे, उतना आनंद बढ़ता जाएगा। किसी भी विधि को तभी छोड़ें जब आनंद आना बंद हो जाए। उसका मतलब है कि इस विधि का काम पूरा हो गया, अब दूसरी विधि की तलाश की जाए। कोई भी अकेली विधि हमें

अंत तक नहीं ले जा सकती। इस यात्रा पर हमें कई बार ट्रेन बदलनी पड़ेगी। हर विधि हमें एक अमुक अवस्था तक पहुंचाएगी। उसके बाद उसका कोई उपयोग नहीं है। उसका काम पूरा हो गया।

तो दो बातें स्मरण रखनी हैं : जब किसी विधि में आनंद आए तो उसमें जितने गहरे जा सकें, जाएं। लेकिन उसके आदी न हो जाएं, क्योंकि एक दिन उसके पार भी जाना है। अगर हम उसके बहुत आदी हो जाते हैं तो यह भी एक प्रकार का नशा है, फिर हम उसे छोड़ नहीं सकते। अब इसमें कोई आनंद भी नहीं आता, इससे कुछ मिलता भी नहीं, लेकिन यह एक आदत हो गई। फिर हम चाहें तो इसे करते रह सकते हैं, लेकिन हम गोल-गोल घूमते हैं, यह उसके आगे नहीं ले जा सकती।

तो आनंद मापदंड है। जब तक आनंद आए, जारी रखें। आनंद का कण भी पीछे न छूट जाए। उसका पूरा रस निचोड़ लें, एक बूंद भी बाकी न बचे। और फिर उसे छोड़ने की भी तैयारी रखें। फिर कोई दूसरी विधि चुन लें जिसमें फिर आनंद आता हो। हो सकता है हमें कई बार विधि बदलनी पड़े। यह अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग होगा, लेकिन ऐसी बहुत कम संभावना है कि एक विधि से पूरी यात्रा हो जाए।

लेकिन बहुत सी विधियां एक साथ करने की भी जरूरत नहीं है, क्योंकि हम उलझन में पड़ सकते हैं, विपरीत प्रक्रियाएं एक साथ कर सकते हैं, और तब तकलीफ होगी, दर्द होगा।

तो कोई भी दो ध्यान की विधियां चुन लें और फिर उन्हें सतत करें। असल में, मैं तो चाहूंगा कि कोई एक ध्यान ही चुनें, यह सबसे अच्छा होगा। जो ध्यान हमें भाए, उसे दिन में कई बार करना ज्यादा बेहतर है। इससे उसमें गहराई आती है।

अगर हम कई ध्यान एक साथ करते हैं–एक दिन एक, दूसरे दिन दूसरा और हम अपने ही ध्यान भी गढ़ लेते हैं–तो ऊहापोह बढ़ेगा। विज्ञान भैरव तंत्र में ध्यान की एक सौ बारह विधियां हैं। हम पागल हो जा सकते हैं। हम वैसे ही पागल हैं!

ध्यान की ये विधियां कोई मनोरंजन नहीं हैं। ये कभी-कभी खतरनाक भी हो सकती हैं। हम मन के सूक्ष्म, अति सूक्ष्म यंत्र के साथ खेल रहे हैं। कभी एक छोटी सी चीज, जिसका हमें होश भी नहीं कि हम क्या कर रहे हैं, खतरनाक सिद्ध हो सकती है। इसलिए इन विधियों में कोई हेर-फेर न करें और अलग-अलग विधियों को मिलाकर अपनी ही कोई खिचड़ी विधि न ईजाद करें। कोई भी विधियां चुन लें और कुछ सप्ताह उनका प्रयोग करके देखें।

**–ओशो, ध्यान योग**

# ध्यान की कुंजी है– साक्षी–भाव

ध्यान अभियान है, सबसे बड़ा अभियान जिस पर मनुष्य का मन निकल सकता है। ध्यान है बस होना–कुछ भी न करते हुए–कोई क्रिया नहीं, कोई विचार नहीं, कोई भाव नहीं। तुम बस हो। और यह एक खालिस आनंद है। कहां से आता है यह आनंद जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो? यह आता है न–कहीं से या कि आता है सब कहीं से। यह अकारण है, क्योंकि यह अस्तित्व बना है उस तत्व से जिसे कहते हैं आनंद।

जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो–न शरीर से, न मन से–किसी भी तल पर नहीं–जब समस्त क्रियाएं शून्य हैं और तुम बस हो स्व मात्र–यह है ध्यान। तुम उसे 'कर' नहीं सकते, उसका अभ्यास नहीं हो सकता, तुम उसे समझ भर सकते हो।

जब कभी तुम्हें मौका मिले बस होने का, तब सब क्रियाएं गिरा देना। सोचना भी क्रिया है, एकाग्रता भी क्रिया है और मनन भी। यदि एक क्षण के लिए भी तुम अक्रिय में हो, बस–'स्व' में हो–'परिपूर्ण विश्राम में'–यह है ध्यान। और एक बार तुम्हें इसका गुर मिल जाए, फिर तुम इसमें जितनी देर रहना चाहो, रह सकते हो। अंततः चौबीस घंटे ही इसमें रहा जा सकता है।

एक बार तुम्हें अंतस में अकंपित रहने का बोध हो जाए, फिर तुम धीरे–धीरे कर्म करते हुए भी यह होश रख सकते हो कि तुम्हारा अंतस निष्कंप बना रहता है। यह ध्यान का दूसरा आयाम है। पहले सीखो कि कैसे 'बस होना है', फिर छोटे–छोटे कार्य करते हुए इसे साधो, फर्श साफ करते हुए, स्नान लेते हुए 'स्व' से जुड़े रहो। फिर तुम जटिल कर्मों के बीच भी इसे साध सकते हो।

उदाहरण के लिए मैं तुमसे बोल रहा हूं, लेकिन मेरा ध्यान खंडित नहीं हो रहा है। मैं तुमसे बोले चला जा सकता हूं, लेकिन मेरे अंतर केंद्र पर एक तरंग भी नहीं उठती, वहां बस मौन है। गहन मौन। इसलिए ध्यान कर्म के विपरीत नहीं है। ऐसा नहीं है तुम्हें जीवन को छोड़कर भाग जाना है। यह तो तुम्हें एक नये ढंग से जीवन को जीने की शिक्षा देता है। तुम झंझावात के शांत केंद्र बन जाते हो। तुम्हारा जीवन गतिमान रहता है–पहले से अधिक प्रगाढ़ता से, अधिक आनंद से, अधिक स्पष्टता से, अधिक अंतर्दृष्टि और अधिक सृजनात्मकता से–फिर भी तुम सब में निर्लिप्त होते हो, पर्वत शिखर पर खड़े निरीक्षणकर्ता की भांति, नीचे चारों ओर जो हो रहा है उसे मात्र देखते हुए। ध्यान का अंतर्मन और सार तत्व है यह सीखना कि कैसे साक्षी हों। एक कौआ आवाज दे रहा है... तुम सुन रहे हो। यहां दो हैं : विषय–वस्तु (ऑब्जेक्ट) और विषयी (सब्जेक्ट), लेकिन क्या तुम उस दृष्टा को देख सकते हो, जो इन दोनों को देख रहा है?– कौआ, सुनने वाला–और फिर एक 'कोई और' जो इन दोनों को देख रहा है। यह एक सीधी–सरल घटना है।

तुम एक वृक्ष को देखते हो–तुम हो और वृक्ष है, लेकिन क्या तुम एक और तत्व को नहीं पाते?–कि तुम वृक्ष को देख रहे हो और फिर एक दृष्टा है जो देख रहा है कि तुम वृक्ष को देख रहे हो।

साक्षी ध्यान है। तुम क्या देखते हो, यह बात गौण है। तुम वृक्षों को देख सकते हो, तुम नदी को देख सकते हो, बादलों को देख सकते हो, तुम बच्चों को आस–पास खेलता हुआ देख सकते हो। साक्षी होना ध्यान है। तुम क्या देखते हो यह बात नहीं है; विषय–वस्तु की बात नहीं है।

देखने की गुणवत्ता, होशपूर्ण और सजग होने की गुणवत्ता–यह है ध्यान।

एक बात ध्यान रखें : ध्यान का अर्थ है होश। तुम कुछ भी होशपूर्वक करते हो वह ध्यान है। कर्म क्या है, यह प्रश्न नहीं, किंतु गुणवत्ता जो तुम कर्म में ले आते हो, उसकी बात है। चलना ध्यान हो सकता है, यदि तुम होशपूर्वक चलो। बैठना ध्यान हो सकता है, यदि तुम होशपूर्वक बैठ सको। पक्षियों की चहचहाहट को सुनना ध्यान हो सकता है, यदि तुम होशपूर्वक सुन सको। यूं केवल अपने भीतर मन की आवाजों को सुनना ध्यान बन सकता है, यदि तुम जाग्रत और साक्षी रह सको। सारी बात यह है कि तुम सोये–सोये मत रहो। फिर जो भी हो, ध्यान होगा।

होश के लिए पहला चरण है, अपने शरीर के प्रति पूर्ण होश रखना। धीरे–धीरे व्यक्ति प्रत्येक भाव–भंगिमा के प्रति, हर गति के प्रति होशपूर्ण हो जाता है। और जैसे ही तुम होशपूर्ण होने लगते हो, एक चमत्कार घटित होने लगता है : अनेक बातें जो तुम पहले करते थे, सहज ही गिर जाती हैं। तुम्हारा शरीर ज्यादा विश्रामपूर्ण, ज्यादा लयबद्ध हो जाता है। शरीर तक में एक गहन शांति फैल जाती है। फिर अपने विचारों के प्रति होशपूर्ण होना शुरु करो। जैसे शरीर के प्रति होश को साधा, वैसे ही इन विचारों के प्रति करो। विचार शरीर से ज्यादा सूक्ष्म हैं, और फलतः ज्यादा कठिन भी हैं। और जब तुम विचारों के प्रति जागोगे, तब तुम आश्चर्यचकित होगे कि भीतर क्या–क्या चलता है? यदि तुम किसी भी समय भीतर क्या चलता है, उसे लिख डालो, तो तुम चकित होगे। तुम भरोसा ही न कर पाओगे कि भीतर एक पागल मन बैठा हुआ है। चूंकि हम होशपूर्ण नहीं होते, इसलिए यह सब पागलपन अंर्तधारा की तरह चलता रहता है। यह प्रभावित करता है–जो कुछ तुम करते हो उसे या जो कुछ तुम नहीं करते उसे। सब कुछ प्रभावित होता है और इन सब का जोड़ ही तुम्हारा जीवन बनने वाला है। इसलिए इस भीतर के पागल व्यक्ति को बदलना होगा। और होश का चमत्कार यह है कि तुम्हें और कुछ भी नहीं करना है, सिवाय होशपूर्ण होने के। इसे देखने की घटना मात्र ही इसका रूपांतरण है। धीरे–धीरे विचार एक लयबद्धता ग्रहण करने लगते हैं; उनकी

अराजकता हट जाती है और उनकी एक सुसंगता प्रकट होने लगती है। और फिर एक ज्यादा गहन शांति उतरती है।

फिर जब तुम्हारा शरीर और मन शांतिपूर्ण है तब तुम देखो कि वे परस्पर भी लयबद्ध हैं, उनके बीच एक सेतु है। अब वे विभिन्न दिशाओं में नहीं दौड़ते। अब वे घोड़ों पर सवार नहीं होते। पहली बार भीतर एक सुख चैन आया है और यह सुख चैन बहुत सहायक होता है–तीसरे तल पर ध्यान साधने में और वह है–अपनी भावदशाओं के प्रति होशपूर्ण होना। यह सूक्ष्मतम तल है और सबसे कठिन भी। लेकिन यदि तुम विचारों के प्रति होशपूर्ण हुए हो, तब यह केवल एक कदम आगे है। कुछ ज्यादा गहन होश और तुम अपने भावों और अनुभूतियों के प्रति सजग हो जाओगे। एक बार तुम इन तीन आयामों में होशपूर्ण हो जाते हो, फिर ये तीनों जुड़कर एक ही घटना बन जाते हैं। जब ये तीन एक साथ हो जाते हैं–एक साथ क्रियाशील और निनादित हो उठते हैं, तब तुम इनका संगीत अनुभव कर सकते हो; वे तीनों एक सुरताल बन जाते हैं–तब चौथा चरण 'तुरीय' घटता है–उसे तुम कर नहीं सकते। चौथा अपने से होता है। यह समग्र अस्तित्व से आया उपहार है : जो प्रथम तीन चरणों को साध चुके हैं, उनके लिए यह एक पुरस्कार है।

चौथा चरण होश का चरम शिखर है, जो व्यक्ति को जाग्रत बना देता है। व्यक्ति होश के प्रति जागरूक हो जाता है, जाग जाता है। और इस जागरण में ही अनुभूति होती है कि परम आनंद क्या है? शरीर जानता है देह–सुख; मन जानता है; प्रसन्नता; हृदय जानता है हर्षोल्लास और चौथा, तुरीय जानता है, आनंद। आनंद लक्ष्य है सन्यास का, सत्य के खोजी का–और जागरूकता है उसके लिए मार्ग।

महत्व की बात है कि तुम जागरूक हो, कि तुम होशपूर्ण होना भूले नहीं हो, किन्तु साक्षी हो; दृष्टा ज्यादा सघन, ज्यादा स्थिर, ज्यादा अकंप होने लगता है–एक रूपांतरण घटित होता है; दृश्य विसर्जित होने लगते हैं। पहली बार दृष्टा स्वयं दृश्य बन जाता है, देखने वाला स्वयं दृश्य हो जाता है। तुम 'घर' वापस आ गए। ध्यान से विवेक जागेगा। वैसे ही जैसे सूर्य के आगमन से भोर में जगत जाग उठता है। ध्यान पर श्रम करें। क्योंकि अंततः शेष सब श्रम समय के मरुस्थल में कहां खो जाता है, पता ही नहीं पड़ता है। हाथ में बचती है केवल ध्यान की संपदा। और मृत्यु भी उसे नहीं छीन पाती है। क्योंकि मृत्यु का वश काल (टाइम) के बाहर नहीं है। इसलिए तो मृत्यु को काल कहते हैं। ध्यान ले जाता है कालातीत में। समय और स्थान (स्पेस) के बाहर। अर्थातअमृत में।

समय है विष। क्योंकि काल है जन्म, काल है मृत्यु। ध्यान है अमृत। क्योंकि ध्यान है जीवन। ध्यान पर श्रम जीवन पर ही श्रम है। ध्यान की खोज जीवन की ही खोज है।

ध्यान के लिए श्रम करो। मन की सब समस्याएं तिरोहित हो जाएंगी। असल में तो मन ही समस्या है (माइंड इज दी प्रॉबलम)। शेष सारी समस्याएं तो मन की प्रतिध्वनियां–मात्र हैं। एक–एक समस्या से अलग–अलग लड़ने से कुछ भी न होगा। प्रतिध्वनियों से संघर्ष व्यर्थ है। पराजय के अतिरिक्त उसका और कोई परिणाम नहीं है। शाखाओं को मत काटो। क्योंकि एक शाखा के स्थान पर चार शाखाएं पैदा हो जाएंगी। शाखाओं के काटने से वृक्ष और भी बढ़ता है। और समस्याएं शाखाएं हैं। काटना ही है तो जड़ को काटो। क्योंकि जड़ कटने से शाखाएं अपने–आप ही विदा हो जाती हैं। और मन है जड़। इस जड़ को काटो ध्यान से। मन है समस्या। ध्यान है समाधान। मन में समाधान नहीं है। ध्यान में समस्या नहीं है। क्योंकि मन में ध्यान नहीं है। क्योंकि ध्यान में मन नहीं है। ध्यान की अनुपस्थिति है मन। मन का अभाव है ध्यान। इसलिए कहता हूं–ध्यान के लिए श्रम करो।

मन के रहते शांति कहां? क्योंकि, वस्तुतः मन ही अशांति है। इसलिए शांति की दिशा में मात्र विचार से, अध्ययन से, मनन से कुछ भी न होगा। विपरीत मन और सबल भी हो सकता है; क्योंकि वे सब मन की ही क्रियाएं हैं। हां–थोड़ी देर को विराम जरूर मिल सकता है, जो कि शांति नहीं, बस अशांति का विस्मरण–मात्र है। इस विस्मरण की मादकता से सावधान रहना। शांति चाहिए तो मन को खोना पड़ेगा। मन की अनुपस्थिति ही शांति है। साक्षी भाव (विटनेसिंग) से यही होगा। विचार, कर्म–सभी क्रियाओं के साक्षी बनो। कर्त्ता न रहो साक्षी बनो। पल–पल साक्षी होकर जीयो। जो भी करो–साक्षी रहो। जैसे कि कोई और कर रहा है और मात्र गवाह रहा हो।

फिर धीरे–धीरे मन भोजन न पाने से निर्बल होता जाता है। कर्त्ता–भाव मन का भोजन है। अहंकार मन का ईंधन है। और जिस दिन ईंधन बिल्कुल नहीं मिलता है, उसी दिन मन ऐसे तिरोहित हो जाता है कि जैसे कभी रहा ही न हो।

–ओशो, ध्यान योग

# ध्यान से समाधि की ओर

**पहला प्रश्न––संत कबीर साहब कहते हैं कि गगन गरज रहा है, अमृत बरस रहा है, बिजलियां चमक रही हैं। आनंद–उत्सव हो रहा है। लेकिन मुझे ध्यान में रेचन करते–करते सालों बीत गए, कबीर दास की तरह भीज नहीं पा रहा हूं। क्या कमी है मेरी साधना में? बताने की अनुकंपा करें।**

**दूसरा प्रश्न––किसी शायर ने कहा हैः सितारों के आगे जहाँ और भी हैं, अभी इश्क के इम्तिहाँ और भी हैं। क्या यही बात आध्यात्मिक यात्रा पर भी लागू होती है? मैं पंद्रह सालों से चल रहा हूं मगर मंजिल का अता–पता नहीं मिल रहा है!**

उत्तरः ध्यान पर बात समाप्त नहीं हो जाती। हाँ, ठीक है शुरूआत के लिए ठीक हं, लेकिन वहाँ पर यात्रा खत्म नहीं हो जाती। उसके बाद का भी नक्शा मालूम होना चाहिए कि कहाँ जाना है? ओशो ने कई जगह जिक्र किया है कि उस पार जाने के लिए तुम्हें नाव में बैठना होगा और उस किनारे जब नाव लग जाएगी तो उस किनारे उतरना भी होगा। साधक को ध्यान की विधि से यात्रा की शुरूआत करनी होगी। पतवारें चलानी होंगी, बहुत श्रम करना होगा लेकिन जब उस पार पहुंच जाए तो नाव से उतरना भी होगा। फिर आगे और दूसरी यात्रा है, उस सम्बंध में एक ख्याल बना रहे, अन्यथा नाव में बैठे रह जाने का खतरा है। उस पार पहुंचकर भी उस पार न उतर पाएंगे।

बस एक बात स्मरण रखें, गगन गरज ही रहा है, बादल अमृत बरसा ही रहे हैं, बिजलियां चमक रही हैं। कहीं कोई कमी नहीं है, उत्सव में। जीवन का महोत्सव पूरा जैसा हो सकता है, अपने क्लाइमैक्स पर है। इस क्षण में जितना उत्सव हो रहा है, इससे एक रत्ती भर ज्यादा न कभी हुआ है और न एक रत्ती ज्यादा कभी होगा। परम घटना प्रत्येक क्षण घट ही रही है। लेकिन हम कबीर दास की तरह भीज नहीं रहे हैं, हमने अपना छाता लगा रखा है। ये ध्यान की सारी जो विधियां हैं, वे छाता छुड़ाने का

उपाय हैं। किसी तरह से छाता आपका छीन लिया जाए। आप भी कह सकेंगे कबीरदास की तरह––भीजें दास कबीर। तो आज महोत्सव का दिन हो जाएगा, छाता को बिल्कुल हटा देना। क्या है यह छाता? यह कोई ठोस छाता नहीं है, बड़ा पारदर्शी और सूक्ष्म छाता है। विचारों का छाता है, कुछ और नहीं। विचार एकदम सूक्ष्म, हवाई पदार्थ भी नहीं है। लेकिन उस पारदर्शी छाते ने हम कोढांक लिया है। सिर्फ उसको उघाड़ने की बात है। उसको उघाड़ दें फिर आप भी कह सकेंगे कि 'झरत दसहुं दिस मोती'। गुलाल और कबीर जैसा उस सौभाग्य का हकदार हम में से प्रत्येक व्यक्ति है। लेकिन उस सौभाग्य को क्लैम वहीं कर पाते हैं जो उस छाते को उतार रखने की हिम्मत करते हैं। जो छाता लगाए बैठे हैं अपने अहंकार को बचाने के लिए कि कहीं भींग न जाएं, अपने विचारों, विश्वासों और अंधविश्वासों की परत में ढके हुए हैं, वे उस आनंद–वर्षा से चूक जाते हैं।

एक बड़ी सुन्दर घटना मुझको याद आती है वह आपसे कहूँ और आज की बात पूरी करूं। कुछ सालों पहले थाईलैंड में गौतम बुद्ध की एक बहुत विशालकाय प्रतिमा थी। उसे मंदिर से, जहाँ वह स्थापित थी, वहाँ से हटाना जरूरी हो गया। क्योंकि सड़क चौड़ी की जा रही थी। सड़क बननी थी तो आवश्यक हो गया कि उस प्रतिमा को वहाँ से हटाकर दूसरी जगह स्थापित किया जाए, दूसरा मंदिर बनाया जाए। बड़ी भारी क्रेन से उस प्रतिमा को हटाया गया। दूसरी जगह रखा गया। उठाने–रखने में, उसमें बीच में एक दरार पड़ गई। रात को वर्षा हुई और वर्षा का पानी उस दरार में से भीतर चला गया। कुछ मिट्टी वहाँ से बह गई। सुबह पुजारी वहाँ आया तो वह देखकर बड़ा हैरान हुआ। उस दरार में से कोई चमकती हुई चीज नजर आ रही है। उसने थोड़ी सी मिट्टी कुरेद कर देखी। उसके तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा––सॉलिड गोल्ड, ठोस सोने की प्रतिमा! कोई एक–डेढ़ इंच मिट्टी की परत उस पर चढ़ी हुई थी। भीतर सॉलिड गोल्ड की प्रतिमा। वह विश्व की सबसे बड़ी एवं सबसे वजनदार गौतम बुद्ध की सोने की मूर्ति है। आज थाइलैंड की राजधानी बैंकाक के एक मंदिर में स्थापित है। लेकिन हजारों साल से लोग उसे मिट्टी की मूरत समझते रहे। ऐसा अनुमान है कि कभी किसी आक्रमणकारी ने थाइलैंड पर हमला किया होगा तो पुजारियों ने सोने की इस प्रतिमा को बचाने के लिए उस पर मिट्टी की परत चढ़ा दी, ताकि हमलावर समझें कि मिट्टी की मूर्ति है। उसको लूट कर न ले जाएं। फिर समय बीता, वक्त आया और गया। इतिहासविदों का अनुमान है कि वे पुजारी मारे गए। बाद में उनकी दूसरी पीढ़ी आ गई, तीसरी पीढ़ी आ गई। धीरे–धीरे यह बात विस्मृत हो गई कि यह सोने की प्रतिमा है। लोग उसको मिट्टी की मूर्ति ही समझते रहे। हजारों साल से उसे मिट्टी की मूर्ति समझा जा रहा था। लेकिन संयोग से पता चला कि वह मिट्टी की मूर्ति नहीं है।

कुछ ऐसा ही हम सबके साथ भी घटित हो गया है। बुद्धत्व हम सबका जन्म सिद्ध

अधिकार है। उसको लेकर हम पैदा हुए हैं। वह हमारे भीतर छुपा हुआ है। लेकिन ऊपर एक पतली सी झिनी–झिनी परत चढ़ गई है और वह कोई ठोस मिट्टी की परत भी नहीं है। सिर्फ विचारों, विश्वासों, धारणाओं की वह परत है। ठोस पदार्थ की भी नहीं है। जरा सा हम उसे कुरेद दें तो भीतर वह बुद्ध की प्रतिमा प्रकट हो जाएगी। वह गरिमा, वह महिमा प्रकट हो जाएगी। कबीर दास जैसे फिर हम भी कह सकेंगे। भींजे दास कबीर! लेकिन इस परत को हटाना जरूरी है। ध्यान की इस प्रक्रिया में इस परत को हम हटा रहे हैं।

ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है, अनेक मित्र हैं जो बीस–पच्चीस साल से साधना के नाम पर कोई विधि कर रहे हैं। आगे की यात्रा में कहीं अटकाव आ गया है। रेचन की विधि पच्चीस साल करने की चीज तो नहीं है। वह तो ऐसा हुआ कि कैथारसिस करके मिट्टी की परत थोड़ी कुरेदी और फिर दिन भर में धूल की नई परत चढ़ा ली। ऐसा ही कुछ हो रहा है। एक हाथ से हम मंदिर की ईंट रख रहे हैं दीवाल बनाने के लिए और दूसरे हाथ से ईंट को हटा रहे हैं। इस प्रकार तो कभी भी यह मंदिर निर्मित न होगा।

बहुत से मित्र लम्बे समय से ध्यान से कर रहे हैं, बड़ी निष्ठा से श्रम कर रहे है। लेकिन कुछ कमी है। कोई चूक, कोई बुनियादी भूल हो रही है। वह भूल जैसी मुझे दिखाई पड़ती है, वह यह है कि साफ सफाई तो करते हैं कैथारसिस द्वारा, रेचन द्वारा, प्राणायाम द्वारा ऊर्जा जगाई, थोड़ी देर के लिए एक निर्मलता आई। लेकिन दिन भर में फिर कूड़ा करकट इकट्ठा कर लिया। दूसरे दिन सुबह फिर वही के वही। फिर क्रोध इकट्ठा हो गया, फिर वासना एकत्रित हो गई। फिर लोभ जमा हो गया। फिर घृणा इकट्ठी कर ली। बड़ी बुनियादी भूल हो गई यह तो! ऐसे तो हम जिंदगी भर भी करते रहेंगे तो भी परम अनुभव न होगा। यह तो ऐसा हुआ कि हमने उस गौतम बुद्ध की प्रतिमा मे से एक पर्त हटाई और फिर थोड़ी सी मिट्टी थोप दी उस पर। अगले दिन पुनः वही काम किया। फिर थोड़ी सी मिट्टी खरोंची और नई मिट्टी थोप दी। इस प्रकार तो हम उस प्रतिमा को कभी भी न उघाड़ पायेंगे। एक हाथ से हम बना रहे हैं कथा दूसरे हाथ से मिटा रहे हैं। इससे तो श्रम व्यर्थ होगा, समय बर्बाद होगा। कहाँ हमें जाना है, क्या हमारा गंतव्य है, हमारा लक्ष्य है, यह स्पष्ट होना चाहिए। और क्यों हम उससे चूक रहे हैं? इतनी निष्ठापूर्वक ध्यान कर रहे हैं, श्रम कर रहे हैं। फिर कहाँ गलती हो गई? इस सम्बंध में थोड़ी सी चर्चा की है, आप भी चिंतन करें। उत्तर देने की बजाए मैं प्रश्न खड़े करना पसंद करता हूं ताकि आपकोझकझोर सकूं, मनन के लिए मजबूर कर सकूं। क्योंकि अंततः केवल स्वयं के उत्तर ही काम आते हैं, उधार ज्ञान काम नहीं आता।

# समाधिः प्रभु–मन्दिर का संगीत

ओशो की हस्तलिखित कृति 'मिट्टी के दीए' की प्रथम कथा–

एक कथा मैंने सुनी थी। हजारों वर्ष पूर्व परमात्मा के मंदिरों का एक नगर सागर में डूब गया था। उस सागर में डूबे उन मंदिरों की घंटियां आज भी बजती रहती हैं। शायद पानी के धक्के उन्हें बजा देते होंगे, या यहाँ–वहाँ भागती मछलियों से टकराकर वे बजती रहती होंगी। जो भी हो, घंटियां आज भी बजती हैं। और आज भी उनके मधुर संगीत को उस सागर के तट पर जाकर सुना जा सकता है।

मैं भी उस संगीत को सुनना चाहता था। मैं उस सागर की खोज में गया। बहुत वर्षों की भटकन के बाद अंततः उस सागर–तट पर पहुंच ही गया। किंतु यह क्या, वहाँ तो सागर का तुमुलनाद गूंज रहा था–लहरों के थपेड़े चट्टानों से टकराकर उस एकांत में अनंत गुना हो प्रतिध्वनित हो रहे थे। न तो वहाँ कोई संगीत था, न किन्हीं मंदिरों की बजती कोई घंटियां थीं। मैं तट पर कान लगाकर सुनता था लेकिन वहाँ तो तट पर टूटती लहरों की ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ भी न था।

फिर भी मैं रुका रहा। वस्तुतः लौटने का मार्ग ही मैं भूल गया। अब तो वह अपरिचित निर्जन सागर–तट ही मेरी समाधि बनने को था।

फिर धीरे–धीरे सागर में डूबे मंदिरों की घंटियां सुनने का खयाल भी मुझे भूल गया। उस सागर के किनारे ही बस गया था। फिर एक रात्रि अचानक मैंने पाया कि डूबे मंदिरों की घंटियां बज रही हैं और उनका मधुर संगीत मेरे प्राणों को आंदोलित कर रहा है। मैं उस संगीत को सुनकर जाग गया और फिर तब से सो नहीं सका। अब तो भीतर कोई निरंतर ही जागा हुआ है। निद्रा सदा को ही चली गई है।

और जीवन आलोक से भर गया है, क्योंकि जहाँ निद्रा नहीं है, वहाँ अंधकार नहीं है।

और मैं आनंद में हूं... नहीं, नहीं... मैं आनंद ही हो गया हूं, क्योंकि जहाँ परमात्मा के मंदिर का संगीत है, वहाँ दुख कहा?

क्या तुम भी उस सागर के किनारे चलना चाहते हो? क्या तुम्हें भी परमात्मा के डूबे मंदिर का संगीत सुनना है?

तो चलो। स्वयं के भीतर चलो। स्वयं का हृदय ही वह सागर है और उसकी गहराइयों में ही परमात्मा के डूबे हुए मंदिरों का नगर है।

लेकिन उसके मंदिरों का संगीत सुनने में केवल वे ही समर्थ होते हैं, जो सब भांति शांत और शून्य हों।

विचार और वासना का कोलाहल जहाँ है, वहाँ उसका संगीत कैसे सुन पड़ेगा? उसे पाने की वासना तक भी उसे पाने में बाधा बन जाती है।

क्या तुम भी उस सागर के किनारे चलना चाहते हो?

क्या तुम्हें भी परमात्मा के डूबे मंदिर का संगीत सुनना है?

तो चलो। स्वयं के भीतर चलो...

# साधना में आहार का महत्व

- साधना में आहार का महत्व
- सात्विक भोजन: न उत्तेजक, न हिंसक, न मादक

# साधना में आहार का महत्व

**शरीर रूपी जीवन–वीणा से संगीत उठ सके इसका पहला सूत्र है, सम्यक आहार। दूसरा सूत्र है, सम्यक व्यायाम। और तीसरा सूत्र है, सम्यक निद्रा। जो व्यक्ति ठीक–ठीक श्रम से, ठीक–ठीक आहार से, और ठीक–ठीक निद्रा से वंचित हो जाता है, वह कभी भी नाभि–केंद्रित नहीं हो सकता है। और इन तीनों ही चीजों से मनुष्य–जाति वंचित हो गयी है!**

अंतर्यात्रा प्रवचनमाला में ओशो समझाते हैं––

मनुष्य अकेला प्राणी है, जिसके आहार का कोई ठिकाना नहीं रहा है। बाकी सभी प्राणियों के आहार सुनिश्चित हैं। उनकी मूल प्रवृत्ति, उनकी प्रकृति निर्धारित करती है कि वे क्या खायें और क्या न खायें, और कितना खायें और कितना न खायें, और कब खायें और कब खाने से रुक जायें। लेकिन मनुष्य बिल्कुल ही इनडिटर्मिनेट है, वह बिल्कुल अनिश्चित है। न तो उसकी प्रकृति कुछ कहती है कि वह क्या खाये। न उसका बोध कहता है कि वह कितना खाये। न उसकी समझ कोई निर्धारण करती है कि वह कब रुक जाये। ये कोई भी बातें मनुष्य की सब निर्धारित न होने से मनुष्य का जीवन बहुत अनिश्चित दिशाओं में प्रवृत्त हुआ है। लेकिन थोड़ी भी समझ हो, थोड़ी भी बुद्धिपूर्वक, थोड़े भी विचार से, थोड़े भी आंख खोलकर आदमी जीना शुरू करे, तो आहार को सम्यक कर लेना जरा भी कठिन नहीं है, अत्यंत आसान बात है। उससे ज्यादा आसान कोई बात नहीं हो सकती। सम्यक आहार को दो–तीन टुकड़ों में बांटकर समझ लेना चाहिए।

पहली तो बात––मनुष्य क्या खाये, क्या न खाये? शरीर तो रासायनिक तत्वों से निर्मित होता है। शरीर की सारी प्रक्रिया तो अत्यंत रासायनिक, अत्यंत केमिकल है। अगर एक आदमी के भीतर शराब डाल दी जाये, तो शरीर उस रसायन के प्रति प्रवृत्त होगा––नशे से, मूर्च्छा से भर जायेगा। फिर चाहे वह व्यक्ति कितना ही स्वस्थ, कितना ही शांत क्यों न हो, नशे की रासायनिकता उसके शरीर पर परिणाम लायेगी। चाहे वह व्यक्ति कितना ही साधु क्यों न हो, जहर उसे पिला दिया जाये तो उसकी मृत्यु हो जायेगी।

सुकरात की मृत्यु जहर के पिला देने से हो गयी और गांधी की मृत्यु एक गोली के मार देने से हो गयी। गोली यह नहीं देखती है कि यह आदमी साधु है या असाधु है। और जहर भी यह नहीं देखता है कि यह आदमी सुकरात है या कोई साधारण–जन है। न ही नशे यह देखते हैं, न भोजन यह देखता है कि आप कौन हैं और क्या हैं। उसके तो सीधे सूत्र हैं, वह शरीर की केमिस्ट्री में, शरीर के रसायन में जाकर काम करना शुरू कर देता है। ऐसा कोई भी भोजन जो मादक है, मनुष्य की चेतना में बाधा डालना शुरू करता है।

ऐसा कोई भी भोजन जो उत्तेजक है, मनुष्य की चेतना को नुकसान पहुंचाना शुरू करता है। ऐसा कोई भी भोजन जो मनुष्य को किसी भी तरह की मूर्च्छा में, उत्तेजना में, किसी भी तरह की तीव्रता में, किसी भी तरह के विक्षेप में ले जाता हो, वह सभी नुकसान करता है। और उस सबका अंतिम नुकसान और गहरे से गहरा नुकसान नाभि–केंद्र पर पहुंचना शुरू हो जाता है।

यह शायद आपको ख्याल न हो, सारी दुनिया में नेचरोपैथी, या नैसर्गिक उपचार––मिट्टी की पट्टियों का, शाकाहारी भोजन का, हल्के भोजन का, पानी की पट्टियों का, टब–बाथ का प्रयोग करते हैं। लेकिन किसी भी नेचरोपैथ को अभी यह ख्याल में बात नहीं आयी है कि पानी की पट्टियों का, मिट्टी की पट्टियों का, या टब–बाथ का जो भी परिणाम होता है, वह पानी का उतना नहीं है, न मिट्टी का उतना है, बल्कि नाभि–केंद्र के ऊपर उनका जो परिणाम होता है, उसके कारण वे सारे प्रभाव पड़ते हैं। वे प्रभाव न तो मिट्टी के हैं उतने, न पानी के हैं, न टब–बाथ के हैं। लेकिन ये सारी चीजें नाभि–केंद्र की छिपी हुई ऊर्जा को जिस भांति प्रभावित करती हैं और वह यदि जाग्रत हो जाये तो मनुष्य के जीवन में स्वास्थ्य का अवतरण शुरू हो जाता है।

लेकिन अभी नेचरोपैथी को इसका कोई ख्याल नहीं है। वे सोचते हैं कि शायद मिट्टी की पट्टी चढ़ाने से यह फायदा हो रहा है, पानी में बिठाने से यह फायदा हो रहा है, पेट पर कपड़े की गीली पट्टी लगाने से यह फायदा हो रहा है! इसके फायदे हैं, लेकिन मौलिक फायदा तो नाभि–केंद्र के सुप्त केंद्रों के जागरण से शुरू होता है। यह जो नाभि–केंद्र है, इसके ऊपर अगर अनाचार किया जाये, इस नाभि–केंद्र के ऊपर अगर गलत आहार, गलत भोजन किया जाये तो वह धीरे–धीरे केंद्र सुप्त होता है और उसकी ऊर्जा क्षीण होती है। वह धीरे–धीरे केंद्र सोता है। अंततः वह करीब–करीब सो जाता है। उसका हमें कोई पता ही नहीं चलता कि वह भी कोई केंद्र है। हमें फिर दो ही केंद्रों का पता चलता रहता है। एक तो मस्तिष्क है, जहां विचार दौड़ते रहते हैं और एक थोड़े हृदय में, जहां भावनाएं दौड़ती रहती हैं। उसके नीचे हमारे कोई संबंध नहीं रह जाते। जितना हल्का आहार होगा, जितना कम बोझिल आहार होगा, शरीर के ऊपर जो बोझ न लाता हो, उतना ही कीमती और अर्थपूर्ण आपकी अंतर्यात्रा प्रारंभ होगी।

तो सम्यक आहार का पहला तो ध्यान रखना यह है कि वह उत्तेजक न हो, मादक न हो, वह भारी न हो। ठीक भोजन के बाद आपको बोझिलता और भारीपन अनुभव नहीं होना चाहिए। लेकिन शायद भोजन के बाद हम सभी को भारीपन और बोझिलता अनुभव होती है। तो हम गलत भोजन कर रहे हैं, यह हमें जान लेना चाहिए।

एक बहुत बड़े डाक्टर ने, केनेथवाकर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैं अपने जीवन–भर के अनुभव से यह कहता हूं कि लोग जो भोजन करते हैं, उसमें से आधे भोजन से उनका पेट भरता है और आधे भोजन से हम डाक्टरों का पेट भरता है। अगर वे आधा भोजन करें तो वे बीमार ही नहीं पड़ेंगे, और हम डाक्टरों की कोई जरूरत न रह जायेगी।

कुछ लोग इसलिए बीमार रहते हैं कि उन्हें पूरा भोजन नहीं मिलता। और कुछ लोग इसलिए बीमार रहते हैं कि उन्हें ज्यादा भोजन मिल जाता है। कुछ लोग भूख से मरते हैं, कुछ लोग भोजन से मरते हैं! और भोजन से मरने वालों की संख्या भूख से मरने वालों की संख्या से हमेशा ज्यादा रही है। भूख से मरने वाले बहुत कम लोग हैं। एक आदमी भूखा भी रहना चाहे तो कम से कम तीन महीने तक उसके मरने की बहुत कम संभावना है। तीन महीने तक तो कोई भी आदमी भूखा रह सकता है। लेकिन एक आदमी अगर तीन महीने तक अति भोजन करे, तो कोई हालत में जिंदा नहीं रह सकता है।

लेकिन ऐसे–ऐसे लोग हुए हैं कि जिनका ख्याल ही हमें हैरानी से भर देता है। नीरो हुआ है एक बहुत बड़ा बादशाह। उसने दो डाक्टर लगा रखे थे कि वह भोजन करने के बाद उसे वामिट करवा दें, उसे उल्टी करवा दें, ताकि दिन में वह कम से कम पंद्रह–बीस बार भोजन करने का आनंद ले सके। तो वह खाना खाता, फिर दवा देकर उसे उल्टी करवा दी जाती, ताकि वह फिर से भोजन का आनंद ले सके!

हम भी क्या कर रहे हैं? उसने डाक्टर घर रख छोड़े थे, वह बादशाह था। हमने पड़ोस में बसा रखे हैं, हम बादशाह नहीं हैं। वह रोज उल्टी करवा लेता था, हम दो–चार महीने में करवाते हैं, लेकिन हम करवाते क्या हैं? हम गलत खाकर इकट्ठा कर लेते हैं, फिर डाक्टर उसको साफ करता है। फिर हम गलत खाना शुरू कर देते हैं। वह होशियार आदमी था, उसने रोज ही व्यवस्था कर ली थी। हम दो–तीन महीने में करते हैं। अगर हम भी बादशाह होते तो हम भी ऐसे ही करते। यह हमारी मजबूरी है, हमारे पास इतनी सुविधा नहीं है, तो हम इतना नहीं कर पाते। नीरो पर हमें हंसी आती है, लेकिन हम सब छोटी–मोटी मात्रा में नीरो से भिन्न नहीं हैं।

यह जो––यह जो हमारी असम्यक दृष्टि है भोजन के प्रति, यह भारी पड़ती चली जा रही है। यह बहुत महंगी पड़ती चली जा रही है। और यह उस जगह हमको पहुंचा दिये है, जहां कि हम किसी तरह जिंदा हैं। भोजन हमारा हमें स्वास्थ्य लाता हुआ नहीं

मालूम प.ड़ता, बल्कि भोजन बीमारी लाता हुआ मालूम पड़ता है। और जब भोजन बीमारी लाने लगे तो आश्चर्य की घटना शुरू हो गयीं।

यह वैसे ही है कि सूरज सुबह निकले और अंधकार हो जाये। यह उतनी ही आकस्मिक और आश्चर्यजनक घटना है। लेकिन दुनिया के सारे चिकित्सकों का मत यह है कि आदमी की अधिकतम बीमारियां उसके गलत भोजन की बीमारियां हैं।

पहली बात––प्रत्येक व्यक्ति को इस संबंध में बहुत बोध और होश से चलना चाहिए––साधक के लिए मैं कह रहा हूं यह––साधक को यह ध्यान में रखना जरूरी है कि वह क्या खाता है, कितना खाता है और उसके परिणाम उसके शरीर पर क्या हैं? और अगर एक आदमी दो–चार महीने ध्यानपूर्वक प्रयोग करे, तो वह अपने योग्य, अपने शरीर को समता और शांति और स्वास्थ्य देने वाले भोजन की तलाश जरूर कर लेगा। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन हम ध्यान ही नहीं देते हैं, इसलिए हम कभी तलाश ही नहीं कर पाते। हम कभी खोज ही नहीं पाते।

दूसरी बात––भोजन के संबंध में, जो हम खाते हैं, उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि हम उसे किस भाव–दशा में खाते हैं। उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। आप क्या खाते हैं, यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना यह महत्वपूर्ण है कि आप किस भाव–दशा में खाते हैं। आप आनंदित खाते हैं, या दुखी, उदास और चिंता से भरे हुए खाते हैं। अगर आप चिंता से खा रहे हैं, तो श्रेष्ठतम भोजन के परिणाम भी पायजनस होंगे, जहरीले होंगे। और अगर आप आनंद से खा रहे हैं, तो कई बार संभावना भी है कि जहर भी आप पर पूरे परिणाम न ला पाये। बहुत संभावना है। आप कैसे खाते हैं, किस चित्त दशा में?

रूस में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक था पीछे––पावलव। उसने जानवरों पर कुछ प्रयोग किये और वह उस नतीजे पर पहुंचा, जो बड़े हैरानी का है। वह कुछ कुत्तों पर प्रयोग कर रहा था, कुछ बिल्लियों पर प्रयोग कर रहा था। उसने एक बिल्ली को भोजन दिया और सामने उसके एक्स–रे मशीन लगा रखी थी, जिससे वह देख रहा था कि उस––उस बिल्ली के पेट में क्या हो रहा है भोजन के बाद। भोजन पेट में गया और भोजन के जाते ही पेट ने उस भोजन को पचाने वाले रस छोड़े। तभी एक कुत्ते को भी खिड़की के भीतर ले आया गया। कुत्ता भौंका, बिल्ली देखकर डर गयी और एक्स–रे की मशीन ने बताया कि उसके रस भीतर छूटने बंद हो गये! पेट बंद हो गया, सिकुड़ गया!

फिर कुत्ते को बाहर निकाल दिया गया, लेकिन छह घंटे तक पेट उसी हालत में पड़ा रहा! फिर भोजन के पचाने की क्रिया शुरू नहीं हुई! और छह घंटे में भोजन सब शांत हो गया। और छह घंटे के बाद जब रस छूटने शुरू हुए तो वह भोजन सब ठंडा हो

चुका था। उस भोजन को पचाना कठिन हो गया। बिल्ली के मन में चिंता पकड़ गयी कुत्ते की मौजूदगी और पेट ने अपना काम बंद कर दिया।

हमारी हालत क्या होगी? हम तो चिंता में ही चौबीस घंटे जीते हैं। तो हम जो भोजन करते होंगे, वह कैसे पच जाता है यह मिरेकल है, यह बिल्कुल चमत्कार है। यह भगवान कैसे करता है, हमारे बावजूद करता है यह। हमारी कोई इच्छा उसके पचने की नहीं है। यह कैसे पच जाता है, यह बिल्कुल आश्चर्य है! और हम कैसे जिंदा रह लेते हैं, यह भी एक आश्चर्य है! भावदशा––आनंदपूर्ण, प्रसादपूर्ण निश्चित ही होनी चाहिए।

लेकिन हमारे घरों में हमारे भोजन की जो टेबल है या हमारा चौका जो है, वह सबसे ज्यादा विषादपूर्ण अवस्था में है। पत्नी दिन भर प्रतीक्षा करती है कि पति कब घर खाने आ जाये। चौबीस घंटे का जो भी रोग और बीमारी इकट्ठी हो गयी है, वह पति की थाली पर ही उसकी निकलती है। और उसे पता नहीं कि वह दुश्मन का काम कर रही है। उसे पता नहीं, वह जहर डाल रही है थाली में।

और पति भी घबराया हुआ, दिन भर की चिंता से भरा हुआ थाली पर किसी तरह भोजन को पेट में डालकर हट जाता है! उसे पता नहीं है कि एक अत्यंत प्रार्थनापूर्ण कृत्य था, जो उसने इतनी जल्दी में किया है और भाग खड़ा हुआ है। यह कोई ऐसा कृत्य नहीं था कि जल्दी में किया जाये। यह उसी तरह किये जाने योग्य था, जैसे कोई मंदिर में प्रवेश करता है, जैसे कोई प्रार्थना करने बैठता है, जैसे कोई वीणा बजाने बैठता है। जैसे कोई किसी को प्रेम करता है और उसे एक गीत सुनाता है। यह उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण था। वह शरीर के लिए भोजन पहुंचा रहा था। यह अत्यंत आनंद की भावदशा में ही पहुंचाया जाना चाहिए। यह एक प्रेमपूर्ण और प्रार्थनापूर्ण कृत्य होना चाहिए।

जितने आनंद की, जितने निश्चिंत और जितने उल्लास से भरी भावदशा में कोई भोजन ले सकता है, उतना ही उसका भोजन सम्यक होता चला जाता है।

हिंसक भोजन यही नहीं है कि कोई आदमी मांसाहार करता हो। हिंसक भोजन यह भी है कि कोई आदमी क्रोध से आहार करता हो। ये दोनों ही वायलैंट हैं, ये दोनों ही हिंसक हैं। क्रोध से भोजन करते वक्त, दुख में, चिंता में भोजन करते वक्त भी आदमी हिंसक आहार ही कर रहा है। क्योंकि उसे इस बात का पता ही नहीं है कि वह जब किसी और का मांस लाकर खा लेता है, तब तो हिंसक होता ही है, लेकिन जब क्रोध और चिंता में उसका अपना मांस भीतर जलता हो, तब वह जो भोजन कर रहा है, वह भी अहिंसक नहीं हो सकता है। वहां भी हिंसा मौजूद है।

सम्यक आहार का दूसरा हिस्सा है कि आप अत्यंत शांत, अत्यंत आनंदपूर्ण अवस्था में भोजन करें। और अगर ऐसी अवस्था न मिल पाये, तो उचित है कि थोड़ी

देर भूखे रह जायें, उस अवस्था की प्रतीक्षा करें। जब मन पूरा तैयार हो, तभी भोजन पर उपस्थित होना जरूरी है। कितनी देर मन तैयार नहीं होगा? मन के तैयार होने का अगर ख्याल हो, तो एक दिन मन भूखा रहेगा, कितनी देर भूखा रहेगा? मन को तैयार होना पड़ेगा। मन तैयार हो जाता है, लेकिन हमने कभी उसकी फिक्र नहीं की है। हमने भोजन डाल लेने को बिल्कुल मेकेनिकल, एक यांत्रिक क्रिया बना रखी है कि शरीर में भोजन डाल देना है और उठ जाना है। वह कोई साइकोलाजिकल प्रोसेस, वह कोई मानसिक प्रक्रिया नहीं रही है। यह घातक बात है।

शरीर के तल पर सम्यक आहार स्वास्थ्यपूर्ण हो, अनुत्तेजनापूर्ण हो, अहिंसक हो और चित्त के आधार पर आनंदपूर्ण चित्त की दशा हो, प्रसादपूर्ण मन हो, प्रसन्न हो, और आत्मा के तल पर कृतज्ञता का बोध हो, धन्यवाद का भाव हो। ये तीन बातें भोजन को सम्यक बनाती हैं।

मुझे भोजन उपलब्ध हुआ है, यह बहुत बड़ी धन्यता है। मुझे एक दिन और जीने को मिला है, यह बहुत बड़ा ग्रेटिट्यूट है। आज सुबह मैं फिर जीवित उठ आया हूं। आज फिर सूरज ने रोशनी दी है। आज फिर चांद मुझे देखने को मिलेगा। आज मैं फिर जीवित हूं। जरूरी नहीं था कि मैं आज जीवित होता। आज मैं कब्र में भी हो सकता था, लेकिन आज मुझे फिर जीवन मिला है। और मेरे द्वारा कुछ भी कमाई नहीं की गयी है, जीवन पाने को। जीवन मुझे मुफ्त में मिला है। इसके लिए कम से कम धन्यवाद का, मन में अनुग्रह का, ग्रेटिट्यूट का कोई भाव होना चाहिए।

भोजन हम कर रहे हैं, पानी हम पी रहे हैं, श्वास हम ले रहे हैं, इस सबके प्रति अनुग्रह का बोध होना चाहिए। समस्त जीवन के प्रति, समस्त जगत के प्रति, समस्त सृष्टि के प्रति, समस्त प्रकृति के प्रति, परमात्मा के प्रति एक अनुग्रह का बोध होना चाहिए कि मुझे एक दिन और जीवन का मिला है। मुझे एक दिन और भोजन मिला है। मैंने एक दिन और सूरज देखा। मैंने आज और फूल खिले देखे। आज मैं और जीवित था।

रवींद्रनाथ की मृत्यु आयी, उसके दो दिन पहले उन्होंने कहा--उन्होंने कहा कि हे परमात्मा, मैं कितना अनुगृहीत हूं, कैसे कहूं! तूने मुझे जीवन दिया, जिसे जीवन पाने की कोई भी पात्रता न थी। तूने मुझे श्वासें दीं, जिसके श्वास पाने का कोई अधिकार न था। तूने मुझे सौंदर्य के, आनंद के अनुभव दिये, जिनके लिए मैंने कोई भी कमाई न की थी। कि मैं धन्य रहा हूं और तेरे बोझ से, अनुग्रह के बोझ से डूब गया हूं। और अगर तेरे इस जीवन में मैंने कोई दुख पाया हो, कोई पीड़ा पायी हो, कोई चिंता पायी हो, तो वह मेरा कसूर रहा होगा। तेरा जीवन तो बहुत-बहुत आनंदपूर्ण था। वह मेरी कोई भूल रही है। तो मैं नहीं कहता हूं तुझसे कि मुझे मुक्ति दे दे जीवन से। अगर तू मुझे फिर से योग्य

समझे तो बार–बार मुझे जीवन में भेज देना। तेरा जीवन अत्यंत आनंदपूर्ण था और मैं अनुगृहीत हूं।

यह जो भाव है, यह जो कृतज्ञता का भाव है, वह समस्त जीवन के साथ संयुक्त होना चाहिए। आहार के साथ तो बहुत विशेष रूप से। तभी आहार सम्यक हो पाता है।

–ओशो, अंतर्यात्रा

# सात्विक भोजन: न उत्तेजक, न हिंसक, न मादक

मनुष्य का व्यक्तित्व बहुत पर्तों से बना है। और इन पर्तों का सम्यक बोध इन पर्तों को पार करने के लिए जरूरी है। जिसके पार हमें जाना हो उसे जान लेना जरूरी है; जिससे हमें मुक्त होना हो उसे पहचान लेना जरूरी है। ऊपर से देखने पर आदमी जैसा दिखाई पड़ता है, वह उसका पूरा शरीर नहीं है, वह केवल उसके शरीरों की पहली पर्त है। जब हम देखते हैं आदमी को तो जो हमें दिखाई पड़ता है, उसे ऋषियों ने 'अन्नमय कोष' कहा है–'दि फिजिकल बॉडी'।

भोजन आपके शरीर को रोज नया शरीर दे रहा है, और आपके शरीर से मुर्दा शरीर रोज बाहर फेंका जा रहा है। यह सतत प्रक्रिया है। इसलिए शरीर को अन्नमय कोष कहा है, क्योंकि यह अन्न से ही निर्मित होता है।

और इसलिए बहुत कुछ निर्भर करेगा कि आप कैसा भोजन ले रहे हैं। इस पर बहुत कुछ निर्भर करेगा। आपका आहार सिर्फ जीवनचलाऊ नहीं है, वह आपके व्यक्तित्व की पहली पर्त निर्मित करता है। और उस पर्त के ऊपर बहुत कुछ निर्भर करेगा कि आप भीतर यात्रा कर सकते हैं या नहीं कर सकते हैं; क्योंकि सभी भोजन एक जैसा नहीं है।

कुछ भोजन हैं जो आपको भीतर प्रवेश करने ही न देंगे, जो आपको बाहर ही दौड़ाते रहेंगे; कुछ भोजन हैं जो आपके भीतर चैतन्य को जन्मने ही न देंगे, क्योंकि वे आपको बेहोश ही करते रहेंगे, कुछ भोजन हैं जो आपको कभी शांत न होने देंगे, क्योंकि उस भोजन की प्रक्रिया में ही आपके शरीर में एक 'रेस्टलेसनेस', एक बेचैनी पैदा हो जाती है। रुग्ण भोजन है, स्वस्थ भोजन है, शुद्ध भोजन है, अशुद्ध भोजन है।

शुद्ध भोजन उसे कहा गया है, जिससे आपका शरीर अंतर की यात्रा में बाधा न दे–बस; और कोई अर्थ नहीं है। शुद्ध भोजन से सिर्फ इतना ही अर्थ है कि आपका शरीर आपकी अंतर्यात्रा में बाधा न बने।

एक आदमी अपने घर की दीवारें ठोस पत्थर से बना सकता है। कोई आदमी अपने घर की दीवारें कांच से भी बना सकता है; लेकिन कांच पारदर्शी है, बाहर खड़े होकर भी भीतर का दिखाई पड़ता है। ठोस पत्थर की भी दीवार बन जाती है, तब बाहर खड़े होकर भीतर दिखाई नहीं पड़ता है।

शरीर भी कांच जैसा पारदर्शी हो सकता है। उस भोजन का नाम शुद्ध भोजन है जो शरीर को पारदर्शी, 'ट्रान्सपैरेंट' बना दे... कि आप बाहर भी चलते रहें तो भी भीतर की झलक आती रहे। शरीर को आप ऐसी दीवार भी बना सकते हैं कि भीतर जाने का ख्याल ही भूल जाये, भीतर की झलक ही मिलनी बंद हो जाये।

सात्विक और असात्विक का इतना ही अर्थ है : आपका शरीर पारदर्शी हो सके... पहली पर्त पारदर्शी हो सके। तो भीतर की यात्रा शुरु होती है और जब पहली पर्त पारदर्शी होती है तो दूसरी पर्त का पता चलता है, नहीं तो पता नहीं चलता। हमें पता ही नहीं चलता कि शरीर के भीतर और भी कोई शरीर है। उसका और कोई कारण नहीं है। योगी को पता चलता है कि शरीर के भीतर एक और शरीर है, क्योंकि उसकी पहली पर्त पारदर्शी हो जाती है; तो उसे दूसरे शरीर की झलक मिलनी शुरु हो जाती है।

और तब दूसरे शरीर को भी पारदर्शी बनाने के उपाय हैं तब तीसरे शरीर की झलक मिलनी शुरु हो जाती है। फिर तीसरे शरीर को भी पारदर्शी बनाया जा सकता है, तो चौथा शरीर है। और चौथा भी पारदर्शी हो जाये, तो पांचवां। और जब पांचवां पारदर्शी होता है तब शरीर के बाहर जो है, शरीर के पार जो है, अशरीरी जो है, उसकी झलक मिलनी शुरु होगी।

तो आप अपने शरीर को ठोस पत्थर की दीवारें बना सकते हैं, कांच की पारदर्शी दीवारें भी बना सकते हैं।

यह भोजन से निर्मित जो शरीर है आपके चारों ओर 'अन्नमय कोष... ' निश्चित ही यह पूरा का पूरा भोजन से निर्मित है। इसमें कुछ भी नहीं है जो भोजन के बाहर से आया हो। हो सकता है, वह भोजन आपके पिता ने किया हो, और उनके पिता ने किया हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; इस शरीर में ऐसा कुछ भी नहीं है जो भोजन के बाहर से आया हो।

मनुष्य का जो जीव–कोष है, जिससे गर्भ निर्धारण होता है, उसका विश्लेषण करके सिवाय भोजन के तत्वों के और कुछ भी नहीं मिलता है। भोजन का सारभूत हिस्सा, इसेंस बीज में संगृहीत होता है।

इस पर बड़े प्रयोग किये हैं मनीषियों ने। हजारों वर्ष तक, पीढ़ी दर पीढ़ी, कुछ परिवारों ने हिम्मत करके शाकाहार किया है–पीढ़ी दर पीढ़ी। क्योंकि एक दिन में कुछ बदलाहट शरीर में नहीं होती; शरीर का जाल लंबा है। लेकिन अगर हजारों पीढ़ियों तक एक परिवार शाकाहार पर जीया है, तो शरीर में आमूल परिवर्तन हो जाते हैं; अगर मांसाहार पर जीया है तो भी आमूल परिवर्तन हो जाते हैं; क्योंकि निरंतर छनते, छनते, छनते... शुद्धतम होते–होते भोजन बीज–कोष में प्रवेश कर जाता है। और जब बीज–कोष में प्रवेश कर जाता है तभी 'ट्रान्सपेरेन्सी', पारदर्शी स्थिति पैदा होती है। अनूठा प्रयोग था यह कि हम भोजन को पूरा बदलकर पूरे शरीर को बदल लें। इतनी बात से वैज्ञानिक भी राजी है कि शरीर में जो भी हम डालते हैं, वह शरीर को बदलता है।

भोजन के थोड़े से फर्क से बुद्धि क्षीण हो जाती है, या प्रगाढ़ हो जाती है; क्योंकि बुद्धि के लिए कुछ अनिवार्य भोजन के तत्व हैं जो पहुंचने चाहिए... अगर वे न पहुंचे तो बुद्धि क्षीण हो जाती है। बुद्धि की क्षमता भी होगी, तो भी बुद्धि प्रगट नहीं हो पाएगी, क्योंकि प्रगट करने के लिए जो अन्नमय कोष की सहायता चाहिए वह नहीं मिल रही। एक बहुत छोटा सा तत्व आदमी के तृतीय नेत्र में–जो मैंने कल कहा–पिनीयल ग्लैंड में पैदा होता है, अगर वह पैदा न हो तो बुद्धि एकदम क्षीण हो जाती है।

असल में जब एक आदमी शराब पीता है तो बुद्धि तक उसका कोई प्रभाव नहीं जाता; वस्तुतः, चेतना तक शराब नहीं जाती; लेकिन पिनीयल ग्लैंड में जो रस पैदा होते हैं, वे पैदा होने बंद हो जाते हैं; बस, बुद्धि खो जाती है, बुद्धि पर कोई परिणाम नहीं होता, लेकिन अन्नमय कोष में जो हिस्सा है, जिससे बुद्धि का संबंध है, वह हिस्सा सो जाता है।

अभी पश्चिम से एक पागलपन सारी दुनिया में फैलना शुरु हुआ है–'लिसर्जिक एसिड' का; और उस तरह की चीजों का। वैज्ञानिक कहते हैं कि 'लिसर्जिक एसिड', या 'मेस्कलीन', या उस तरह की चीजें भी सिर्फ 'पीनियल ग्लैंड' पर असर करती हैं। और 'पीनियल ग्लैंड' में जिस तत्व के पैदा होने से मनुष्य की बुद्धि होती है, विवेक होता है, वह तत्व पैदा होना बंद हो जाता है, रुक जाता है, अवरुद्ध हो जाता है। इसलिए कुछ आश्चर्य न होगा कि पश्चिम की जो नयी पीढ़ी 'एल.एस.डी.' का प्रयोग कर रही है, वह पश्चिम की पूरी सभ्यता को वापस जमीन पर गिरा दे; क्योंकि वह पूरी सभ्यता जिस बुद्धि के आधार पर खड़ी है, उस बुद्धि को नुकसान पहुंचा रही है।

निश्चित ही उस बुद्धि के गिर जाने से आदमी एक तरह के बंधन से मुक्त हो जाता है; क्योंकि विवेक का भी एक बंधन है; और विवेक की एक मर्यादा है, उससे मुक्त हो जाता है। उस मर्यादा की मुक्ति को अगर किसी ने स्वतंत्रता समझा तो बड़ी भूल है;

क्योंकि स्वतंत्रता दो तरह से फलित होती है : मर्यादा के पार हो जाने से भी फलित होती है, मर्यादा के नीचे गिर जाने से भी फलित होती है। मर्यादा से नीचे गिरकर जो स्वतंत्रता है, वह सिर्फ पागलपन है; मर्यादा के पार उठकर जो स्वतंत्रता है–वही... वही परम अवस्था है।

तो बहुत सस्ता मोक्ष खरीदा जा रहा है 'केमिकल्स' से। पर वह भी रासायनिक तत्व... भोजन है। यह जो हमारा शरीर है, यह जो पहली हमारी पर्त है, यह भोजन की ही पर्त है। इसलिए भोजन का विवेक महत्वपूर्ण है–सिर्फ सुपरस्टिशन नहीं, सिर्फ अंधविश्वास नहीं। एक विशुद्ध शाकाहारी शरीर को एक तरह की लोच देता है, एक 'फ्लेग्जिबिलिटी' देता है, जो मांसाहारी के शरीर को उपलब्ध नहीं होती। मांसाहारी के शरीर की पर्त धीरे–धीरे ठीक जानवरों जैसी हो जाती है।

यह बहुत मजे की बात है कि आप जिन जानवरों का मांस लेते हैं आपको ख्याल नहीं कि वह मांस उन जानवरों की शरीर की निर्मिति है, शरीर का 'कॉन्सटिट्यूएंट' हिस्सा है। उस मांस को आप सीधा अपने शरीर में ले जाते हैं, तो आप धीरे–धीरे अपने शरीर को उन जानवरों जैसी व्यवस्था भीतर से देना शुरु कर देते हैं। वह व्यवस्था आपको प्रभावित करेगी। यह व्यवस्था आपके शरीर को ठोस पत्थर की दीवार बना देगी। शायद जानवर के भीतर जो बुद्धि का विकास नहीं हुआ है, उसका बहुत कुछ कारण उसका अन्नमय कोष है। आपके भीतर जो विकसित विवेक है, वह आप, जानवर का शरीर अपने पास... आसपास इकट्ठा करके नीचे गिरा लेंगे।

और बहुत छोटी सी बातें क्रांतिकारी परिवर्तन करती हैं; जिनका हमें अंदाज नहीं होता, इतनी छोटी बातें। भोजन छोटी घटना नहीं है। बड़ी छोटी घटनाएं फर्क लाती हैं। भोजन छोटी बात नहीं है, बड़ी बात है; और बड़ी बात इसलिए है कि उससे हमारा पूरा शरीर ही निर्मित है।

जैसे, उदाहरण के लिए : हम जो भी अपने शरीर में डाल रहे हैं, उसका अपना गुण है। वह गुण हमारे शरीर का गुण आज नहीं कल हो जाएगा। जो आदमी शराब अपने शरीर में निरंतर डाले चला जा रहा है, अचानक उससे हम कहें–शराब छोड़ दो, वह नहीं छोड़ पाता, क्या कारण है? अब शराब वह ही नहीं पीता, उसके शरीर का अणु–अणु शराब पीने लगा है–ईच एंड एवरी सेल। अब उसके बस के बाहर है, उसके पूरे शरीर का रोआं–रोआं शराब पीने लगा है... एक–एक कोष। आदमी के शरीर में कोई सात करोड़ कोष हैं, एक–एक कोष शराब पीने लगा, एक–एक कोष शराबी हो गया। इसी का नाम 'एडिक्शन' है। और तो कोई 'एडिक्शन' होता नहीं।

हम कहते हैं कि एक आदमी 'एडिक्टेड' हो गया, उसका केवल मतलब इतना है कि अब वह नहीं पीता, अब पूरे शरीर का कोना–कोना कहता है : अब पीयो, नहीं तो

कुछ नहीं हो सकता–चल ही नहीं सकते, उठ ही नहीं सकते, बैठ ही नहीं सकते। अब बड़ा मुश्किल है छोड़ना; क्योंकि सात करोड़ जीवन भीतर कह रहे हैं, पीयो। सात करोड़ जीवित सेल। आप एक बड़ी भीड़ हैं... एक बड़ा नगर; आप अकेले नहीं हैं, आप उस बड़े नगर में रह रहे हैं।

इसलिए हमने जो शब्द चुना था आत्मा के लिए, वह था 'पुरुष'। पुरुष का अर्थ होता है, एक बड़े पुरम के बीच रहनेवाला; एक बड़े नगर के बीच में रहनेवाला। पुरुष! एक बड़ी नगरी है हर आदमी के शरीर में–बड़ी! छोटी नगरी नहीं है। करोड़ों–करोड़ों जीवन आपके आसपास हैं। और जब उनकी सबकी मांग होती है, तो फिर आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं, उनकी मांग पूरी करनी पड़ती है; फिर आप बाहर भी निकलना चाहें तो निकल नहीं सकते।

तो आप क्या भोजन दे रहे हैं, वह इन सात करोड़ कोषों को निर्मित कर रहा है, इनकी मांग निर्मित कर रहा है। फिर आपको इनके साथ बंधकर जीना पड़ता है। और यह बंधन भीतर जाने में बाधा बन जाता है।

सात्विक भोजन हम उसे कहते रहे हैं, जिससे 'एडिक्शन' पैदा न हो–ऐसा भोजन, जो सिर्फ शरीर को ऊर्जा देता हो, नशा न देता हो... इस फर्क को ठीक से समझ लें... जो शरीर को ऊर्जा देता हो, एनर्जी देता हो, लेकिन नशा न देता हो; जो शरीर की मांग–पूर्ति करता हो, लेकिन शरीर में पागलपन पैदा न करता हो; जो शरीर की जरूरत पूरी करता हो, लेकिन शरीर का विलास न बन जाता हो। जिस मात्रा में कोई चीज शरीर के लिए मूर्च्छा पैदा करती है, उसी मात्रा में आपका अन्नमय कोष विकृत हो जाता है। पर हम इतना चिंतन नहीं करते, विचार नहीं करते; हम क्या खा रहे हैं, इसकी हमें कोई फिक्र नहीं; हम क्या पी रहे हैं, हमें इसकी कोई फिक्र नहीं; भीड़ जो कर रही है, हम भी किये चले जाते हैं।

भोजन की, आहार के प्रकार की चिंतना में भारत ने जैसी गति की, किसी और देश ने कभी की नहीं; क्योंकि शायद भारत को ही पहले दफे यह ख्याल आना शुरु हुआ... कि अगर इस शरीर के भीतर जाना है तो इस शरीर को बदलना होगा; जैसा यह शरीर है, यह काफी नहीं है।

स्वेच्छा से, आत्मक्रांति के लिए, आप अपने अन्न की व्यवस्था को, आहार की व्यवस्था को बदल डालें। धीरे–धीरे... धीरे–धीरे आपका शरीर उन जहरों से मुक्त हो जाता है जो आपको पाप में ले जाते हैं; उन उत्तेजनाओं से मुक्त हो जाता है जो आपको बाहर भगाती हैं।

**–ओशो, सर्वसार उपनिषद्, प्रवचन–6**

# सम्यक निद्रा:
# न ज्यादा, न कम

- सम्यक निद्रा: न ज्यादा, न कम
- रात्रि ध्यान का प्रयोग

# सम्यक निद्राः न ज्यादा, न कम

**शरीर रूपी जीवन–वीणा से संगीत उठ सके इसका पहला सूत्र है, सम्यक आहार। दूसरा सूत्र है, सम्यक व्यायाम। और तीसरा सूत्र है, सम्यक निद्रा। जो व्यक्ति ठीक–ठीक श्रम से, ठीक–ठीक आहार से, और ठीक–ठीक निद्रा से वंचित हो जाता है, वह कभी भी नाभि–केंद्रित नहीं हो सकता है। और इन तीनों ही चीजों से मनुष्य–जाति वंचित हो गयी है!**

अंतर्यात्रा प्रवचनमाला में ओशो समझाते हैं––

तीसरी बात है सम्यक निद्रा। भोजन अव्यवस्थित हुआ है, श्रम अराजक हो गया है और निद्रा की तो बिल्कुल ही हत्या की गई। मनुष्य जाति की सभ्यता के विकास में सबसे ज्यादा जिस चीज को हानि पहुंची है वो निद्रा है। जिस दिन से आदमी ने प्रकाश की ईजाद की उसी दिन से निद्रा के साथ उपद्रव शुरू हो गया है। और फिर जैसे–जैसे आदमी के हाथ में साधन आते गए उसे ऐसा लगने लगा कि निद्रा एक अनावश्यक बात है। समय खराब होता है, जितनी देर हम नींद में रहते हैं, वह समय फिजूल जाता है। तो जितनी कम नींद से चल जाये उतना अच्छा। क्योंकि नींद का भी कोई जीवन की गहरी प्रक्रियाओं में दान है, कन्ट्रीब्यूशन है, ये तो ख्याल में नहीं आता। नींद का समय तो व्यर्थ गया। तो जितने कम समय सो लें उतना अच्छा। जितने जल्दी ये नींद से निपटारा हो जाये उतना अच्छा।

एक तरफ तो इस तरह के लोग थे जिन्होंने नींद को कम करने की दिशा शुरू की। और दूसरी तरफ साधु–सन्यासी थे। उनको ऐसा लगा कि नींद जो है, मूर्च्छा जो है ये शायद आत्मज्ञान की या आत्मवस्था की उलटी अवस्था है। तो निद्रा लेना ठीक नहीं है। तो जितनी कम नींद ली जाये उतना ही अच्छा है। साधुओं को एक और कठिनाई थी कि उन्होंने बहुत से सप्रेशन इकट्ठे कर लिए, बहुत से दमन इकट्ठे कर लिए, नींद में उनके दमन उठ के दिखाई पड़ने लगे, सपनों में आने लगे। तो नींद से भय पैदा हो गया। क्योंकि नींद में वे सारी बातें होने लगी जिनको दिन में उन्होंने अपने से दूर रखा है। जिन स्त्रियों को छोड़ के वे जंगल में भाग आए, नींद में वे स्त्रियां मौजूद होने लगीं, वे सपनों में दिखाई पड़ने लगीं। जिस धन को, जिस यश को छोड़ के वे चले आए थे, वह सपनों में उनका पीछा करने लगा। तो उन्हें ऐसा लगा कि नींद तो बड़ी

खतरनाक है, हमारे वश के बाहर है। जितनी कम नींद हो उतना अच्छा। तो साधुओं ने सारी दुनिया में एक हवा पैदा की, कि नींद कुछ गैर–आध्यात्मिक, अन–स्पिरिचुअल घटना है। यह अत्यंत मूढ़तापूर्ण बात है।

एक तरफ वे लोग थे जिन्होंने नींद का विरोध किया– क्योंकि उन्हें ऐसा लगा फिजूल है नींद, इतनी सोने की क्या जरूरत है? जितनी देर हम जागेंगे उतना ही ठीक है। क्योंकि गणित और हिसाब लगाने वाले, स्टैटिक्स जोड़ने वाले लोग बड़े अदभुत होते हैं! उन्होंने हिसाब लगा लिया कि एक आदमी आठ घंटे सोता है तो समझो कि दिन का तिहाई हिस्सा तो सोने में चला गया। और एक आदमी अगर साठ साल जीता है तो बीस साल तो फिजूल गए, बीस साल बिल्कुल बेकार चले गए। साठ साल की उम्र चालीस साल की ही रह गई। फिर उन्होंने और हिसाब लगा लिया कि एक आदमी कितनी देर में खाना खाता है, कितनी देर में कपड़े पहनता है, कितनी देर में दाढ़ी बनाता है, कितनी देर स्नान में लगाता है। सब हिसाब लगाकर उन्होंने बताया कि इस प्रकार सारी जिन्दगी बेकार चली जाती है।

वे हर चीज का समय घटाते चले गए... पता चला कि दिखाई पड़ता है कि आदमी साठ साल जीआ, बीस साल नींद में चले गए, कुछ साल स्नान करने में चले गए, कुछ खाना खाने में चले गए, कुछ अखबार पढ़ने में चले गए। सब बेकार चला गया। जिन्दगी में कुछ बचता नहीं। उन्होंने एक घबराहट पैदा कर दी कि जितनी जिन्दगी बचानी हो उतना इनमें कटौती करो। नींद सबसे ज्यादा समय ले लेती है आदमी का, तो इसमें कटौती कर दो। एक उन्होंने कटौती करवाई और सारी दुनिया में एक नींद विरोधी हवा फैला दी।

दूसरी तरफ साधु–संन्यासियों ने नींद को अन–स्पिरिचुअल कह दिया, कि गैर–आध्यात्मिक है। तो कम से कम सोओ। वो उतना ज्यादा साधु है जो जितना कम सोता है। बिल्कुल न सोओ तो परम साधु! इन दो बातों ने नींद की हत्या की। और नींद की हत्या के साथ ही मनुष्य के जीवन के सारे गहरे केन्द्र हिल गए, अव्यवस्थित हो गए, अपरूटेड हो गए। हमें पता ही न चला कि मनुष्य के जीवन में जो इतना अस्वास्थ आया, इतना असंतुलन आया; इसके पीछे निद्रा की कमी काम कर गई। जो आदमी ठीक से नहीं सो पाता वो आदमी ठीक से जी ही नहीं सकता।

निद्रा फिजूल नहीं हैं। आठ घंटे व्यर्थ नहीं जा रहे। बल्कि आठ घंटे आप सोते हैं इसीलिए आप सोलह घंटे जाग पाते हैं। नहीं तो आप सोलह घंटे जाग नहीं सकते। वो आठ घंटों में जीवन–ऊर्जा इकट्ठी होती है, प्राण पुनर्जीवित होते हैं; आपके मस्तिष्क के और हृदय के केन्द्र शांत हो जाते हैं और नाभि के केन्द्र से जीवन चलता है आठ घंटे तक। निद्रा में आप वापिस प्रकृति के और परमात्मा के साथ एक हो गए होते हैं इसलिए प्राण पुनर्जीवित होते हैं।

अगर किसी आदमी को सताना हो, टॉर्चर करना हो तो उसे नींद से रोकना सबसे बढ़िया तरकीब है– हजारों सालों में ईजाद की हुई। उससे आगे नहीं बढ़ा जा सका अब तक। अभी भी रूस में या हिटलर ने जर्मनी में जिन कैदियों को सताया उनमें सबसे सताने की जो तरकीब काम में लाई गई वो नींद। सोने मत दो किसी कैदी को। बस उसकी जिन्दगी में इतना टॉर्चर पैदा हो जाता है जिसका हिसाब लगाना संभव नहीं! तो कैदियों के पास आदमी लगा छोड़े थे। सबसे पहले चीनियों ने ईजाद की थी ये बात– आज से दो हजार साल पहले कि वो आदमी को सोने नहीं देते थे जिसको सताना है। उन्होंने बड़ी सस्ती तरकीब निकाली थी। एक कोठरी में उसको खड़ा कर देते थे। कोठरी इतनी सकरी होती थी कि वो हिलडुल नहीं सकता था, न बैठ सकता था, न लेट सकता था और उसके सिर पर बूंद–बूंद पानी टपकाते रहते ऊपर से। तो टप, टप, टप... वो उसके सिर पर पड़ता रहता था। वो हिलडुल सकता नहीं, बैठ सकता नहीं, लेट सकता नहीं। ज्यादा से ज्यादा बारह घंटे, सोलह घंटे, अठारह घंटे और आदमी चिल्लाने लगता, चीखने लगता कि मैं मर जाऊंगा, मुझे बचाओ, मुझे बाहर निकालो। वो कहते फिर बता दो जो बातें तुम छिपा रहे हो। तीन दिन में ज्यादा से ज्यादा साहस वाला आदमी भी थक जाता।

जर्मनी में हिटलर ने और स्टेलिन ने भी रूस में यही किया लाखों लोगों के साथ कि उनको जगाए रखो, उनको सोने मत दो। इससे ज्यादा टॉर्चर किया नहीं जा सकता। किसी आदमी की हत्या कर दो, उस वक्त इतनी पीड़ा नहीं होती जितनी उस आदमी को न सोने दो। क्योंकि सो कर ही वो जो खोया है उसे वापिस पाता है। और अगर न सो पाया, न सो पाया, न सो पाया... तो खोता चला जाता है और वापिस कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। वो रिक्त और खाली हो जाता है, एंप्टी हो जाता है।

हम सब लोग करीब–करीब खाली जैसी हालत में हैं। क्योंकि उपलब्ध करने के द्वार हमारे बंद और खोने के द्वार हमारे बढ़ते चले गए। नींद वापिस लौटानी जरूरी है। और अगर सौ, दो सौ वर्षों के लिए सारी दुनिया में कोई कानूनी व्यवस्था की जा सके कि आदमी को मजबूरी में सो ही जाना पड़े, कोई और उपाय न रहे तो मनुष्य जाति के मानसिक स्वास्थ्य के लिए इससे बड़ा कोई कदम नहीं उठाया जा सकेगा।

साधु के लिए तो बहुत ध्यान देना जरूरी है कि वो ठीक से सोए और काफी सोए।

ये भी समझ लेना जरूरी है कि सम्यक निद्रा हर आदमी के लिए अलग होगी, सभी आदमियों के लिए बराबर नहीं होगी। क्योंकि हर आदमी के शरीर की जरूरत अलग है, उम्र की जरूरत अलग है और कई दूसरे तत्व हैं जिनकी जरूरतें अलग हैं। बच्चा जब मां के पेट में होता है वो चौबीस घंटे सोता है। क्योंकि उस वक्त बच्चे के सब स्नायु बन रहे होते हैं। पूरी नींद की जरूरत है। चौबीस घंटे सोया रहेगा तो ही ठीक से शरीर उसका विकसित हो पाएगा। जो बच्चे लंगड़े–लूले पैदा हो जाते हैं या काने या

अंधे; हो सकता है बीच–बीच में जग जाते हों या और कोई गड़बड़ हो जाती हो। हो सकता है किसी दिन विज्ञान इस बात को समझ पाए कि जो बच्चे मां के पेट में ही किसी तरह से जग जाते हैं वो बच्चे अपंग हो जाएंगे, उसके कोई अंग विकसित होने से वंचित रह जाएंगे। चौबीस घंटे पेट में सोया रहना जरूरी है क्योंकि पूरा शरीर निर्मित होता है, पूरा शरीर विकसित होता है। नींद बहुत गहरी जरूरी है तभी शरीर की सारी क्रियाएं काम कर सकती हैं।

फिर बच्चा पैदा होता है, तो वह बीस घंटे सोता है। अभी उसका शरीर बन रहा है। फिर वह अठारह घंटे सोता है, फिर चौदह घंटे सोता है। अभी उसका शरीर बन रहा है। जैसे–जैसे उसका शरीर परिपक्व होता चला जाता है, वैसे–वैसे नींद कम हो जाती है। आखिर में वह आठ घंटे और छह घंटे के करीब थिर हो जाती है। फिर बूढ़े आदमी की नींद कम हो जाती है और पांच घंटे, चार घंटे भी हो जाती है, तीन घंटे भी हो जाती है, क्योंकि बूढ़े आदमी के शरीर में फिर बनने का उपक्रम बंद हो जाता है। फिर उसे वापिस रोज उतनी नींद की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि अब उसकी मृत्यु करीब आ रही है। अगर वह उतना ही सोता रहे जितना बच्चा सोता है तो बूढ़ा आदमी भी मर नहीं सकता है, मरना मुश्किल हो जायेगा।

मरने के लिए जरूरी है कि नींद कम होती चली जाये। और जीवन के लिए जरूरी है कि नींद गहरी हो।

इसलिए बूढ़ा आदमी क्रमशः कम सोने लगता है। बच्चा ज्यादा सोता है। लेकिन अगर बूढ़े भी बच्चों के साथ वही व्यवहार करें जो खुद के साथ करते हैं तो खतरा हो जाता है। और बूढ़े अकसर करते हैं। बूढ़े बच्चों को भी बूढ़ा समझकर व्यवहार करते हैं। उनको भी उठाते हैं कि उठो! तीन बज गये, चार बज गये, उठो! उनको पता नहीं कि तुम बूढ़े हो, तुम चार बजे उठ गये हो, यह बिल्कुल ठीक है। लेकिन बच्चे चार बजे नहीं उठ सकते और उठाना गलत है। बच्चे की शरीर की प्रक्रियाओं को नुकसान पहुंचाना है। बच्चे के साथ बहुत अहितकर है यह बात।

एक बच्चा मुझसे कह रहा था कि मेरी मां भी बड़ी अजीब है। जब रात को मुझे नींद नहीं आती है, तब जबरदस्ती मुझे सुलाती है और जब मुझे नींद आती है सुबह, तब जबरदस्ती मुझे उठाती है। मेरी कुछ समझ में नहीं आता है कि जब मुझे नींद नहीं आती है, तब मुझे सुलाया जाता है, और जब मुझे नींद आती है तब मुझे उठाया जाता है! वह मुझसे बोला कि मेरी मां को आप समझा दें, दुनिया को आप समझाते हैं। मेरी मां की कुछ समझ में आ जाये, यह उल्टा ही क्यों करती है?

बच्चों के साथ बूढ़ों जैसा व्यवहार निरंतर होता है, हमें ख्याल ही नहीं है। और फिर किताबों में लिखे हुए, बंधे हुए सूत्र हैं, स्टैंडर्ड सूत्र हैं, उनके अनुसार आदमी जीने लगता है!

आपको शायद पता न हो, नवीनतम खोजबीन यह कहती है कि हर आदमी के लिए उठने का समय भी एक नहीं हो सकता। जैसा हमेशा कहा जाता है कि पांच बजे उठ आना सबके लिए हितकर है। यह बात बिल्कुल ही अवैज्ञानिक और गलत है। सबके हित में नहीं है, कुछ लोगों के हित में हो सकता है, कुछ लोगों के अहित में हो सकता है।

चौबीस घंटे में कोई तीन घंटे के लिए शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है हर आदमी का। और जिन तीन घंटों में तापमान नीचे गिरता है, वे ही तीन घंटे उसके लिये सबसे गहरी नींद के घंटे होते हैं। अगर उन तीन घंटों में उसे उठा दिया जाये तो उसका दिन भर खराब हो जायेगा। उसकी सारी ऊर्जा अस्त–व्यस्त हो जायेगी।

आमतौर से ये घंटे दो और पांच के बीच में होते हैं रात को। अधिकतम लोगों के ये तीन घंटे रात के दो बजे से लेकर और पांच बजे के बीच में होते हैं, लेकिन सभी के नहीं होते हैं। किन्हीं का छह बजे तक तापमान नीचे होता है। किन्हीं का सात बजे तक तापमान नीचे होता है। किन्हीं का चार बजे तापमान वापस लौटना शुरू हो जाता है। तो यह तापमान के बीच में अगर कोई उठ जायेगा तो उसके चौबीस घंटे खराब होंगे और दुष्परिणाम होंगे। जब उसका तापमान फिर से उठने लगता है, गिरा हुआ तापमान वापस उठने लगता है, तभी उठने का वक्त है।

आमतौर से यह ठीक है कि आदमी सूरज के उगने के साथ उठ आये, क्योंकि सूरज के उगने के साथ ही सबका तापमान बढ़ना शुरू हो जाता है। लेकिन यह नियम है। कुछ इसके अपवाद होते हैं, जिनके लिए हो सकता है कि सूरज के थोड़ी देर बाद तक भी लेटा रहना जरूरी हो, क्योंकि हर आदमी के शरीर का तापमान अलग क्रम से, अलग मात्रा से उठता है। तो हर आदमी को यह देख लेना चाहिए कि जितनी देर सोने के बाद और जग उठने के बाद मुझे स्वस्थ मालूम होता है, वही मेरे लिए नियम है––चाहे शास्त्र कुछ भी कहते हों, गुरु कुछ भी बताते हों, किसी की सुनने की जरा भी जरूरत नहीं है।

तो सम्यक–निद्रा के लिए जितनी ज्यादा से ज्यादा गहरी और लंबी नींद ले सकें, वह लेना उचित है। लेकिन नींद लेने को कह रहा हूं, बिस्तर पर पड़े रहने को नहीं कह रहा हूं। बिस्तर पर पड़े रहना नींद नहीं है। और जब आपके लिए स्वास्थ्यपूर्ण मालूम पड़े, तभी उठना आपके लिए नियम है।

आमतौर से सूरज के उगने के साथ यह घटना घटनी चाहिए। लेकिन हो सकता है कुछ को न घटती हो, तो उसमें घबराने की, चिंतित होने की और अपने आपको पापी समझने की और नर्क चले जाने के डर की, कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि कई जल्दी उठने वाले भी नर्क चले जाते हैं और कई देर से उठने वाले भी स्वर्ग में निवास कर रहे हैं। कोई इससे कोई संबंध आध्यात्मिकता और गैर–आध्यात्मिकता का नहीं है। लेकिन

सम्यक–निद्रा का, राइट–स्लीप का जरूर संबंध है। तो वह हर व्यक्ति को अपना आयोजन खोज लेना चाहिये। एक तीन महीने तक हर व्यक्ति को श्रम पर, निद्रा पर और आहार पर प्रयोग करने चाहिए, और देखना चाहिए कि मेरे लिए सर्वाधिक स्वास्थ्यपूर्ण, सर्वाधिक शांतिपूर्ण, सर्वाधिक आनंदपूर्ण कौन–से सूत्र हो सकते हैं।

और प्रत्येक व्यक्ति को अपने सूत्र खोज लेने चाहिए। कोई दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं, इसलिए कोई सामान्य नियम किसी के लिए कभी लागू नहीं होता है। और जब भी कोई सामान्य नियम लागू करने की कोशिश करता है तो उसके दुष्परिणाम होते हैं। एक–एक व्यक्ति इंडीवीजुअल है। एक–एक व्यक्ति अनूठा, अद्वितीय और यूनीक है। उस जैसा वही है, उस जैसा कोई दूसरा आदमी जमीन पर कहीं भी नहीं है। इसलिए कोई नियम उसके लिए नियम नहीं हो सकता है, जब तक कि वह अपनी ही जीवन–प्रक्रिया के नियम को न खोज ले।

तो किताबें, शास्त्र और गुरु खतरनाक सिद्ध होते हैं, क्योंकि उनके पास रेडीमेड फार्मूला होते हैं, तैयार फार्मूला होते हैं। वे बता देते हैं कि इतने बजे उठना चाहिए, यह खाना चाहिए, यह नहीं खाना चाहिए, ऐसा सोना चाहिए, ऐसा करना चाहिए। यह रेडीमेड फार्मूला खतरनाक है। वे समझने के लिए ठीक हैं, लेकिन हर आदमी को अपने जीवन में, अपनी व्यवस्था खोजनी पड़ती है।

हर आदमी को अपनी साधना खोजनी पड़ती है। हर आदमी को साधना का पथ स्वयं चलकर निर्मित करना होता है। कोई राजपथ नहीं है जो बना–बनाया है, जिस पर आप गये और चलने लगे। ऐसा कहीं कोई राजपथ नहीं है। साधना बिल्कुल पगडंडी की भांति है और वह भी ऐसी पगडंडी की भांति, जो पहले से तैयार नहीं है; आप चलते हैं, जितना चलते हैं, उतनी ही तैयार होती है। और जितना आप चल लेते हैं, उतना आगे की समझ बढ़ जाती है और आगे के लिए निर्मित हो जाती है।

तो यह तीन सूत्र और ध्यान में ले लेने जरूरी हैं––सम्यक आहार, सम्यक श्रम और सम्यक निद्रा। अगर इन तीन सूत्रों पर ठीक से––ठीक–ठीक इन सूत्रों पर जीवन की गति हो तो वह जिसे मैं नाभि–केंद्र कह रहा हूं, जो कि द्वार है आत्मिक जीवन का, उसके खुलने की संभावना बहुत बढ़ जाती है। और वह खुल जाये, उस द्वार के निकट हम पहुंच जायें तो एक बहुत ही अभिनव घटना घटती है, जिसका हमें सामान्य जीवन में कोई भी अनुभव नहीं है।

सांझ को मैं यहां से गया और एक मित्र मिले और उन्होंने कहा कि आप कहते हैं, वह तो ठीक है, लेकिन जब तक हमें संतोष न मिल जाये, तब तक बड़ा मुश्किल है। मैंने उनसे कुछ कहा नहीं। वे शायद सोचते हों कि मेरे कहने से संतोष मिल जायेगा तो बिल्कुल गलती में हैं और समय खराब कर रहे हैं। अपनी तरफ से जो मुझे मेहनत करनी है, वह मैं कर देता हूं। लेकिन आपकी तरफ उससे बहुत बड़ी मेहनत शेष रह

जाती है। वह अगर आप नहीं करते हैं तो मेरे कहने का कोई प्रयोजन नहीं, कोई अर्थ नहीं है।

मुझे निरंतर लोग कहते हैं कि हम यह चाहते हैं––शांति चाहते हैं, आनंद चाहते हैं, आत्मा चाहते हैं! आप तो सब चाहते हैं, लेकिन चाहने से जगत में कुछ भी नहीं मिलता है। अकेली चाह बिल्कुल इंपोटेंट है, बिल्कुल नपुंसक है, उसमें कोई शक्ति नहीं है। चाह के पीछे संकल्प और श्रम भी तो चाहिए। आप चाहते हैं यह तो ठीक है, लेकिन उस चाह के लिए आप कितना श्रम करते हैं, उस चाह के लिए आप कितने कदम उठाते हैं––आप क्या करते हैं अपनी चाह के लिए?

मेरे हिसाब में तो आप चाहते हैं, इसका एक ही सबूत है कि आप उस चाह के लिए क्या करके बताते हैं। नहीं तो कोई सबूत नहीं है कि आप चाहते भी हैं। जब कोई आदमी किसी चीज को चाहता है तो उसके लिए कुछ श्रम करके दिखाता है। वह श्रम ही इस बात की गवाही होता है कि उस आदमी ने चाहा कुछ। लेकिन आप कहते हैं कि चाहते तो हम हैं, लेकिन श्रम, उसके लिए कोई संकल्प, वह सब हमारे ख्याल में नहीं है।

अंत में एक बात और दोहरा दूं। तीन केंद्रों की मैंने बात कही है––बुद्धि का केंद्र मस्तिष्क, भाव का केंद्र हृदय। और नाभि? नाभि किसका केंद्र है? विचार का केंद्र है बुद्धि, भाव का केंद्र है हृदय। नाभि किस का केंद्र है?––नाभि संकल्प का केंद्र है, विल पावर का केंद्र है। नाभि जितनी सजग होगी, उतना ही संकल्प तीव्र होगा, विल फोर्स तीव्र होगा। उतना ही करने की दृढ़ता और बल और आत्म–ऊर्जा उपलब्ध होगी।

या इससे उल्टा सोच लें। जितना आप संकल्प करेंगे, जितना करने का बल लेंगे, उतनी ही आपकी नाभि का केंद्र भी विकसित होगा। ये दोनों अंतर्निभर हैं, ये एक–दूसरे से संबंधित बातें हैं। जितना आप विचार करेंगे, उतनी बुद्धि विकसित होगी। जितना आप प्रेम करेंगे, उतना हृदय विकसित होगा। जितना आप संकल्प करेंगे, उतना आपकी––आपकी अंतर ऊर्जा का केंद्रीय चक्र, वह जो केंद्रीय कमल है नाभि का, वह विकसित होगा।

एक छोटी–सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।

एक फकीर––अंधा फकीर एक गांव में भीख मांग रहा था। उसके पास तो आंखें नहीं थीं, भीख मांगते हुए वह मस्जिद के द्वार पर पहुंच गया। मस्जिद के द्वार पर उसने हाथ फैलाया और मांगा कि मुझे कुछ मिल जाये, मैं भूखा हूं। पास से निकलते हुए लोगों ने कहा पागल! यह ऐसा घर नहीं है, जहां कोई भीख मिल सकेगी। यह तो मस्जिद है, यह तो मंदिर है। यहां कोई रहता ही नहीं है, तू कहां भीख मांग रहा है, यह तो मस्जिद है, यहां कुछ भी नहीं मिलेगा, और कहीं आगे बढ़।

वह फकीर हंसने लगा। और उसने कहा कि अगर भगवान के घर से कुछ नहीं मिलेगा तो फिर किस घर से मिलेगा? यह तो अंतिम घर आ गया, भूल से मैं अंतिम मकान के सामने आ गया। अब यहां से कैसे हटूं, हटूं तो कहां जाऊं, क्योंकि इसके आगे कोई घर नहीं है। अब मैं यहीं रुक जाऊंगा और यहां से लेकर ही हटूंगा।

लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, पागल, यहां कोई रहता ही नहीं, तुझे देगा कौन?

उसने कहा, यह सवाल नहीं है। लेकिन भगवान के घर से अगर खाली हाथ लौटना पड़ेगा, तो फिर हाथ कहां भरे जा सकेंगे। फिर तो कहीं हाथ नहीं भरे जा सकेंगे। अब आ ही गया हूं इस द्वार पर तो हाथ भर के ही लौटूंगा।

वह फकीर वहीं रुक गया। और एक वर्ष तक उसके हाथ वैसे ही फैले रहे और उसके प्राण वैसे ही पुकार करते रहे। और गांव के लोग उसे पागल कहने लगे। और गांव के लोग उससे कहने लगे कि तू बिल्कुल नासमझ है, तू कहां हाथ फैलाये हुए बैठा है? यहां कुछ भी मिलने को नहीं है। लेकिन वह फकीर भी एक था, वह बैठा ही रहा, बैठा ही रहा, और बैठा ही रहा!

और एक वर्ष बीत जाने के बाद उस गांव के लोगों ने देखा कि शायद उस फकीर को कुछ मिल गया है। उसके चेहरे की रौनक बदल गयी है। उसके आसपास एक शांति की हवा उठने लगी, उसके आसपास एक रोशनी खड़ी हो गयी, एक सुगंध बहने लगी। वह आदमी नाचने लगा। जिसकी आंखों में आंसू थे, वहां मुस्कुराहट आ गयी। वह जैसे मुर्दा हो गया था। इस एक वर्ष में उसके प्राण फिर से खिल उठे, वह नाचने लगा।

लोगों ने पूछा कि क्या तुम्हें मिल गया?

उसने कहा कि यह असंभव था कि न मिलता, क्योंकि मैंने तय ही कर लिया था कि या तो मिलेगा और या फिर मैं नहीं रह जाऊंगा। जो मैंने चाहा था वह मुझे उपलब्ध हो गया है। और मैंने तो शरीर के लिए रोटी चाही थी और मुझे आत्मा के लिए रोटी भी मिल गयी है। और मैंने तो शरीर की भूख मिटानी चाही थी और मेरी आत्मा की भूख भी मिट गयी है। लेकिन वे पूछने लगे कि तुझे मिला कैसे, तूने कैसे पाया?

उसने कहा, मैंने कुछ भी नहीं किया, लेकिन मैंने अपनी प्यास के पीछे अपने पूरे संकल्प को खड़ा कर दिया। और मैंने कहा अगर प्यास है तो उसके साथ पूरा संकल्प भी चाहिए। मेरा पूरा संकल्प साथ था, मेरी प्यास पूरी हो गयी। मैं उस जगह पहुंच गया, जहां वह पानी मिल जाता है, जिसे पीने से फिर कोई प्यास नहीं रह जाती।

संकल्प का अर्थ हैः जो हम चाहते हैं, जो हमें ठीक दिखायी पड़ता है, जो हमें मालूम होता है कि रास्ता है, उस पर चलने का आत्मबल भी जुटाना और साहस जुटाना और दृढ़ता जुटानी। अगर वह नहीं होती तो मेरे कहने से या किसी के कहने से कुछ भी नहीं हो सकता है। और अगर मेरे कहने से होता, तब तो बड़ी आसान बात

थीं। इस दुनिया में बहुत लोग हो चुके हैं, जिन्होंने बहुत अच्छी बातें कही हैं। अब तक सारी दुनिया को सब–कुछ हो गया होता। लेकिन न महावीर कुछ कर सकते हैं, न बुद्ध कुछ कर सकते हैं; न क्राइस्ट, न कृष्ण, न मुहम्मद। कोई कुछ नहीं कर सकता है, जब तक कि आप ही करने को तैयार न हों।

गंगा बही जाती है, सागर भरे पड़े हैं, लेकिन आपके हाथ में पात्र ही नहीं है! और आप चिल्लाते हैं कि मुझे पानी चाहिए। गंगा कहती है, पानी है, लेकिन पात्र कहां है? आप कहते हैं, पात्र की बात मत करो, तुम तो गंगा हो, इतना पानी है इसमें, तो कुछ हमें दे दो। गंगा के द्वार बंद नहीं हैं, गंगा के द्वार खुले हैं, लेकिन पात्र तो चाहिए।

संकल्प का पात्र जहां नहीं है, वहां साधना की कोई तृप्ति, कोई संतोष कभी उपलब्ध नहीं होता है।

मेरी बातें इतनी शांति से सुनीं। आज हमारी पहले दिन की तीन बैठकें पूरी होती हैं। कल से हम दूसरे दो तत्वों पर विचार करना शुरू करेंगे। और अब इस बैठक के बाद हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे कोई दस मिनट के लिए।

## रात्रि ध्यान का प्रयोग

रात्रि के ध्यान के संबंध में दो–तीन बातें समझ लेनी हैं। लेटने का उपाय हो सकेगा। लेटने का उपाय हो सकेगा... तो लेटने की जगह बन जाएगी न! पहले समझ लें और फिर रात्रि का ध्यान हम करेंगे। सुबह का ध्यान तो बैठकर करने के लिए है। सुबह तो जीवन उठता है, जागता है इसलिए बैठकर ध्यान करना उपयोगी है। और रात्रि का ध्यान तो आप बिस्तर पर जब सोने चले जाते हैं तभी बिस्तर पर सोकर ही करने का है और फिर करने के बाद चुपचाप सो जाना है। वह अंतिम है। सुबह का ध्यान प्रथम जागने के बाद। रात्रि का ध्यान अंतिम, सोने के पहले।

सोने के पहले अगर ठीक से ध्यान में उतर जायें तो सारी नींद परिवर्तित हो जाती है। पूरी नींद ध्यान बन सकती है, क्योंकि नींद के कुछ नियम हैं। इसमें पहला नियम यह है कि रात्रि में जो हमारा अंतिम विचार होता है वह हमारी निद्रा में केंद्रीय होता है, और वही सुबह उठने पर हमारा प्रथम विचार होता है।

रात्रि में सोते समय चित्त में जो अंतिम विचार होता है वह निद्रा में केंद्रीय हो जाता है, और सुबह उठते वक्त पहला विचार वही होता है। रात अगर आप क्रोध में सो गये हैं तो रात भर आपके सपने, आपका चित्त क्रोध के आसपास मंडराता रहेगा और सुबह जब आप उठेंगे तो आप पायेंगे कि पहला भाव और पहला विचार क्रोध ही आपके सामने खड़ा होगा। रात भर हम संजोते हैं उसे जिसे हम रात लेकर सो जाते हैं।

इसलिए मेरा कहना है कि रात अगर कुछ लेकर ही सोना है तो ध्यान को लेकर सो जाना चाहिए ताकि रात पूरी नींद ध्यान के आसपास, उसी शांति के आसपास मंडराती रहे। धीरे-धीरे आप कुछ ही दिनों में पायेंगे कि सपने शून्य हो जाते हैं, नींद एक गहरी नदी बन जाती है और सुबह जब आप उठते हैं छह घंटे या आठ घंटे की गहरी निद्रा के बाद--इस ध्यान के बाद फिर तो जो पहला ख्याल होता है वह भी शांति का, आनंद का और प्रेम का ही होगा।

तो सुबह की यात्रा शुरू करनी है सुबह के ध्यान से और रात्रि की यात्रा शुरू करनी है रात्रि के ध्यान से। रात्रि का ध्यान लेटकर करने का है--बिस्तर पर लेटकर करने का है। यहां हम प्रयोग के लिए अभी लेटकर के करेंगे। लेटकर तीन बातें ध्यान में लेनी हैं।

पहली बात तो, कि शरीर को बिल्कुल ही शिथिल छोड़ देना है। जैसे बिल्कुल शरीर में कोई प्राण ही न हो। इतना ढीला, इतना ढीला छोड़ देना है जैसे कोई प्राण नहीं है और तीन मिनिट तक मन में यह भाव करते रहना है कि मेरा शरीर शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है... जैसे-जैसे मन भाव करेगा, शरीर वैसा ही होता चला जायेगा।

शरीर बिल्कुल सेवक है, अनुगामी है। हम जो भी भाव करते हैं, शरीर वही करता है। अगर आप क्रोध से भरते हैं, शरीर पत्थर उठा लेता है; आप प्रेम से भरते हैं, शरीर किसी को हृदय से लगा लेता है। आप जो चाहते हैं, जो होना चाहते हैं, जो करना चाहते हैं, मन में भीतर विचार उठता है और शरीर क्रिया में उसे परिवर्तित कर देता है।

हम रोज देखते हैं यह चमत्कार घटते हुए कि भीतर विचार उठता है और शरीर उसे रूपांतरण दे देता है। हमने कभी शिथिल होने का विचार नहीं किया, अन्यथा शरीर बिल्कुल शिथिल भी हो जाता। शरीर तो इतना शिथिल हो जाता है कि पता ही नहीं चलता है कि शरीर है भी या नहीं, लेकिन थोड़े दिन के प्रयोग से यह हो जाता है। तो तीन मिनट तक सोचते रहना है, भाव करते रहना है।

अभी तो मैं आपको सुझाव दे दूंगा ताकि आपको ख्याल में आ जाये। तो जब मैं सुझाव दूं कि शरीर शिथिल हो रहा है, तो आप मन में भाव करते जायेंगे कि शरीर शिथिल हो रहा है, शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो जायेगा!

शरीर के शिथिल होते ही सांस शांत हो जायेगी। शांत होने का मतलब बंद नहीं, लेकिन धीमी, आहिस्ता और गहरी हो जायेगी। फिर तीन मिनट तक मन में भाव करना है कि मेरी श्वास भी शांत होती जा रही है, श्वास भी शिथिल होती जा रही है... तब

धीरे–धीरे श्वास भी बिल्कुल शांत और सम हो जाती है। जब श्वास शांत हो जाती है और इन तीनों का संबंध है, जब शरीर शिथिल होगा तो श्वास अपने आप शांत होगी, जब श्वास शांत होगी तो मन अपने आप शांत होगा।

तो पहले हम शरीर पर शिथिलता का भाव करेंगे, उससे श्वास शांत होगी। फिर श्वास की शिथिलता का भाव करेंगे, उससे मन शांत होगा।

और फिर तीसरा सुझाव मैं आपको दूंगा कि अब आपका मन भी शांत और शून्य होता जा रहा है। ऐसा थोड़ी–थोड़ी देर तीनों सुझावों को करने के बाद दस मिनट के लिए मैं कहूंगा कि अब मन बिल्कुल शांत हो गया है तो जैसे हम सुबह बैठे रहे थे वैसे ही चुपचाप शांति में लेटे रहेंगे।

कुत्ते की आवाज आयेगी, कोई पक्षी चिल्लायेगा, कोई और कुछ आवाज होगी, उसे चुपचाप सुनते रहना, जैसे कोई सूना कमरा हो, कोई आवाज आती हो, गूंजती हो और चली जाती हो! न तो उस आवाज के लिए यह सोचना है कि यह मुझे क्यों सुनायी दे रही है, न यह सोचना है कि कुत्ता क्यों भौंक रहा है, क्योंकि आपका कुत्ते से कोई संबंध नहीं है। आपको कोई सोचने की जरूरत भी नहीं है कि क्यों भौंक रहा है। या हम ध्यान कर रहे हैं, यह दुष्ट हमारे पीछे क्यों पड़ा हुआ है, इससे भी कोई संबंध नहीं है। उस कुत्ते को आपका बिल्कुल पता नहीं कि आप ध्यान कर रहे हैं। उसे कुछ मालूम नहीं है इसका, वह बिल्कुल अनजान है, वह अपने काम में लगा हुआ है। आपसे कुछ लेना–देना नहीं है, वह भौंक रहा है––उसे भौंकने देना है। वह विघ्न नहीं है आपके लिए।

मैं एक छोटे–से गांव में ठहरा हुआ था––एक छोटे–से विश्राम–गृह में। एक राजनीतिक नेता भी मेरे साथ ठहरे हुए थे। रात उस रेस्ट हाउस में न मालूम क्या हुआ कि गांव भर के कुत्ते इकट्ठे हो गये, वे बहुत चिल्लाने लगे। वह नेता बहुत परेशान हो गये। वह उठकर मेरे कमरे में आये और कहा कि आप सो गये हैं क्या? मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ा हुआ हूं। इन कुत्तों को मैं दो बार भगा आया हूं, लेकिन ये वापस लौट आते हैं!

मैंने कहा, किसी को भी भगाइये, वह हमेशा वापस लौट आयेगा। कुत्ते रोज ही यहां आते होंगे। आप यह व्यर्थ का अपने मन में भाव न लें कि मेरे कारण यहां ये सब इकट्ठे हो गये हैं। उनको बिल्कुल पता भी नहीं होगा। रह गयी आपके न सोने की बात तो कुत्ते आपको नहीं जगा रहे हैं, आप खुद ही जाग रहे हैं। आप व्यर्थ ही यह सोच रहे हैं कि कुत्तों को नहीं भौंकना चाहिए। कुत्तों को भौंकने का हक है, आपको सोने का हक

है। इन दोनों में कोई विरोध नहीं है, इनमें कोई टकराव नहीं है। कुत्ते भौंकते रहें, आप सोते चले जायें। तो मैंने उनसे कहा कि आप स्वीकार कर लें कि कुत्ते भौंक रहे हैं। और चुपचाप सुनें, स्वीकार कर लें और स्वीकार करते ही आप पायेंगे कि कुत्तों का भौंकना भी संगीतपूर्ण हो जाता है।

फिर वे पता नहीं कब सो गये। सुबह उठकर उन्होंने कहा, पता नहीं, मैं सच में हैरान रह गया। जब कोई रास्ता नहीं रहा... पहले तो आपकी बात मुझे नहीं जंची।

मेरी बात एकदम से किसी को भी नहीं जंचती है। उनको भी नहीं जंची।

लेकिन जब कोई रास्ता नहीं रहा और मजबूरी आ गयी और देखा कि अब कोई उपाय नहीं है--या तो नींद खराब करूं या आपकी बात मानूं, दो ही विकल्प रह गये हैं। तो फिर मैंने सोचा कि कुत्ते की तरफ तो मैंने ध्यान दे दिया, अब आपकी बात पर भी ध्यान देकर देख लूं। तो फिर मैं चुपचाप लेट गया और सुनता रहा और मैंने स्वीकार कर लिया। और मुझे पता नहीं कब नींद आ गयी। और कुत्ते पता नहीं, कब तक भौंकते रहे और कब बंद हो गये। मैं सचमुच पूरी तरह रात सो पाया।

आप विरोध न करें, जो भी चारों तरफ है उसे चुपचाप सुनते रहें। यह जो चुपचाप सुनते रहना है, यह बड़ी अदभुत बात है, यह जो अप्रतिरोध है, नान-रेज़िस्टेंस है, यह जो अविरोध है जीवन के प्रति, वही ध्यान में जाने का सूत्र है। तो पहले हम शिथिल होंगे, फिर हम अविरोध के भाव में चुपचाप सुनते रहेंगे। यह प्रकाश बुझा दिया जायेगा, ताकि आपको ख्याल न रह जाये कि दूसरे लोग मौजूद हैं। कुत्तों को भूलना आसान है, पास-पड़ोस के आदमियों को भूलना और भी कठिन है।

**--ओशो, अंतर्यात्रा**

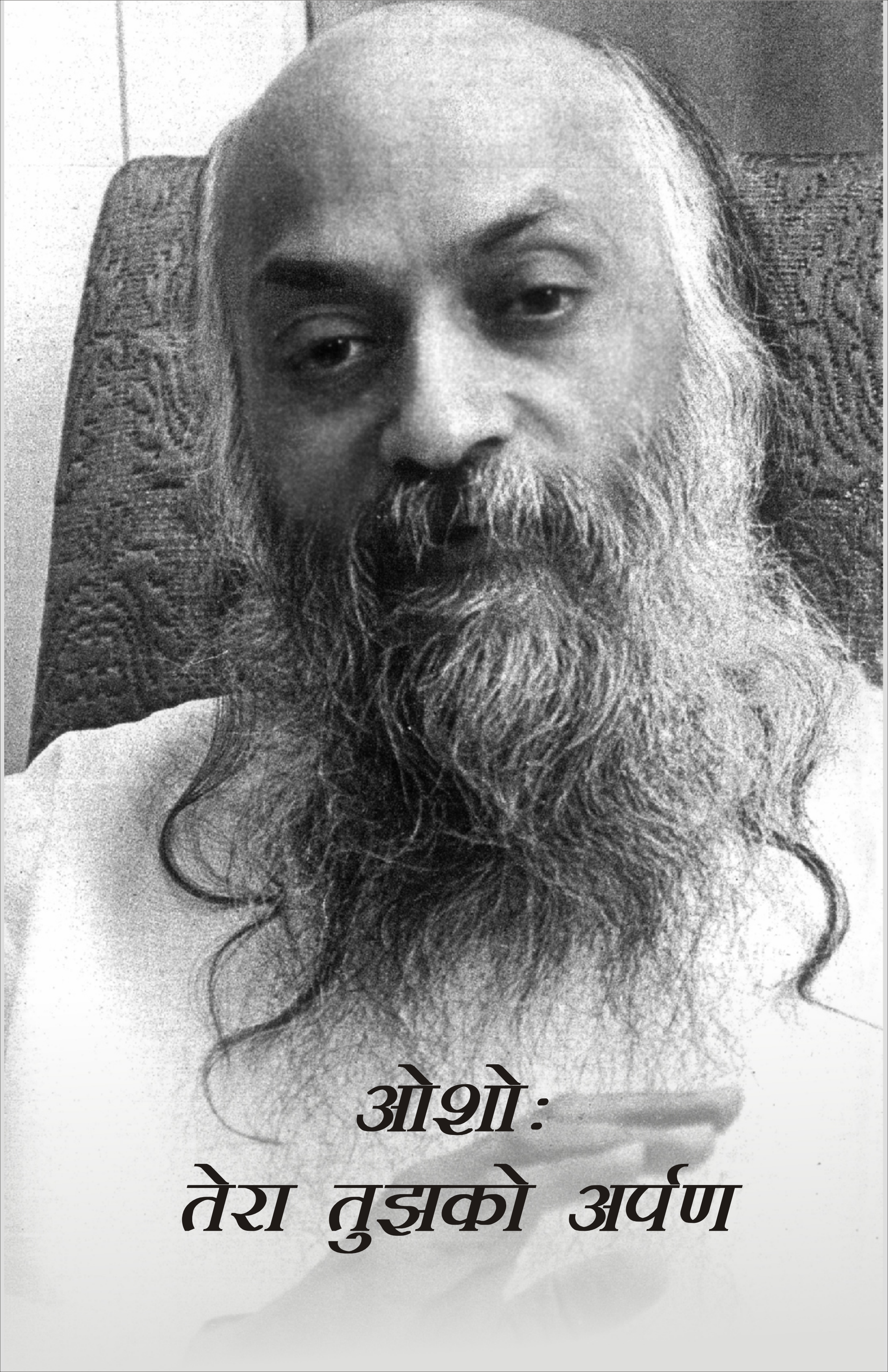
ओशो:
तेरा तुझको अर्पण

# ओशोः तेरा तुझको अर्पण

ओशो के विषय में कुछ कहना, आकाश को मुट्ठी में बांधने जैसा असंभव काम है! और किस ओशो का परिचय दिया जाए–मृण्मय दीपक का अथवा चिन्मय ज्योति का? चैतन्य की वह लौ तो कागजी शब्द–पेटियों में समाती नहीं, केवल परोक्ष सांकेतिक भाषा में इशारे संभव हैं; जैसे उनकी समाधि पर अंकित ये स्वर्णाक्षर–

**––ओशो––**

**'जिनका न कभी जन्म हुआ और न ही मृत्यु**
**11 दिसम्बर 1931 और 19 जनवरी 1990 के बीच**
**जो इस पृथ्वी ग्रह पर केवल विचरण करने आए।'**

हां, उस अनूठी और प्यारी माटी की देह के संबंध में अवश्य कुछ कहा जा सकता है जिसमें वह अलौकिक ज्योति अवतरित हुई और 58 वर्षों तक धरती के अनेक भूखंडों पर अपनी ज्ञान–रश्मियां बिखेरती रही।

गौतम बुद्ध के ढाई हजार साल बाद धर्म–चक्र–प्रवर्तक के रूप में अस्तित्व ने धरती पर ओशो को भेजा। अपने ननिहाल कुचवाड़ा, मध्य प्रदेश में उनका जन्म हुआ। नाना ने प्यार से उनका नाम 'राजा' रखा। बचपन के स्वर्णिम सात साल उन्होंने नाना–नानी के प्यार की छांव तले बिताए। नानाजी के देहांतोपरांत 1938 में वे अपने माता–पिता के घर गाडरवारा आए। 10 वर्ष की उम्र में पाठशाला में प्रवेश के वक्त नामकरण हुआ– 'रजनीश चंद्र मोहन जैन'। हाई स्कूल तक की शिक्षा यहीं पर हुई। उनके सौभाग्यशाली पिता स्वामी देवतीर्थ भारती और मां अमृत सरस्वती ने कालांतर में अपने पुत्र का शिष्यत्व ग्रहण किया एवं परमज्ञान को उपलब्ध हुए।

कुशाग्र बुद्धि, विद्रोही स्वभाव, असाधारण प्रतिभा एवं विलक्षण वाक शक्ति के धनी ओशो, विद्यार्थी जीवन में अपने शिक्षकों तथा सहपाठियों के बीच सदा आकर्षण के केन्द्र रहे। इक्कीस वर्ष की आयु में 21 मार्च, 1953 को उन्हें जबलपुर के भंवरताल उद्यान में मौलश्री वृक्ष के नीचे बुद्धत्व अर्थात आत्म–ज्ञान उपलब्ध हुआ।

उस समय वे डी.एन.जैन कॉलेज के विद्यार्थी थे। तत्पश्चात सन 1956 में सागर विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया। फिर संस्कृत कॉलेज रायपुर में लगभग एक वर्ष तक व्याख्याता रहे। सन 1958 से

1966 तक जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक रहे। इस अवधि में वे भारत भ्रमण कर व्याख्यान देते रहे और वर्ष 1964 से ध्यान शिविरों का संचालन भी आरंभ कर दिया। जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अपनी मौलिक व क्रांतिकारी दृष्टि प्रस्तुत करने वाले 'आचार्य रजनीश' के रूप में उनकी ख्याति सर्वत्र फैलने लगी। वर्ष 1967 से उन्होंने स्वयं को पूरी तरह धर्म–चक्र–प्रवर्तन एवं मनुष्य के आध्यात्मिक पुनरुत्थान के कार्य में संलग्न कर दिया। विभिन्न रमणीक स्थलों पर दस दिवसीय साधना शिविर लेने शुरु किए। अनेक महानगरों में उन्होंने बीस से पचास हजार श्रोताओं वाली विराट सभाओं को संबोधित किया।

जुलाई 1970 में वे मुंबई आ गए और 'भगवान श्री रजनीश' के रूप में विश्व विख्यात होने लगे। इसी साल 26 सितंबर को मनाली में उन्होंने नव–संन्यास दीक्षा देनी आरंभ की। हजारों मुमुक्षु घर–परिवार या नौकरी–व्यापार छोड़े बगैर, अपना सहज सामान्य जीवन जीते हुए, नए नाम के संग गैरिक वस्त्र व माला धारण कर आध्यात्मिक साधना में डूबने लगे। क्रमश : नव–संन्यास विराट आंदोलन का रूप लेने लगा।

सन 1974 की 21 मार्च को ओशो पूना आश्रम में आ बसे, जहां सात साल तक निरंतर, एक–एक माह के लिए उनके क्रमश : हिन्दी व अंग्रेजी में सुबह डेढ़ घंटे प्रवचन चले। योग, भक्ति, झेन, ताओ, सांख्य, सूफी, हसीद आदि धाराओं पर तथा बुद्ध, महावीर, मीराबाई, लाओत्से, गोरखनाथ, जीसस, जरथुस्त्र जैसे विश्व के तमाम रहस्यदर्शी संतों के वचनों के गूढ़ रहस्य उजागर किए। उनके अमृत प्रवचन करीब 6000 ऑडियो–वीडियो रिकार्डिंग एवं 650 किताबों के रूप में उपलब्ध हैं। विश्व की लगभग 50 भाषाओं में उनके साहित्य का अनुवाद अब तक हो चुका है।

इस अवधि में वे शाम को नियमित रूप से साधकों को संन्यास दीक्षा, ऊर्जा दर्शन एवं व्यक्तिगत मार्गदर्शन देते रहे। संन्यास नामों की व्याख्या के माध्यम से ओशो ने अनाहत नाद, अंतस–आलोक, दिव्य ऊर्जा, दिव्य रस–गंध–स्वाद एवं दिव्य प्रेम के गुह्य आयामों की चर्चा की, जिनके संकलन दर्शन डायरियों के रूप में प्रकाशित हुए। प्रतिमाह 11 से 20 तारीख तक दस दिवसीय समाधि शिविरों का आयोजन होता रहा।

मार्च 1981 से उनके कार्य का नया आयाम 'मौन–सत्संग' के रूप में प्रारंभ हुआ। मई 1981 में वे अमेरिका प्रस्थान कर गए जहां उनके शिष्यों ने ओरेगॉन के मरुस्थल में रजनीशपुरम नगर नामक हरा–भरा मरुद्यान बसाया। साढ़े तीन वर्ष के मौन के उपरांत अक्टूबर 1984 में ओशो ने पुनः प्रवचन देना शुरु किया। सितम्बर 1985 में ओशो की सचिव अपनी कुछ प्रमुख सहयोगियों सहित अचानक रजनीशपुरम से चली गई और पीछे छोड़ गई अपराधों की एक लंबी सूची। ओशो ने अन्वेषण के लिए

अधिकारियों को आमंत्रित किया, किंतु सरकार ने इस परिस्थिति को कम्यून नष्ट करने के हथकंडे के रूप में इस्तेमाल किया। बिना किसी वारंट के ओशो को गिरफ्तार कर 12 दिनों तक विभिन्न जेलों में रखने के दौरान उन्हें थैलियम नामक धीमा जहर दिया और अंततः उन्हें अमेरिका छोड़ने को बाध्य किया।

नवंबर 1985 से लगभग नौ माह तक विश्व भ्रमण के दौरान, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की दुहाई देने वाले तथाकथित 21 प्रजातांत्रिक देशों ने ओशो को या तो अपने मुल्क में प्रवेश की अनुमति नहीं दी अथवा कुछ समय के उपरांत निष्कासित कर दिया। इस दौरान भी विभिन्न प्रवचनशृंखलाएं चलती रहीं। जुलाई 1986 की 29 तारीख को वे मुंबई आए। जनवरी 1987 में पुनः पूना आश्रम पधारे। वर्ष 1989 के आरंभ में उन्होंने अपने नाम से 'भगवान' संबोधन हटा दिया और केवल 'श्री रजनीश' कहलाने लगे। बाद में उन्होंने 'रजनीश' शब्द भी छोड़कर 'ओशो' नाम से पुकारा जाना पसंद किया। दिनांक 10 अप्रैल 1989 को उन्होंने अंतिम प्रवचन दिया, तदुपरांत प्रति संध्या मौन सत्संग के माध्यम से अपनी आंतरिक संपदा लुटाते रहे। निष्क्रिय ध्यान, सक्रिय ध्यान आदि से लेकर मिस्टिक रोज मेडिटेशन तक सैकड़ों ध्यान विधियों की रचना की।

जनवरी 1990 की 19 तारीख को ओशो ने अपने शिष्यों के नाम यह संदेश छोड़ते हुए पृथ्वी से प्रयाण किया—'मैं अपना स्वप्न तुम्हें सौंपता हूं।'

भौतिक व आत्मिक दोनों प्रकार की समृद्धियों के समन्वय को 'जोरबा दि बुद्धा' के प्रतीक में प्रस्तावित करने वाले सदगुरु ओशो अभूतपूर्व हैं। उनकी परिधिगत देशनाओं को सर्वस्व मानकर 'जोरबा' होने से हमें तृप्त नहीं होना है और 'बुद्धा' हाने को कभी विस्मृत नहीं करना है। कृष्ण, बुद्ध, पतंजलि, कबीर, नानक और उपनिषद के ऋषियों की तरह ओशो का केन्द्रीय तथा प्रमुख योगदान ओंकार, समाधि व परमात्मा के अनुभवगम्य दिव्य रूपों जैसे—नाद—नूर, आदि से लेकर अद्वैत, कैवल्य, ब्रह्मज्ञान एवं निर्वाण आदि का वैज्ञानिक ढंग से उद्घाटन है। यही तो है सभी बुद्धों, जिनों और संतों के सपनों का सार—निचोड़। आज, महापरिनिर्वाण के तीन दशक बाद भी ओशो उतने ही विवादास्पद तथा चर्चित हैं जितने कि अपने जीवनकाल में रहे। स्पष्ट है कि ओशो की क्रांति—अग्नि आज भी प्रज्वलित है और शायद तब तक जलती रहेगी, जब तक इस जमीन पर एक भी मनुष्य जीवित रहेगा।

क्षणभंगुर दीये की संक्षिप्त कथा यहां समाप्त हुई, किंतु अवर्णनीय शाश्वत ज्योति की आभा तो फैली है, फैलती रहेगी, और मुमुक्षुओं के जीवन—पथ को सदैव आलोकित करती रहेगी!

# ओशो–फ्रेगरेंसः एक रहस्य विद्यालय

अमेरिका में सरकार द्वारा कम्यून नष्ट किए जाने के बाद, सन 1985–1986 में विश्व भ्रमण के दौरान ओशो ने बारंबार संकेत दिया कि अब विशाल कम्यून नहीं वरन छोटे–छोटे साधना स्थल निर्मित करने हैं। स्वयं उन्हीं के शब्दों में–

'अब मैं कोई कम्यून नहीं बनाने जा रहा हूं। मैं एक ऐसी चीज बनाने जा रहा हूं, जो कि पूरी तरह से भिन्न है–एक मिस्ट्री स्कूल, एक रहस्य विद्यालय। इस विद्यापीठ की देखभाल करने के लिए 40–50 लोग होंगे। और दो सौ, तीन सौ, पांच सौ लोग एक माह, दो माह अथवा तीन माह के कार्यक्रम हेतु आयेंगे और फिर वापस चले जाएंगे। जीवन की जो कला, ध्यान की जो विधि वे यहां सीखेंगे, उसे घर पर जारी रख सकेंगे। और धीरे–धीरे हम अनेक लोगों को प्रशिक्षित कर देंगे ताकि वे पूरे विश्व में इसी तरह के मिस्ट्री स्कूल खोल सकें।

यह स्कूल एकदम भिन्न चीज है। तुम कुछ सीखने के लिए, कुछ विशेष अनुभवों से गुजरने के लिए तीन माह के लिए आते हो और उसके बाद तुम अपने कामधाम के लिए संसार में वापस लौट जाते हो। वर्ष भर में तुम इतना धन अर्जित कर लोगे, कि तुम यहां अपनी क्षमतानुसार एक, दो या तीन माह के लिए आ सकते हो। ये तीन माह महज अवकाश हैं, छुट्टियों के दिन हैं। इन तीन महीनों के लिए तुम पूरे विश्व को भूल सकते हो। ये तीन माह केवल सत्य की खोज के लिए होंगे। और तीन माह बाद, अपने घर पर तुम अपने लिए कम से कम दो घंटे तो निकाल ही सकते हो।'

**–ओशो, बियॉन्ड साइकोलोजी, अध्याय–38**